सूत्रधार 'मंडन' विरचित

प्रासाद मंडन

(देवालय निर्माण शास्त्र)

हिन्दी सनुवाद

अनुवादक और सम्पादक

पं० भगवानदास जैन

प्रकाशक

बी. एस. शर्मा B Sc विशारद

जयपुर सिटी

वि० स० २०२०] मूल्य सोलह रुपया [इस्वी सन् १९६३

∓ ावना

भारतीय प्राचीन स्थापत्यकला के सुन्दर कलामय देवालयो, राजमहलो, किलाग्रो, जलाशयो, यत्रो और मनुष्यालयो आदि अनेक मनोहर रचनाग्रो को देखकर अपना मन अतीव आनन्दित होता है। यही 'वास्तुशिल्प' हैं।

वास्तु की उत्पत्ति के विषय मे अपराजितपृच्छा के सूत्र ५३ से ५५ तक मे विस्तार पूर्वक वर्णन लीखा है। उसका साराश यह कि—प्राचीन समय मे अधकासुर नाम के राक्षस का विनाश करने के लिये महादेव को सग्राम करना पडा। उसके परिश्रम से महादेवजी के कपाल मे से पसीना का एक बिन्दु भूमि पर अग्निकुण्ड मे गिरा। इसके योग से वहा एक बडा भयकर विशालकाय भूत उत्पन्न हुआ, उसको देवोने औंधा पटक करके उसके विशालकाय शरीर के ऊपर पैंतालीश देव और आठ देविया ऐसे कुल ५३ देव बैठ गये और निवास करने लगें। जिसे अप० सू० ५५ श्लो० १२ मे कहा है कि 'निवास सर्वदेवाना वास्तु वै स्थानतो विदु।' अर्थात् ये देवोका निवास होने से महाकाय भूत वास्तुपुरुष कहा जाता है। इसका वर्णन इसी ग्र थ के आठवें अध्याय मे श्लोक ९६ से ११४ तक किया गया है।

' यह प्रासाद मण्डन ग्र थ शिल्पिवर्ग मे अधिक प्रशस्त है, इसके आधार पर आधुनिक सोमपुरा ब्राह्मण ज्ञातीय शिल्पिवर्ग देवालय बाधने का कार्य अपनी वशपरपरा से करते आये है। यही इस ग्रथ की विशेष महत्वता है और देवालयो की मुख्य चौदह जाति बतलाई है (देखो अध्या० १ श्लोक ६ठा का अनुवाद), इनमे से नागर जाति के देवालय बाधने का यह प्रशस्त ग्रथ माना जाता है। इसमे देवालयो के गुणदोष और माप पूर्वक बाधने का सविस्तर वर्णन है।

देवालय बनाने का महत्व—

प्रासाद का अर्थ देवमदिर अथवा राजमहल होता है। उनमे से यह ग्रथ देवमदिर के निर्माण विषय का है। इसको बनाने का कारण शास्त्रो मे लिखा है कि—

"सुराज्ञयो विभूत्यर्थं भूषणार्थं पुरस्य तु।
नराणा भुक्तिमुक्त्यर्थं सत्यार्थं चैव सर्वदा॥
लोकाना धर्महेतुश्च क्रीडाहेतुश्च स्वभुवाम्।
कीर्त्तिरायुर्यशोऽर्थं च राज्ञा कल्याणकारक ॥" अप० सू० ११५

मनुष्यो के ऐश्वर्य के लिये, नगर के भूषणरूप शृ गार के लिये, मनुष्यो को अनेक प्रकार की भोग सामग्री को और मुक्तिपद को देनेवाला होनेसे, सब प्रकार की सत्यता की पूर्णता के लिये, मनुष्यो को धर्म का कारणभूत होने से, देवो को क्रीडा करने की भूमि होने से, कीर्त्ति, आयुष्य और यश की वृद्धि के लिये और राजाओं का कल्याण के लिये देवालय बनाया जाता है।

सूत्रधार स्थपति—

देवालय गृह आदि वास्तुशिल्प के काम करने वाले को सूत्रधार अथवा स्थपति कहा जाता है। चौदह राजलोक के देवोने इकट्ठे होकर शिवलिंग के आकारवाली महादेवजी की अनेक प्रकार से पूजा की, जिससे प्रासाद की चौदह जाति उत्पन्न हुई इन प्रत्येक मे चोरस, लबचोरस, गोल, लबगोल और अष्टास्र (आठ कोना वाली) ये पाच आकृतिवाले प्रासाद शिवजी के कथनानुसार ब्रह्माजी ने बनायें। इन प्रत्येक मे चोरस आकृतिवाले प्रासाद की ५८८, लबचोरस प्रासाद की ३००, गोल प्रासाद की ५००, लबगोल प्रासाद की १५० और अष्टास्र प्रासाद की ३५० जाति भेद हैं। इनमे मिश्र जाति के प्रासाद के ११२ भेद मिलाने से दो हजार जाति के प्रासाद होते ह। इन प्रत्येक के पच्चीस पच्चीस भेद होने से पचास हजार भेद होते है। इन प्रत्येक की आठ आठ विभक्ति होने से कुल चार लाख भेद प्रासाद के होते ह। इनका सविस्त वर्णन जानने वाले को शास्त्रकारने स्थपति (सूत्रधार) कहा है।

प्रासाद की श्रेष्ठता—

भारतीय सस्कृति मे प्रासाद का अत्यधिक आदर किया जाता है, इतना ही नही परन्तु पूजनीय भी माना जाता है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि—प्रासाद को शिवलिंग का स्वरूप माना गया है। जैसे शिवलिंग को पीठिका है, वैसे प्रासाद को भी जगतीरूप पीठिका है। प्रासाद का जो चोरस भाग है, वह ब्रह्म भाग है, उसके ऊपर का जो अष्टास्र भाग है, वह विष्णुभाग है और उसके ऊपर का जो गोल शिखर का भाग है, वह साक्षात् शिवलिंग स्वरूप है।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि—प्रासाद के प्रत्येक अग और उपागो मे देव और देवीयो का विन्यास करके देव प्रतिष्ठा के समय उसका अभिषेक किया जाता है। इसलिये प्रासाद सर्व देवमय बन जाता है।

तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि—प्रासाद के मध्य भूतल मे धारिणी शिला के ऊपर से एक नाली (जिसको शास्त्रकार योगनाल अथवा ब्रह्मनाल कहते हैं और आधुनिक शिल्पी पद्मनाल कहते हैं) देव के सिहासन तक रखने का विधान है। इसका कारण यह माना जाता है कि—प्रासाद के गर्भगृह के मध्य भाग से जलचर जीवो की आकृतिवाली धारणी नाम की शिला नीव मे स्थापित की जाती है, उसके ऊपर सुवर्ण अथवा चादी का कूर्म (कछूआ) रख कर योगनाल रखी जाती है। इसका कारण यह हो सकता है कि—यह धारणी शिला के ऊपर जलचर जीवो की आकृतियो होने से यह शिला क्षीर समुद्र मे शेषशायी भगवान स्वरूप माना गया, इसके नाभिकमल से उत्पन्न हुआ कमलदड स्वरूप योगनाल है, इसके ऊपर ब्रह्मा की उत्पत्ति स्वरूप प्रतिष्ठित देव है। इत्यादि कारणो से प्रासाद का अधिक आदर किया जाता है।

प्रासाद के निर्माण का फल—

"अशक्त्या काष्ठमृदिष्टकाशैल धातुरत्नजम्।
देवतायतन कुर्याद् धर्मार्थकाममोक्षदम् ॥" अ० १ श्लो० ३३

अपनी शक्ति के अनुसार लकड़ी, मिट्टी, ईंट, पाषाण, धातु अथवा रत्न, इन पदार्थों मे से किसी भी एक पदार्थ का देवालय बनावें तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'कोटिघ्न तृणजे पुण्य मृण्मये दशसङ्गुणम्।
ऐष्टके शतकोटिघ्न शैलेऽनन्त फल स्मृतम्॥" अ० १ श्लो० २५

देवालय घासका बनावें तो करोड गुना, माटीका बनावें तो दस करोड गुना, ईंट का बनावें तो सौ करोड गुना और पाषाणका बनावें तो अनन्त-गुना फल-मिलता है।

वास्तुशिल्प के आठ सूत्र—

वास्तु शिल्प के इमारती काम करने के लिये शिल्पीओ के पास मुख्य आठ सूत्र पाये जाते हैं। उनमे प्रथम दृष्टिसूत्र, दूसरा हस्त (गज) सूत्र, तीसरा मुंज की रस्सी, चौथा सूत का डोरा, पाचवा अवलंब, छट्ठा काट कोना, सातवा साधणी (रेवल) और आठवा प्रकार है। इसका परिचय के लिये देखीये नीचे का रेखा चित्र।

इनमे जो भूमि आदि वस्तुओं का नाप करने के लिये दूसरा हस्तसूत्र है, यह तीन प्रकार के माप का है। उसको जानने के लिये माप की तालीका इस प्रकार है—

८ परमाणु = १ केशाग्र,
८ केशाग्र = १ लीक्षा (लीख)
८ लीक्षा = १ जू,
८ जू = १ यवोदर,
८ यवोदर = १ अंगुल, मात्रा,
२ अंगुल = १ कला, गोलक,
३ ,, = १ पर्व,
४ ,, = १ मुष्टि, मूठी,
५ ,, = १ तल,
६ ,, = १ करपादांगुल,
७ ,, = १ दिष्टी,
८ ,, = १ तुणी,
९ ,, = १ प्रादेश
१० ,, = १ शयताल
११ अंगुल = १ गोकर्ण
१२ ,, = १ विलाद, ताल, बित्ता,
१४ ,, = १ उद्दिष्ट, पाद,
२१ ,, = १ रत्नि,
२४ ,, = १ अरत्नि, हाथ, दो फुट का गज,
४२ अंगुल = १ किष्कु,
८४ ,, = १ व्याम, पुरुष,
९६ ,, = १ धनुष, नाडीयुग,
१०६ ,, = १ दंड,
३० धनुष = १ नल्व,
१००० ,, = १ कोस
२ कोस = १ गव्यूत
४ गव्यूत = १ योजन,

उपरोक्त जो आठ यवोदरका एक अंगुल माप लीखा है, यह तीन प्रकार का माना जाता है। जैसे—आठ यवोदर का एक अंगुल यह ज्येष्ठ माप का, सात यवोदर का एक अंगुल यह मध्यम माप का और छह यवोदर का एक अंगुल यह कनिष्ठ मानका अंगुल माना जाता है। इन तीन प्रकार के अंगुलो मे से जिस २४ अंगुल के नाप का हाथ बनाया जाय तो यह हाथ भी ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ मानका होता है। जैसे—आठ यवोदर का एक अंगुल, ऐसे २४ अंगुल का एक ज्येष्ठ हाथ, सात यवोदर का एक अंगुल, ऐसे
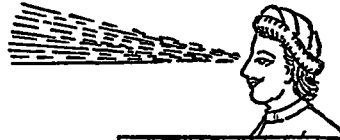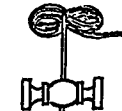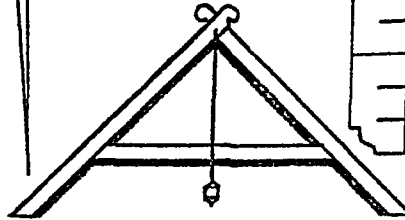
वास्तुशिल्प के आठ सूत्र

२४ अगुल का एक मध्यम हाथ और छह यवोदर का एक अगुल, ऐसे २४ अगुल का एक कनिष्ठ हाथ माना जाता है।

इन तीन प्रकार के हाथो मे से—गाव, नगर, वन, बगीचा, किला, कोस, योजन आदिका नाप ज्येष्ठ मान के हाथ से, [1]प्रासाद (राजमहल और देव मदिर), प्रतिमा, लिंग, जगतीपीठ मडप और सब प्रकार के मनुष्यो के घर ये सब मध्यम मान के हाथ से और सिंहासन, शय्या, वर्त्तन, वस्त्र, शस्त्र और सब प्रकार के वाहन आदि का नाप कनिष्ठमान के हाथ से नापने का विधान है।

[2]हाथ की बनावट—

हाथ मे तीन तीन अगुल की एक २ पर्व रेखा माना है, उसके स्थान पर एक २ पुष्प की आकृति किया जाता है। ऐसे आठ पर्व रेखा होती है। चौथी पर्व रेखा हाथ का मध्य भाग समझा जाता है, इस मध्य भाग से आगे पाचवी अगुल का दो भाग, आठवी अगुल का तीन भाग और बारहवी अगुल का चार भाग किया जाता है।

हाथ के प्रत्येक अगुल के कापा का एक २ देव है, जिसे २४ अगुल के २३ कापा होते हैं, इनके देवो के नाम राजवल्लभमडन अ० १ श्लो० ३६ मे लिखा है। परन्तु पर्व रेखा के पुष्प का आठ और एक आदि ऐसे नव देव मुख्य माने हैं।

जैसे— 'रुद्रो वायुर्विश्वकर्मा हुताशो, ब्रह्मा कालस्तोयप सोमविष्णू ।'

अर्थात् हाथ के आद्य भाग का देव रुद्र, प्रथम पुष्प का देव वायु, दूसरे पुष्प का देव विश्वकर्मा, तीसरे पुष्प का देव अग्नि, चौथे पुष्प का देव ब्रह्मा, पाचवें पुष्प का देव यम, छट्ठे पुष्प का देव वरुण, सातवें पुष्प का देव सोम और आठवें पुष्प का देव विष्णु है। इन नव देवो मे से कोई भी देव हाथ उठाते समय शिल्पी के हाथ से दब जाय तो अशुभ फलदायक माना है। इसलिये शिल्पीयो को हाथ के दो फूलो के बीच से उठना चाहिये। इसका फल समरागण सूत्रधार मे लिखा है कि—

हाथ (गज) को रुद्र और वायु देव के मध्य भाग से उठावें तो धन की प्राप्ति और कार्य की सिद्धि होवे। वायु और विश्वकर्मा देव के मध्य भाग से उठावें तो इच्छित फल की प्राप्ति होवे। विश्वकर्मा और अग्निदेव के मध्य भाग से उठावें तो काम अच्छी तरह पूर्ण होवे। अग्नि और ब्रह्मा देव के मध्य भाग से उठावें तो पुत्र की प्राप्ति और कार्य की सिद्धि होवे। ब्रह्मा और यमदेव के मध्य भाग से उठावें तो शिल्पी की हानि होवे। यम और वरुण देव के मध्य भाग से उठावें तो मध्यम फलदायक जानना। वरुण और सोमदेव के मध्य भाग से उठावें तो मध्यम फल जानना। सोम और विष्णु देव के मध्य भाग से उठावे तो अनेक प्रकार की सुख समृद्धि होवे।

---

१ समरागण सूत्रधार ग्रथ मे ज्येष्ठ हाथ से नापने का लीखा है।

२ देखो राजवल्लभमडन अध्याय १ श्लोक ३३ से ३६ तक।

उदुम्बर (देहली)--

देवालय के द्वार की देहली और स्तभ की कुम्भीओ की ऊचाई मडोवर के कुम्भा थर की ऊंचाई के बराबर करना लिखा है। परन्तु कभी बडे प्रासादो मे कुम्भा की ऊचाई अधिक होती है, तो देहली की ऊचाई भी अधिक होती है। ऐमे समय मे देहली को नीचा उतारना शास्त्र मे लिखा है। इस विषय मे शिल्पिओ मे मतभेद चल रहा है। कोई शिल्पी कहते हैं कि—'देहली नीची की जाय तो उसके साथ स्तभ की कुम्भिया भी देहली के बराबर नीची की जाय' और कोई शिल्पी देहली नीची करते हैं, परन्तु स्तभ की कुम्भिया नीची नही करते। इस मतभेद मे जो शिल्पी देहली के साथ कुम्भिया भी नीची करता है, उसका मत शास्त्र की दृष्टि मे प्रामाणिक मालूम नही होता है। कारण अपराजित पृच्छा सूत्र १२६ श्लोक ६ मे तो कुम्भीओ से देहली नीची उतारना लिखते है, तो कुम्भीओ नीचे कैसे उतरे? वैसे क्षीरार्णव मे तो स्पष्ट लिखा है कि—"उदुम्बरे हते (क्षते) कुम्भी स्तम्भ तु पूर्ववत् भवेत्।" कभी देहली नीची किया जाय तो भी स्तभ और उसकी कुम्भिया पहले के शास्त्रीय नाप के बराबर रखना चाहिये। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि—जो शिल्पि देहली के साथ कुम्भीओ नीची करना मानते हैं—यह प्रामाणिक नही है।

द्वार शाखा--

द्वार की शाखा के विषय मे भी शिल्पीओ मे मतभेद मालूम होता है। स्तभ शाखा के दोनो तरफ एक एक कोणी बनाई जाती है, उसको शिल्परत्नाकर के सम्पादक शाखा मानते नही हैं और दीपार्णव के सम्पादक शाखा मानते है। देखो दीपार्णव पेज न० ८१ मे द्वारशाखा का रेखा चित्र है। उसमे स्तभ के दोनो तरफ की कोणियो को शाख मान करके त्रिशाखा द्वार को पच शाखा द्वार लिखा है, एव पेज न० ३६८ और ३६६ के बीच में द्वारशाखा का ब्लोक छपा है, यह चित्र शिल्परत्नाकर का होने से बीच मे त्रिशाखा द्वार छपा है और नीचे उसके खडन रूप से पच शाखा द्वार लिखा है। इसीसे स्पष्ट मालूम होता है कि स्तभ शाखा की कोणिओ को दीपार्णव के सम्पादक शाखा मानते हैं, जिसे उनके मत मे नवशाखा वाला द्वार मे दो स्तभ शाखा होने से तेरह शाखा वाला द्वार माना जाय तो यह अशास्त्रीय हो जाता है। क्योंकि शास्त्रकार स्तभ शाखा के दोनो तरफ कोणिया बनाना लिखते हैं, परन्तु उसको शाखा नही मानते। इसलिये स्तभ की दोनो तरफ की कोणियो को शाखा मानने वाले शिल्पीओ का मत अशास्त्रीय होने से प्रामाणिक नही माना जाय।

चतुर्थ अध्ययन मे मूर्ति और सिंहासन का नाप, गर्भगृह का नाप, देवो की दृष्टि, देवो का पद स्थान, उरुशृ गो का क्रम, रेखा विचार, शिखर विधान, आमलसार, कलश, शुकनाश, कोली मडप का विधान, सुवर्णपुरुष की रचना, ध्वजादड का माप और उसका स्थान आदिका वर्णन है।

देवदृष्टि स्थान--

देवो की दृष्टि द्वार के किस विभाग में रखा जाय, इस विषय मे शिल्पियो मे मतभेद है। जिनेन्द्र शिल्पी शास्त्र मे कहे हुए एक भाग मे दृष्टि नही रखने, परन्तु कहा हुआ भाग और उसके ऊपर का भाग, इन दोनो भाग की सधी मे शास्त्र की कौरी रखते हैं, जिसे उनके हिसाब से एक भाग मे दृष्टि रखने का सबध नही मिलता। इसलिये शास्त्र के हिसाब से दृष्टि स्थान न होने से उनका मत प्रामाणिक नहीं माना जाता।

देवो के पदस्थान सबध मे शास्त्रीय अनेक मत मतान्तर हैं। इन हरएक का सारांश यह है कि 'दीवार से दूर रखकर मूर्त्ति को स्थापित करना चाहिये'। दीवार से चीपका करके किसी भी देव की मूर्त्ति स्थापित नही करना चाहिये। इस विषय मे यह अयकार मतमतान्तर को छोड करके गर्भगृह के ऊपर के पाट के आगे के भाग मे देवो को स्थापित करना लिखते हैं, यह वास्तविक है।

रेखा—

शिखर की ऊचाई की गोलाई का निश्चय करने के लिये शिखर के नीचे के पायचे से ऊपर के स्कध तक जो लकीरें खीची जाती है, उसको रेखा कहते हैं। रेखाओ से शिखर निर्दोष बनता है। ऐसा शिल्पीवर्ग मे मान्यता है। मगर इस रेखा सबधी रहस्यमय ज्ञान लुप्त प्राय हो गया है। जिसे इसका रहस्य मुझे मालूम नही हो सका, जोकि अनुवाद मे पृष्ठ न० ७७ मे एक रेखा चित्र दिया है, जिससे शिल्पिगण इस पर विचार करके रेखा की वास्तविकता का निर्णय करेंगे तो वास्तु शास्त्र के इस विषय का प्रचार हो सकेगा।

ध्वजादंड—

वास्तु शिल्पशास्त्र का विशेष अध्ययन न होने से शिल्पिगण ध्वजादड रखने का स्थान विस्मृत होगये है, जिसे ये देवालय का निर्माण करते समय ध्वजादड को आमलसार मे स्थापन करते हैं, यह प्रामाणिक नही है। शास्त्र मे शिखर की ऊचाई का छह भाग करके ऊपर के छट्ठे भाग का फिर चार भाग करके नीचे का एक भाग छोड देना, उसके ऊपर का तीसरे भाग मे ध्वजादड रखने का कलावा बनाना लिखा है। देखो पेज न० ८६,६० । एव ध्वजादड को मजबूत रखने के लिये उसके साथ एक दडिका भी बज्रबध करके रखी जाती है। यह प्रथा तो प्राय बिलकुल लुप्त होगई है।

शास्त्र मे ध्वजाधार का स्थान लिखा है, परन्तु शिल्पी ध्वजाधार का अर्थ ध्वजा को धारण करने वाला 'ध्वजपुरुष' ऐसा करते हैं, जिसे ध्वजादड रखने के स्थान पर ध्वजपुरुष की आकृति रखते हैं। और शिल्परत्नाकर पेज न० १८४ श्लोक ५४ का गुजराती अनुवाद मे 'ध्वजाधर अर्थात् ध्वजपुरुष करवो' लिखा है, उसका प्रमाण देते हैं। उन शिल्पियो को समझना चाहिये कि ध्वजाधार का अर्थ ध्वजपुरुष नही, लेकिन ध्वजादड रखने का कलाबा है।

दीपार्णव ग्रथ मे नवीन बने हुए देवालयो के चित्र दिये गये है, उनके शिखरो के आमलसारो मे ध्वजादड रखा हुआ मालूम होता है, उनको देखकर अपने ये प्रामाणिक मान लेवें तो दीपार्णव के पेज ११५ मे श्लोक ४६, ५० का अनुवाद पेज न० ११६ मे लिखा है कि—"जो स्कधना मूलमा ध्वजदड प्रविष्ट थाय तो स्कधवेध जाणवो, स्कधवेधथी स्वामी अने शिल्पीनो नाश थाय छे।" यह शास्त्रीय कथन झूठा हो जाता है। शास्त्रीय कथन सत्य मानने के लिये प्रासादमडन के पेज न० ६० मे दिये गये ध्वजदड के रेखा चित्र देखें, इस प्रकार ध्वजदड रखना प्रामाणिक है।

दीपार्णव के पृष्ठ न० १२६ की टीप्पणी मे क्षीरार्णव का एक श्लोक का प्रमाण देकर लिखा है कि—'समपर्व अने एकी कागणी वाला ध्वजादड शक्तिदेवी ना (अने महादेवना) मदिरोमा कराववो। जो के एकी के बेकी बेउ प्रकारना ध्वजादडो भवनने विषे तो शुभ ज छे।' इस बिषय मे शिल्पियो को विचार करना चाहिये। यह श्लोक क्षीरार्णव मे नही है, किसी अन्य ग्रथ का होगा या अनुवादक ने मन कल्पित बनाकर

रखा होगा, मगर 'दोनो प्रकार के ध्वजदड भवने के लिये शुभ है।' ऐसा अर्थ श्लोक से निकलता नहीं है, परन्तु शक्तिदेवी के मदिरो मे ही दोनो प्रकार के ध्वजदड बनाना ऐसा निकलता है। अन्य मदिरो के लिये तो विषमपर्व और समग्रथी वाला ही ध्वजदड रखना शास्त्रीय है।

पाचवें अध्ययन मे प्रासादो मे मुख्य जाति वैराज्य आदि पचीस प्रासादो का सविस्तर वर्णन उनकी विभक्ति के नकशे के साथ लिखा गया है।

छट्ठे अध्ययन मे केसरी जाति के पचीस प्रासादो के नाम और उनकी तल विभक्ति के मतमतान्तर लिखा है। और नव महामेरु प्रासादो का वर्णन है। केसरी आदि पचीस प्रासादो का सविस्तर वर्णन ग्रथकार ने लिखा नही है, जिसे इस ग्रथ के अत मे परिशिष्ट न० १ मे अपराजित पृच्छासूत्र० १५६ का केसरी आदि प्रासादो का सविस्तर वर्णन अनेक नकशे आदि देकर लिखा हुआ है।

सातवें अध्ययन मे प्रासाद के मडपो का सविस्तर वर्णन रेखा चित्र देकर लिखा गया है। उसम पेज न० ११६ श्लो० ७ मे 'शुकनाससमा घण्टा न्यूना श्रेष्ठा न चाधिका।' का अर्थ दीपार्णव के सम्पादक पेज न० १३३ मे नीचे टिप्पनी मे 'शुकनासथी घटा ऊची न करवी, पण नीची होय तो दोष नथी।' ऐसा लिखा है और उसकी पुष्टता के लिये अपराजित पृच्छासूत्र १८५ श्लोक १३ वा का उत्तरार्द्ध भी लिखा है। यह वास्तविक नही है, क्योकि जो उत्तरार्द्ध लिखा है वह घटा नीची रखने के सबध का नही है, परन्तु शुकनास के रखने के स्थान का विषय है। छज्जा से लेकर शिखर के स्कध तक की ऊचाई का इक्कीस भाग करना, उनमे से तेरह भाग की ऊचाई मे शुकनास रखना। तेरहवें भाग से अधिक ऊचा नही रखना, किन्तु तेरहवा भाग से नीचा रखना दोष नही है। ऐसा अर्थ है उसको आमलसार घटा का सबध मिलाना अप्रामाणिक माना जाता है।

वितान (चंदवा)—

छत के नीचे के तल भाग को वितान-चादनी अथवा चदवा कहते हैं। उसके मुख्य तीन भेद हैं—

१ छत मे जो लटकती आकृति होवे, वह 'क्षिप्तवितान' कहा जाता है।

२ छत की आकृति ऊची गोल गुम्बज के जैसी हो वह 'उत्क्षिप्त वितान' कहा जाता है।

३ यदि छत समतल हो तो उसको 'समतल वितान' कहते हैं। यह बिलकुल सादी अथवा अनेक प्रकार के चित्रों से चित्तरी हुई अथवा खुदाई वाली होती है।

दीपार्णव के पृष्ट १३८ मे श्लोक २२ के अनुवाद मे क्षिप्तोत्क्षिप्त, समतल और उदित, ये तीन प्रकार के वितान लिखे हैं। यहा उदित शब्द वद् धातु का भूत कृदन्त है, इसलिये इसका अर्थ 'कहा है' ऐसा क्रिया वाचक होना चाहिये।

संवरणा—

संवरणा को शिखरयुक्त सामरण कहते है यह मंडप की छत के ऊपर अनेक कलशों की आकृति वाला होता है। इसकी रचना शास्त्रीय पद्धति से विलक्षण होने से अपनी बुद्धि अनुसार निर्णय करना है।

आठवा अध्याय साधारण नामका है। उसमे वास्तुदोष, दिङ्मूढ दोष, जीर्णवास्तु, महादोष, भिन्नदोष, अगहीनदोष, आश्रम, मठ, प्रतिष्ठाविधि, प्रतिष्ठा मडप, यज्ञकुण्ड, मडलप्रतिष्ठा, प्रासाद देवन्यास, जिनदेवप्रतिष्ठा, जलाशयप्रतिष्ठा, वास्तुपुरुष का स्वरूप और ग्रथसमाप्ति मगल आदिका वर्णन है।

परिशिष्ट न० १ मे केसरी आदि पचीस प्रासादो का सविस्तर वर्णन है। उनकी विभक्तियो की प्रासाद सख्या मे शास्त्रीय मतातर है। जैसे—'समरागण सूत्रधार' मे अठारहवी विभक्ति का एक भी प्रासाद नही है। एव शिल्पशास्त्री नर्मदाशकर सम्पादित शिल्परत्नाकर' मे बीसवी विभक्ति का एक भी प्रासाद नही है।

शिल्परत्नाकर मे केसरी जातिका दूसरा सर्वतोभद्र प्रासाद नवशृ गो वाला है, उसके चार कोने पर और चार भद्र के ऊपर एक एक शृ ग चढाया है, यह शास्त्रीय नही है, क्योकि सपादक ने इसमे मन कल्पित परिवर्त्तन कर दिया है। शास्त्र मे तो नवशृ ग कोने के ऊपर चढाने का और भद्र के ऊपर शृ ग नही चढाने का लिखा है। क्षीरार्णव ग्रथ मे साफ लिखा है कि—'कर्णे शृङ्गद्वय कार्यं भद्रे शृ ग विवर्जयेत्।' इस प्रकार सोमपुरा अबाराम विश्वनाथ प्रकाशित 'केसरादि प्रासादमडन' के पृष्ठ २५ श्लोक १० मे भी लिखा है। मगर शिल्परत्नाकर के सम्पादक ने इस श्लोक का परिवर्तन करके 'कर्णे शृ ग तथा कार्यं भद्रे शृ ग तथैव च'। ऐसा लिखा है। इस प्रकार प्राचीन वास्तुशिल्पका परिवर्त्तन करना विद्वानोको के लिये अनुचित माना जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि—दीपार्णव के सम्पादक ने भी सर्वतोभद्र प्रासाद के शृ गो का क्रम रक्खा, देखिये पृष्ठ न० ३२१ मे सर्वतोभद्र प्रासाद के शिखर का रेखाचित्र।

परिशिष्ट न० २ मे जिनप्रासादो का सविस्तृत वर्णन है। इन प्रासादो के ऊपर श्रीवत्स शृ गो के वदले केसरी आदि शृ गो का क्रम चढाने का लिखा है। क्रम शब्द यहा शृ गो का समुहवाचक माना जाता है। पहला क्रम पाच शृ गो का दूसरा क्रम नव शृ गो का, तीसरा क्रम तेरह शृ गोका, चौथा क्रम सत्रह शृ गो का और पाचवा क्रम इक्कीस शृ गो का समुह है। अर्थात् केसरी आदि प्रासादो की शृ ग सख्या को क्रम की सज्ञा दी है।

शास्त्रकार जितना न्यूनाधिक क्रम चढाने का लिखते है, वहा आधुनिक शिल्पी नीचे की पक्ति मे एकही सख्या के क्रम चढाते है। जैसे कि—किसी प्रासाद के कोनेके ऊपर चार क्रम, प्रतिकर्ण के ऊपर तीन क्रम, उपरथ के ऊपर दो क्रम चढाने का लिखा है। वहा आधुनिक शिल्पी नीचे की प्रथम पक्ति मे सबके ऊपर चौथा क्रम चढाते है। उसके ऊपर की पक्ति मे सबके ऊपर तीसरा क्रम चढाते हैं। यह नियम अशास्त्रीय है। इस प्रकार प्राचीन देवालयो मे चढाये हुए नही हैं। शास्त्रीय नियम ऐसा है कि—जिस अग के ऊपर जितना क्रम चढाने का लिखा है, वहा सब जगह प्रथम क्रम से ही गिन करके चढावें। अर्थात् कोने के ऊपर चार क्रम चढाने का है वहा नीचे की प्रथम पक्ति मे चौथा, उसके ऊपर तीसरा, उसके ऊपर दूसरा और उसके ऊपर पहला क्रम चढाया जाता है। प्रतिकर्ण के ऊपर तीन क्रम चढाने का लिखा है, वहा नीचे की प्रथम पक्ति मे तीसरा, उसके ऊपर दूसरा और उसके ऊपर प्रथम, उपरथ के ऊपर दो क्रम चढाने का लिखा हो वहा पहला क्रम दूसरा, उसके ऊपर पहला क्रम चढाना चाहिये। देखिये अपराजित पृच्छासूत्र के पुष्पकादि प्रासादो की जाति। ऐसा शास्त्रीय नियम के अनुसार नही करने से शिल्परत्नाकर के अष्टम रत्न मे जिनप्रासादो का स्वरूप लिखा है—उसमे शृ गो की क्रम सख्या बराबर नही मिलती है, उसकी कोपी टु

कोपी दीपार्णव के सम्पादक ने की हैं जिसे उसमे तो जिनप्रासादो के शृ गो की क्रम सख्या मिले ही कहा से यह उनना ही नहीं खुद के नियमानुसार भी शृ गो की क्रम सख्या वरावर नही मिलती ।

वडे हर्ष का विषय है कि भारतीय प्राचीन सस्कृतिके साहित्यका भारतीय भाषा मे प्रथम वार ही हिन्दी साहित्य की पूर्तिरूप प्रकाशित हो रहा है । मैने कई वर्ष तक इस विषय के अनेक ग्रथो का मनन पूर्वक अध्ययन करके तथा शिल्पीवर्ग के सहयोग से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करके, एव प्राचीन देवालयो और ईमारतो का अवलोकन करके इस ग्रथ को यथार्थ रूप मे आप सज्जनो के सामने उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

इस ग्रथ मे जो विषय कम मालुम होता था, उसको दूसरे ग्रथो से लेकर यथा स्थान रखा गया है और जिसके अनुवाद मे शकास्पद मालुम होता था, इसकी स्पष्टता करने के लिये दूसरे ग्रथो का प्रमाण भी दिया गया है । एकदर इस विषय का अध्ययन करने वाले अच्छी तरह समझ सके इस पर पूर्ण ध्यान रखा गया है । तथा पारिभाषिक शब्दो का अर्थ हिन्दी भाषा मे पूर्णरूप से प्राप्त नही होने से मूलभाषा (सस्कृत) मे ही रखा गया है । जिसे सार्वदेशीय अध्ययन करनेवाले को अनुकूलता हो सकेगी । आशा करता हू कि इस विषय का अध्ययन करके कोई विषय की भूल मालूम होवे तो सूचित करने की कृपा करेंगे ।

प्रारभिक अभ्यास के समय बीस वर्ष पहले परमजैन चद्रागज ठकुर 'फेरु' विरचित 'वत्थुसारपयरण' अर्थात् वास्तुसार प्रकरण नामक का प्राकृत शिल्प ग्रथ को अनुवाद पूर्वक मैंने छपवाया था, उसमे कई एक जगह मेरु मडोवर आदि की भूल दृष्टिगोचर होती है, उसको इस ग्रथ से सुधार करके पढने की कृपा करें ।

अथाग परिश्रम करके इस ग्रथ की विस्तृत भूमिका लिखने की कृपा की है, उन श्रीमान् सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल 'अध्यक्ष कला और वास्तु विभाग, काशी विश्वविद्यालय' का धन्यवाद पूर्वक आभार मानता हू । एव इसके अनुवाद की कितनेक भाषा दोषो को सुधार करके सुन्दर छाप काम कर देने वाले अजता प्रिंटर्स के अध्यक्ष महोदय का भी आभार मानना भूला नही जाता ।

सज्जनो से प्रार्थना है कि—मेरी मातृभाषा गुजराती होने से अनुवाद मे भाषादोष अवश्य रहा होगा, उसको क्षमाप्रदान करते हुए सुधार करके पढे ऐसी विनम्र प्रार्थना है । इति शुभम् ।

फागुण शुकला ५ गुरु वार स० २०१९
जयपुर सिटी (राजस्थान)

भगवानदास जैन

सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० वासुदेवशरणजी अग्रवाल 'अध्यक्ष-कला वास्तु विभाग, काशी विश्वविद्यालय' द्वारा लिखी हुई गुजराती अनुवाद वाला प्रासाद मण्डन की—

भूमिका

जयपुर के श्री प० भगवानदास जैन उन चुने हुए विद्वानो मे से हैं, जिन्होने भारतीय स्थापत्य और वास्तु शिल्प के अध्ययन मे विशेष परिश्रम किया है। सन् १९३६ मे ठक्कुरफेरु विरचित 'वास्तु-सार-प्रकरण' नामक वास्तु सबधी महत्वपूर्ण प्राकृत ग्रन्थ को मूल हिन्दी भाषान्तर और अनेक चित्रो के साथ उन्होने प्रकाशित किया था। उस ग्रन्थ को देखते ही मुझे निश्चय हो गया कि प० भगवानदास ने परम्परागत भारतीय शिल्प के पारिभाषिक शब्दो को ठीक प्रकार समझा है और उन पारिभाषाओ के आधार पर वे मध्य कालीन शिल्प-ग्रन्थो के सम्पादन और व्याख्यान के सर्वथा अधिकारी विद्वान् हैं। शिल्प शास्त्र के अनुसार निर्मित मन्दिरो या देव प्रासादो के वास्तु की भी वे बहुत अच्छी व्याख्या कर सकते हैं, इसका अनुभव मुझे तब हुआ जब कई वर्ष पूर्व उन्हे साथ लेकर मैं आमेर के भव्य मन्दिरो को देखने गया और वहा पण्डितजी ने प्रासाद के उत्सेध या उदय सबधी भिन्न भिन्न भागो का प्राचीन शब्दावली के साथ विवेचन किया। इस प्रकार की योग्यता रखने वाले विद्वान् इस समय विरल ही हैं। भारतीय-शिल्प-शास्त्र के जो अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं उनकी प्राचीन शब्दावली से मिलाकर अद्यावधि विद्यमान मदिरो के वास्तु-शिल्प की व्याख्या, यह एक अत्यन्त आवश्यक कार्य है। जिस की पूर्ति वर्तमान समय मे भारतीय स्थापत्य के सुस्पष्ट अध्ययन के लिये आवश्यक है। श्री प० भगवानदास जैन इस ओर अग्रसर है, इसका महत्वपूर्ण प्रमाण उनका ऊपर किया हुआ 'प्रासाद-मण्डन' का वर्तमान गुजराती अनुवाद है। इसमे मूल ग्रन्थ के साथ गुजराती व्याख्या और अनेक टिप्पणिया दी गई हैं और साथ मे विषय को स्पष्ट करने के लिए अनेक चित्र भी मुद्रित है।

'सूत्रधार मडन' के विषय मे हमे निश्चित जानकारी प्राप्त होती है।[1] वे चित्तौड के राणा कुभकर्ण या कुम्भा (१४३३-१४६८ ई०) राज्यकाल मे हुए। राणा कुम्भा ने अपने राज्य मे अनेक प्रकार से सस्कृति का सवर्धन किया। सगीत की उन्नति के लिए उन्होने अत्यन्त विशाल 'सगीत-राज' ग्रथ का प्रणयन किया। सौभाग्य से यह ग्रन्थ सुरक्षित है और इस समय हिन्दू विश्व विद्यालय की ओर से इसका मुद्रण हो रहा है। राणा कुम्भा ने कवि जयदेव के गीत गोविन्द पर स्वय एक उत्तम टीका लिखी। उन्होने ही चित्तौड मे सुप्रसिद्ध कीर्तिस्तभ का निर्माण कराया। उनके राज्य मे कई प्रसिद्ध शिल्पी थे। उनके द्वारा राणा ने अनेक वास्तु और स्थापत्य के कार्य सपादित कराए। 'कीर्तिस्तम्भ' के निर्माण का कार्य सूत्रधार 'जइता' और उसके दो पुत्र सूत्रधार नापा और पूजा ने १४४२ से १४४८ तक के समय मे पूरा

१—श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल, १५ वी शती मे मेवाड के कुछ प्रसिद्ध सूत्रधार और स्थपति सम्राट् (Some Famous Sculptors & Architects of Mewar—15th century A D) इन्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, भाग ३३, अक ४, दिसम्बर १९५७ पृ० ३२१—३३४

किया । इस कार्य मे उसके दो ग्रन्य पुत्र पामा और वलराज भी उसके सहायक थे । राणा कुम्भा के ग्रन्य प्रसिद्ध राजकीय स्थपति सूत्रधार मण्डन हुए । वे सस्कृत भाषा के भी अच्छे विद्वान् थे । उन्होने निम्न लिखित शिल्प ग्रन्थो की सस्कृत मे रचना की—

प्रासाद मण्डन, वास्तु मण्डन, रूप मण्डन, राज–वल्लभ मण्डन, देवता मूर्ति प्रकरण, रूपावतार, वास्तुसार, वास्तु-शास्त्र । राजवल्लभ ग्रन्थ मे उन्होने ग्रपने सरक्षक सम्राट् राणा कुम्भा का इस प्रकार गौरव के साथ उल्लेख किया है—

"श्रीमेदपाटे नृपकुम्भकर्ण—स्तदङ्घ्रिराजीवपरागसेवी ।
समण्डनाख्यो भुवि सूत्रधारस्तेनोद्धृतो भूपतिवल्लभोऽयम् ।"
(१४—४३)

रूपमण्डन ग्रन्थ मे सूत्रधार मण्डन ने ग्रपने विषय मे लिखा है—

"श्रीमद्देशे मेदपाटाभिधाने क्षेत्राख्योऽभूत् सूत्रधारो वरिष्ठ ।
पुत्रो ज्येष्ठो मण्डनस्तस्य तेन प्रोक्त शास्त्र मण्डन रूपपूर्वम् ।"
(६—४०)

इससे ज्ञात होता है कि मण्डन के पिता का नाम सूत्रधार क्षेत्र था । इन्हे ही ग्रन्य लेखो मे क्षेत्राक भी कहा गया है । क्षेत्राक का एक दूसरा पुत्र सूत्रधार नाथ भी था जिसने 'वास्तु मजरी' नामक ग्रन्थ की रचना की । सूत्रधार मण्डन का ज्येष्ठ पुत्र सूत्रधार गोविन्द और छोटा पुत्र सूत्रधार ईश्वर था । सूत्रधार गोविन्द ने तीन ग्रन्थो की रचना की—उद्धार धोरणि, कलानिधि और द्वारदीपिका । कलानिधि ग्रन्थ मे उसने ग्रपने विषय मे और ग्रपने सरक्षक राणा श्री राजमल्ल (रायमल्ल) के विषय मे लिखा है—

"सूत्रधार सदाचार कलाधार कलानिधि ।
दण्डाधार सुरागार श्रिये गोविन्दयादिशत् ॥
राज्ञा श्री राजमल्ले (न) प्रीतस्यामि (ति) मनोहरे ।
प्रणम्यमाने प्रासादे गोविन्द सव्यधादिदम् ॥"
(विक्र, स १५५४)

राणा कु भा की पुत्री रमा बाई का एक लेख (विक्रम स १५५४) जावर से प्राप्त हुआ है जिसमे क्षेत्राक के पौत्र और सूत्रधार मण्डन के पुत्र ईश्वर ने [1]कमठाणा बनाने का उल्लेख है—

"श्रीमेदपाटे वरे देशे कुम्भकर्णनृपगृहे क्षेत्राकसूत्रधारस्य पुत्रो मण्डन ग्रात्मवान् सूत्रधारमण्डन सुत ईशरए कमठाणु विरचित ।"

ईश्वर ने जावर मे विष्णु के मन्दिर का निर्माण किया था । इसी ईश्वर का पुत्र सूत्रधार छीतर था जिसका उल्लेख विक्रम स १५५६ (१४६६ ई) के चितौड से प्राप्त एक लेख मे ग्राया है । यह राणा राय-

---

१—गृह और देवालय ग्रादि इमारती काम को ग्रभी भी राजस्थानीय शिल्पी 'कमठाणा' बोलते हैं ।

मल्ल के समय में उनका राजकीय स्थपति था । इससे विदित होता है कि राणा कु भा के बाद श्री सूत्रधार मण्डन के वशज राजकीय शिल्पियो के रूप मे कार्य करते रहे । उन्होने ही उदयपुर के प्रसिद्ध जगदीश मदिर और उदयपुर से चालीस मील दूर काकरौली मे बने हुए राज समुद्र सागर का निर्माण किया ।

राणा कु भा के राज्य काल मे राणकपुर मे सूत्रधार देपाक ने विक्रम स १४९६ (१४३९ ई) मे सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर का निर्माण किया । कु भा की पुत्री रमा बाई ने कु भलगढ मे दामोदर मदिर के निर्माण के लिए सूत्रधार रामा को नियुक्त किया । सूत्रधार मण्डन को राणा कु भा का पूरा विश्वास प्राप्त था । उन्होने कु भलगढ के प्रसिद्ध दुर्ग की वास्तु-कल्पना और निर्माण का कार्य सूत्रधार मण्डन को स १५१५ (१४५८ई) मे सौंपा । यह प्रसिद्ध दुर्ग आज भी अधिकाश मे सुरक्षित है और मण्डन की प्रतिभा का साक्षी है । उदयपुर से १४ मील दूर एकलिंग जी नामक भगवान् शिव का सुप्रसिद्ध मन्दिर है । उसी के समीप एक अन्य विष्णु मन्दिर भी है । श्री रत्नचन्द अग्रवाल का अनुमान है कि उसका निर्माण भी सूत्रधार मण्डन ने ही किया था । उस मदिर की भित्तियो के बाहर की ओर तीन रथिकाए हैं । उनमे नृसिंह वराह-विष्णुमुखी तीन मूर्तिया स्थापित हैं । उनकी रचना रूप मण्डन ग्रथ मे वर्णित लक्षणो के अनुसार ही की गई है । एक अष्टभुजी मूर्ति भगवान् वैकुण्ठ की है । दूसरी द्वादशभुजी मूर्ति भगवान् अनत की है और तीसरी सोलह हाथो वाली मूर्ति त्रैलोक्य मोहन की है इनके लक्षण सूत्रधार मण्डन ने अपने रूपमण्डन ग्रथ के तीसरे अध्याय मे (श्लोक ५२-६२ दिये है ।[1]

इनके अतिरिक्त सूत्रधार मण्डन ने और भी कितनी ही ब्राह्मण धर्म सबधी देव मूर्तिया बनाई थी । उपलब्ध मूर्तियो की चौकियो पर लेख उत्कीर्ण हैं । जिनमे मूर्ति का नाम राणा कु भा का नाम और स १५१५-१५१६ की निर्माण तिथि का उल्लेख है । ये मूर्तिया लगभग कु भलगढ दुर्ग के साथ ही बनाई गई थी । तब तक दुर्ग मे किसी मदिर का निर्माण नही हुआ था, अतएव वे एक वट वृक्ष के नीचे स्थापित कर दी गई थी । इस प्रकार की छ मातृका मूर्तिया उदयपुर के सग्रहालय मे विद्यमान है जिन पर इस प्रकार लेख हैं—

"स्वस्ति श्री स० १५१५ वर्षे तथा शाके १३८० प्रवर्त्तमाने फाल्गुन शुदि १२ बुधे पुष्य नक्षत्रे श्री कु भल मेरु महादुर्गे महाराजाधिराज श्री कु भकर्ण पृथ्वी पुरन्दरेण श्री ब्रह्माणी मूर्ति अस्मिन् वटे स्थापिता । शुभ भवत ।। श्री ।।"

इसी प्रकार के लेख माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही और ऐन्द्री मूर्तियो की चरण चौकियो पर भी हैं। इसी प्रकार चतुर्विंशति वर्ग की विष्णु मूर्तियो का भी रूप मण्डन मे (अध्याय ३,श्लोक १०-२२) विशद वर्णन आया है । उनमे से १२ मूर्तिया कु भलगढ से प्राप्त हो चुकी है जो इस समय उदयपुर के सग्रहालय मे सुरक्षित हैं । ये मूर्तिया भगवान विष्णु के सकर्षण, माधव, मधुसूदन, अधोक्षज, प्रद्युम्न, केशव, पुरुषोत्तम, अनिरुद्ध, वासुदेव, दामोदर जनार्दन और गोविन्द रूप की है । इनकी चौकियो पर इस प्रकार लेख हैं—

"स० १५१६ वर्षे शाके १३८२ वर्त्तमाने आश्विन शुद्ध ३ श्री कु भमेरौ महाराज श्री कु भकर्णान् वटे सकर्षण मूर्ति सस्थापिता शुभ भवतु ।।[2]"

१—दे० रत्नचन्द्र अग्रवाल, राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला मे महाविष्णु सबधी कुछ पत्रिकाए, शोधपत्रिका, उदयपुर, भाग ६, अक १ (पौष, वि० स० २०१४) पृ० ६, १४, १७ ।

२— रत्नचन्द्र अग्रवाल रूप मण्डन तथा कु भलगढ से प्राप्त महत्वपूर्ण प्रस्तर प्रतिमाए, शोध पत्रिका भाग ८ अक ३ (चैत्र, वि० स० २०१४), पृ० १—१२

इन सब मूर्तियो की रचना रूप मण्डन ग्रन्थ मे वर्णित लक्षणो के अनुसार यथार्थत हुई है। स्पष्ट है कि सूत्रधार मण्डन शास्त्र और प्रयोग दोनो मे निपुण अभ्यासी थे। शिल्प शास्त्र मे वे जिन लक्षणों का उल्लेख करते थे उन्ही के अनुसार स्वय या अपने शिष्यो द्वारा देव मूर्तियो की रचना भी कराते जाते थे।

किसी समय अपने देश मे सूत्रधार मण्डन जैसे सहस्रो की सख्या मे लब्ध कीर्ति स्थपति और वास्तु विद्याचार्य हुए। एलोरा के कैलाश मन्दिर, खजुराहो के कदरिया महादेव, भुवनेश्वर के लिङ्गराज, तजोर के बृहदीश्वर, कोणार्क के सूर्यदेउल आदि एक से एक भव्य देव प्रासादो के निर्माण का श्रेय जिन शिल्पाचार्यों की कल्पना मे स्फुरित हुआ और जिन्होने अपने कार्य कौशल से उन्हे मूर्त रूप दिया वे सचमुच धन्य थे और उन्होने ही भारतीय सस्कृति के मार्ग-दर्शन का शाश्वत कार्य किया।

उन्ही की परम्परा मे सूत्रधार मण्डन भी थे। देव-प्रासाद एव नृप मदिर आदि के निर्माण कर्ता सूत्रधारो का कितना अधिक सम्मानित स्थान था यह मण्डन के निम्न लिखित श्लोक से ज्ञात होता है—

"इत्यनन्तरत कुर्यात् सूत्रधारस्य पूजनम्।
भूवित्तवस्त्रालङ्कारै-र्गोमहिष्यश्ववाहनै ॥
अन्येषा शिल्पिना पूजा कर्त्तव्या कर्मकारिणाम्।
स्वाधिकारानुसारेण वस्त्रताम्बूलभोजनै ॥
काष्ठपाषाणनिर्माण-कारिणो यत्र मन्दिरे।
भुञ्जतेऽसौ तत्र सौख्य शङ्करस्त्रिदशै सह ॥
पुण्य प्रासादज स्वामी प्रार्थयेत्सूत्रधारत।
सूत्रधारो वदेत् स्वामिन्नक्षय भवतात्तव ॥"
प्रासादमण्डन ८ ८२-८५

अर्थात् निर्माण की समाप्ति के अनन्तर सूत्रधार का पूजन करना चाहिये और अपनी शक्ति के अनुसार भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, अलङ्कार के द्वारा प्रधान सूत्रधार एव उनके सहयोगी अन्य शिल्पियो का सम्मान करना आवश्यक है।

जिस मन्दिर मे शिला या काष्ठ द्वारा निर्माण कार्य करने वाले शिल्पी भोजन करते है वही भगवान् शकर देवो के साथ विराजते हैं। प्रासाद या देव मन्दिर के निर्माण मे जो पुण्य है उस पुण्य की प्राप्ति के लिये सूत्रधार से प्रार्थना करनी चाहिए, 'हे सूत्रधार, तुम्हारी कृपा से प्रासाद निर्माण का पुण्य मुझे प्राप्त हो।' इसके उत्तर मे सूत्रधार कहे—हे स्वामिन्! सब प्रकार आप की अक्षय वृद्धि हो।

सूत्रधार के प्रति सम्मान प्रदर्शन की यह प्रथा लोक मे आजतक जीवित है, जब सूत्रधार शिल्पी नूतन गृह का द्वार रोककर स्वामी से कहता है 'आजतक यह गृह मेरा था, अब आज से यह तुम्हारा हुआ।' उसके अनन्तर गृह स्वामी सूत्रधार को इष्ट-वस्तु देकर प्रसन्न करता है और फिर गृह मे प्रवेश करता है।

सूत्रधार मण्डन का प्रासाद-मण्डन ग्रन्थ भारतीय शिल्प ग्रन्थो मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मण्डन ने आठ अध्यायो मे देव-प्रासादो के निर्माण का स्पष्ट और विस्तृत वर्णन किया है। पहले अध्याय मे विश्वकर्मा को सृष्टि का प्रथम सूत्रधार कहा गया है। गृहो के विन्यास और प्रवेश की जो धार्मिक विधि

है, उन सब का पालन देवायतनो मे भी करना उचित है। चतुर्दश श्लोको मे जिन जिन प्रासादो के आकार देवो ने शकर की पूजा के लिए बनाये उन्ही की अनुकृति पर १४ प्रकार के प्रासाद प्रचलित हुए। उनमे देश-भेद से ८ प्रकार के प्रासाद उत्तम जाति के माने जाते है—

नागर, द्राविड, भूमिज, लतिन, सावन्धार (सान्धार), विमान-नागर, पुष्पक और मिश्र। लतिन सम्भवत उस प्रकार के शिखर को कहते थे जिसके उर शृ ग मे लता की आकृति का उठता हुआ रूप बनाया जाता था। शिखरो के ये भेद विशेषकर शृ ग और तिलक नामक अलकरणो के विभेद के कारण होते हैं।

प्रासाद के लिए भूमि का निरूपण आवश्यक है। जो भूमि चुनी जाय उसमे ६४ या सौ पद का घर बनाने चाहिए। प्रत्येक घर का एक-एक देव होता है जिसके नाम से वह पद पुकारा जाता है। मदिर के निर्माण मे नक्षत्रो के शुभाशुभ का भी विचार किया जाता है। यहा तक कि निर्माण कर्ता के अतिरिक्त स्थापक अर्थात् स्थपति और जिस देवता का मन्दिर हो उनके भी नवाङ्ग नाडी वेध का मिलान आवश्यक माना गया है। काष्ठ, मिट्टी, ई ट, शिला, धातु और रत्न इन उपकरणो से मदिर बनाए जाते है इनमे उत्तरोत्तर का अधिक पुण्य है। पत्थर के प्रासाद का फल अनत कहा गया है। भारतीय देव प्रासाद अत्यन्त पवित्र कल्पना है। विश्व को जन्म देने वाले देवाधिदेव भगवान का निवास देवगृह या मदिर मे माना जाता है। जिसे वेदो मे हिरण्यगर्भ कहा गया है। वही देव मदिर का गर्भगृह है। सृष्टि का मूल जो प्राण तत्व है उसे ही हिरण्य कहते हैं। प्रत्येक देव प्राणतत्व है' वही हिरण्य है, "एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" के अनुसार एक ही देव अनेक देवो के रूप मे अभिव्यक्त होता है। प्रत्येक देव हिरण्य की एक-एक कला है अर्थात् मूल-भूत प्राण तत्त्व की एक-एक रश्मि है। मन्दिर का जो उत्सेध या ब्रह्म सूत्र है वही समस्त सृष्टि का मेरु या यूप है। उसे ही वेदो मे 'बाण' कहा गया है। एक बाण वह है जो स्थूल दृश्य सृष्टि का आधार है और जो पृथिवी से लेकर द्यु लोक तक प्रत्येक वस्तु मे ओत-प्रोत है। द्यावा पृथिवी को वैदिक परिभाषा मे रोदसी ब्रह्माण्ड कहते हैं। इस रोदसी सृष्टि मे व्याप्त जो ब्रह्मसूत्र है वही इसका मूलाधार है। उसे ही वैदिक भाषा मे 'ओपश' भी कहा जाता है। बाण, ओपश, मेरु, ब्रह्मसूत्र ये सब समानार्थक है और इस दृश्य जगत् के उस आधार को सूचित करते है जिस ध्रु व विन्दु पर प्रत्येक प्राणी अपने जीवन मे जन्म से मृत्यु तक प्रतिष्ठित रहता है। यह मनुष्य शरीर और इसके भीतर प्रतिष्ठित प्राणतत्त्व विश्वकर्मा की सबसे रहस्यमयी कृति है। देव मन्दिर का निर्माण भी सर्वथा इसी की अनुकृति है। जो चेतना या प्राण है। वही देव-विग्रह या देव मूर्ति हैं और मन्दिर उसका शरीर है प्राण प्रतिष्ठा से पाषाणघटित प्रतिमा देवत्त्व प्राप्त करती है। जिस प्रकार इस प्रत्यक्ष जगत् मे भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ, तीन लोक हैं, उसी प्रकार मनुष्य शरीर मे और प्रासाद मे भी तीन लोको की कल्पना है। पैर पृथिवी है, मध्यभाग अन्तरिक्ष है और सिर द्यु लोक है। इसी प्रकार मन्दिर की जगती या अधिष्ठान पादस्थानीय है, गर्भगृह या मण्डोवर मध्यस्थानीय है और शिखर द्यु लोक या शीर्ष-भाग है। यह त्रिक यज्ञ की तीन अग्नियो का प्रतिनिधि है। मूल भूत एक अग्नि सृष्टि के लिए तीन रूपो मे प्रकट हो रही है। उन्हे ही उपनिषदो की परिभाषा मे मन, प्राण और वाक् कहते हैं। वहा वाक् का तात्पर्य पचभूतो से है क्योकि पचभूतो मे आकाश सबसे सूक्ष्म है और आकाश का गुण शब्द या वाक् है। अतएव वाक् को आकाशादि पाचो भूतो का प्रतीक मानलिया गया है। मनुष्य शरीर मे जो प्राणाग्नि है वह मन, प्राण और पचभूतो के मिलने से उत्पन्न हुई है (एतन्मयो वाऽअयमात्म वाङ्मयो मनोमय प्राणमय शतपथ १४।४।३।१०) पुरुष के भीतर प्रज्वलित इस अग्नि को ही वैश्वानर कहते हैं (स एषोऽग्निर्वैश्वानरो यत्पुरुष, शतपथ १०।६।१।११)। जो वैश्वानर अग्नि है वही पुरुष है जो पुरुष है वही देव-विग्रह या देवमूर्ति के रूप मे दृश्य होता है। मूर्त और अमूर्त, निसक्त और अनिसक्त ये प्रजापति के दो रूप हैं। जो

मूर्त है वह त्रिलोकी के रूप मे दृश्य और परिमित है। जो अमूर्त है वह अव्यक्त और अपरिमित है। जिसे पुरुष के रूप मे वैश्वानर कहा जाता है वही समष्टि के रूप मे पृथिवी अतरिक्ष और द्यु लोक रूपी त्रिलोकी है।

"स य स वैश्वानर । इमे स लोका । इयमेव
पृथिवी विश्वमग्निर्नर । अतरिक्षमेव विश्व वायुर्नर ।
द्यौरेव विश्वमादित्यो नर । शतपथ ६।३।१।३ ।"

इस प्रकार मनुष्य देह, अखिल ब्रह्माण्ड और देव प्रासाद इन तीनो का स्वरूप सर्वथा एक—दूसरे के साथ सतुलित एव प्रतीकात्मक है। जो पिण्ड मे है वही ब्रह्माण्ड मे है और जो उन दोनो मे है उसीका मूर्तरूप देव–प्रासाद है। इसी सिद्धान्त पर भारतीय देव–मदिर की ध्रुव कल्पना हुई है। मदिर के गर्भ गृह मे जो देव विग्रह है वह उस अनादि अनन्त ब्रह्म तत्व का प्रतीक है जिसे वैदिक भाषा मे प्राण कहा गया है। जो सृष्टि से पूर्व मे भी था, जो विश्व के रोम–रोम मे व्याप्त है, वही प्राण सबका ईश्वर है। सब उसके वश मे हैं। सृष्टि के पूर्व की अवस्था मे उसे असत् कहा जाता है और सृष्टि की अवस्था मे उसे ही सत् कहते हैं। देव और भूत ये ही दो तत्त्व हैं जिनसे समस्त विश्व विरचित है। देव, अमृत, ज्योति और सत्य है। भूत मर्त्य, तम और अनृत है। भूत को ही असुर कहते हैं। हम सबकी एक ही समस्या है। अर्थात् मृत्यु, तम और असत्य से अपनी रक्षा करना और अमृत, ज्योति एव सत्य की शरण मे जाना। यही देव का आश्रय है। देव की शरणागति मनुष्य के लिए रक्षा का एक मात्र मार्ग है। यहाँ कोई प्राणी ऐसा नही जो मृत्यु और अन्धकार से बचकर अमृत और प्रकाश की आकाक्षा न करता हो अतएव देवाराधन ही मर्त्य मानव के लिये एकमात्र श्रेयपथ है। इस तत्त्व से ही भारतीय सस्कृति के वैदिक युग मे यज्ञ सस्था का जन्म हुआ। प्राणाग्नि की उपासना ही यज्ञ का मूल है। त्रिलोकी या रोदसी ब्रह्माण्ड की मूलभूत शक्ति को रुद्र कहते है। 'अग्निर्वैरुद्र' इस सूत्र के अनुसार जो प्राणाग्नि है वही रुद्र है। 'एक एवा–ग्निर्बहुधा समिद्ध' इस वैदिक परिभाषा के अनुसार जिस प्रकार एक मूलभूत अग्नि से अन्य अनेक अग्नियो का समिन्धन होता है उसी प्रकार एक देव अनेक देवो के रूप मे लोक मानस की कल्पना मे आता है। कौन देव महिमा मे अधिक है यह प्रश्न ही असगत है। प्रत्येक देव अमृत का रूप है। वह शक्ति का अनन्त अक्षय स्रोत है। उसके विषय मे उत्तर और अधर या बडे–छोटे के तारतम्य की कल्पना नही की जा सकती।

देव तत्त्व मूल मे अव्यक्त है। उसे ही ध्यान की शक्ति से व्यक्त किया जाता है। हृदय की इस अद्-भुत शक्ति को ही प्रेम या भक्ति कहते हैं। यज्ञ के अनुष्ठान मे और देवप्रासादो के अनुष्ठान मे मूलत कोई अन्तर नही है। जिस प्रकार यज्ञ को त्रिभुवन की नाभि कहा जाता था और उसकी अग्नि जिस वेदि मे प्रज्व-लित होती थी उस वेदि को अनादि अनत पृथ्वी का केन्द्र मानते थे, उसी प्रकार देव मन्दिर के रूप मे समष्टि विश्व व्यस्टि के लिये मूर्त बनता है और जो समष्टि का सहस्र शीर्षा पुरुष है वह व्यष्टि के लिये देव–विग्रह के रूप मे मूर्त होता है। यज्ञो के द्वारा देव तत्व की उपासना एव देव प्रासादो के द्वारा उन्ही देव तत्व की आराधना ये दोनो ही भारतीय सस्कृति के समान प्रतीक थे। देव मदिर मे जो मूर्त्त विग्रह की प्रदक्षिणा या परिक्रमा की जाती है उसका अभिप्राय भी यही है कि हम अपने आप को उस प्रभाव–क्षेत्र मे लीन कर देते हैं जिसे देव की महान् प्राणशक्ति या महिमा कहा जा सकता है। उपासना या आराधना का मूलतत्व यह है कि मनुष्य स्वय देव हो जाय। जो स्वय अदेव है अर्थात् देव नही बन पाता वह देव को पूजा नही कर सकता। मनुष्य के भीतर प्राण और मन ये दोनो देव रूप ही है। इनमे दिव्य भाव उत्पन्न करके ही प्राणी देव की उपासना के योग्य बनता है।

जो देव तत्त्व है वही वैदिक भाषा मे अग्नि तत्त्व के नाम से अभिहित किया जाता है। कहा है— 'अग्नि सर्वा देवता' अर्थात् जितने देव है अग्नि सबका प्रतीक है। अग्नि सर्वदेवमय है। सृष्टि की जितनी दिव्य या समष्टिगत शक्तिया हैं उन सबको प्राणाग्नि इस मनुष्य देह मे प्रतिष्ठित रखती है। इसी तत्त्व को लेकर देव प्रासादो के स्वरूपका विकास हुआ। जिस प्रकार यज्ञवेदी मे अग्नि का स्थान है उसी प्रकार देव की प्रतिष्ठा के लिए प्रासाद की कल्पना है। देव तत्त्व के साक्षात्कार का महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक प्राणी उसे अपने ही भीतर प्राप्त कर सकता है। जो देव द्यावा पृथिवी के विशाल अतराल मे व्याप्त है वही प्रत्येक प्राणी के अत-करण मे है। जैसा कालिदास ने कहा है—

'वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुष व्याप्य स्थित रोदसी,
अतर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते ।,

अर्थात् प्राण और मन इन दो महती शक्तियो को नियम बद्ध करके अपने भीतर ही उस देवतत्व का जो सर्वत्र व्याप्त है दर्शन किया जा सकता है। इस अध्यात्म नियम के आधार पर भागवतो ने विशेषत देव-प्रासादो के भौतिक रूप की कल्पना और उनमे से उस देवतत्त्व की उपासना के महत्वपूर्ण शास्त्र का निर्माण किया। विक्रम की प्रथम शताब्दी के लगभग भागवतो का यह दृष्टिकोण उभर कर सामने आ गया और तद-नुसार ही देव मदिरो का निर्माण होने लगा।

इस सम्बन्ध मे कई मान्यताए विशेष रूप से सामने आई। उनमे एक तो यह थी कि यद्यपि मनुष्यो की कल्पना के अनुसार देव एक है किन्तु वे सब एक ही मूल भूत शक्ति के रूप है और उनमे केवल नामो का अन्तर है। यह वही पुराना वैदिक सिद्धान्त था जिसे ऋग्वेद मे 'यो देवाना नामधा एक एव', अथवा 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति', इन वाक्यो द्वारा कहा गया था। नामो के सहस्राधिक प्रपच मे एक सूत्रता लाते हुए भागवतो ने देवाधिदेव को विष्णु की सज्ञा दी। 'देवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णु', इस निर्वचन के अनुसार यह सज्ञा सर्वथा लोकप्रिय और मान्य हुई। इसी प्रकार वासुदेव आदि अनेक नामो के विषयमे भी उदारदृष्टि से इस प्रकार के निर्वचन किए गए जिनमे नामो के ऐतिहासिक या मानवीय पक्ष को गौण करके उनके देवात्मक या दिव्य पक्ष को प्रधानता मिली। उदाहरण के लिए वासुदेव शब्द की व्युत्पति विष्णुपुराण मे इस प्रकार है—

सर्वत्राऽसौ समस्त च वसत्यत्रेति वै यत ।
तत स वासुदेवेति विद्वद्भि परिपठ्यते ॥ (१।२।१२)
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि ।
भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्तत स्मृत ॥ (६।५।८०)

इसी को महाभारत मे इस प्रकार कहा गया है—

छादयामि जगत्सर्वं भूत्वा सूर्य इवाशुभि ।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेव तत स्मृत ॥
(शान्तिपर्व, ३४१।४१)

वासनात्सर्वभूताना वसुत्वाद्देवयोनित ।
वासुदेवस्ततो वेदा ॥
उद्योगपर्व, (७०।३)

इसी उदात्त धरातल पर शकराचार्य ने वासुदेव शब्द की इस प्रकार व्युत्पत्ति दी है—
"वसति वासयति आच्छादयति मवमिति वा वासु , दीव्यति क्रीडते विजिगीपते व्यवहरति द्योतते स्तूयते गच्छतीति वा देव । वासुश्चासौ देवश्चेति वासुदेव ।"

(विष्णु सहस्रनाम' शाङ्कर भाष्य, ४६ श्लोक)

इस प्रकार की तरल और तरगित मन स्थिति भागवतो की विशेपता थी जिसके द्वारा उन्होने सब धर्मो के समन्वय का राजमार्ग अपनाया । देव के बहुविध नामो के विपय मे उनके दृष्टिकोण का सार यह था—

पर्यायवाचकै शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम् ।
व्याख्यात तत्त्वभावज्ञैरेव सद्भावचिन्तकै ॥

(वायु पुराण, ४।४५)

अर्थात् समस्त सृष्टि का जो एक आदि कारण है, जिससे श्रेष्ठ और कुछ नही है, ऐमे उस एक तत्त्व को ही तत्त्ववेत्ता अनेक पर्यायवाची शब्दो से कहते हैं । इस सुन्दर दृष्टिकोण के कारण समन्वय और सम्प्रीति के धर्माम्बु मेघ भारतीय महाप्रजा के ऊपर उस समय अभिवृष्ट हुए जब देव–प्रासादो के रूप मे सस्कृति का नूतन विकास हुआ । बौद्ध, जैन और हिन्दू मदिरो मे पारस्परिक स्पर्धा या तनाव की स्थिति न थी किन्तु वे सब एक ही धार्मिक प्रेरणा और स्फूर्ति को मूर्त्तरूप दे रहे थे । गुप्त कालीन भागवती सस्कृति का यह विशाल नेत्र था जिसके द्वारा प्रजाए अपने–अपने इष्टदेव का अभिलपित दर्शन प्राप्त कर रही थी ।

मानवी देह के साथ देव तत्त्व के जिस घनिष्ठ सबध का उल्लेख ऊपर किया गया है उसका दूसरा प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि देवालय की कल्पना भी मानुपी देह के अनुसार ही की गई । मानुपी शरीर के जो अग–प्रत्यग हैं उन्ही के अनुसार देव मदिरो के मूर्त्तरूप का विधान निश्चित हुआ । किमी समय 'पुरुपविधो वै यज्ञ ' अर्थात् 'जैसा पुरुष वैसा ही यज्ञ का स्वरूप' यह सिद्धान्त मान्य था । उसी को ग्रहण करते हुए 'पुरुपविधो वै प्रासाद ,' अर्थात् जैसा पुरुष वैसा ही देव मन्दिर का वास्तुगत स्वरूप, यह नया सिद्धान्त मान्य हुआ । पाद, खुर, जङ्घा, गर्भगृह, मडोवर, स्कध, शिखर, ग्रीवा, नासिका, मस्तक, शिखा आदि प्रासाद सबन्धी शब्दावली से मनुष्य और प्रासाद की पारस्परिक अनुकृति सूचित होती है ।

देव–प्रासादो के निर्माण की तीसरी विशेपता यह थी कि समाज मे कर्मकाण्ड की जो गहरी धार्मिक भावना थी वह देव पूजा या अर्चा के रूप मे ढल गई । प्रत्येक मन्दिर उस-उस क्षेत्र के लिए धर्म का मूर्त रूप समझा गया । भगवान विष्णु अथवा अन्य देव का जो विशिष्ट सौन्दर्य था उसे ही उस–उस स्थान की प्रजाए अपने अपने देवालयो मे मूर्त करने का प्रयत्न करती थी । दिव्य अमूर्त्त सौन्दर्य को मूर्त रूप मे प्रत्यक्ष करने का सबल प्रयत्न दिखाई दिया । सुन्दर मूर्ति और मन्दिरो के रूप मे ऐसा प्रतिभासित होता था कि मानो स्वर्ग के सौन्दर्य को पृथिवि के मानव साक्षात् देख रहे हो । जन समुदाय की सम्मिलित शक्ति और राजशक्ति दोनो का सदुपयोग अनेक सुन्दर देव मन्दिरो के निर्माण मे किया गया । यह धार्मिक भावना उत्तरोत्तर बढती गई और एक युग ऐसा आया जब प्रतापी राष्ट्रकूट जैसे सम्राटो का वैभव ऐलोरा के कैलाश सदृश देव मन्दिरो मे प्रत्यक्ष समझा जाने लगा । एक–एक मदिर मानो एक एक सम्राट के सर्वाधिक उत्कर्प और समृद्धि का प्रकट रूप था । जब लोक मे इस प्रकार की भावना सिद्ध हुई तभी मध्यकाल मे उस प्रकार के विशाल मदिर बन सके जिनका वर्णन समरागणसूत्रधार एव अपराजित पृच्छा ऐसे ग्रथो मे पाया जाता है । उन्ही के वास्तु शिल्प की परम्परा सूत्रधार मण्डन के ग्रथ मे भी पाई जाती है ।

मन्दिर या प्रासाद को देवता का आवास माना गया। तब यह कल्पना हुई कि देवता के स्थान पर निरतर असुरो की वक्र दृष्टि रहती है। अतएव असुरो के निवारण या शाति के लिए पूजा-पाठ करना आवश्यक है। प्रासाद-मडन मे इस प्रकार के चौदह शान्ति कर्म या शान्तिक कहे गये हैं। यथा (१) जिस दिन भूमि परीक्षा करने के लिए उसमे खातकर्म किया जाय, (२) जिस दिन कूर्म शिला की स्थापना की जाय, (३) जिस दिन शिलान्यास किया जाय, (४) जिस दिन तल निर्माण या तल-विन्यास के लिए सूत्र-मापन या सूत्र-पातन (सूत्र-छोडना) द्वारा पदो के निशान लगाए जाय, (५) जिस दिन सबसे नीचे के थर का पहला पत्थर, जिसे खुर-शिला कहते हैं (फारसी पत्थर खाकन्दाज) रक्खा जाय, (६) जिस दिन मन्दिर द्वार की स्थापना की जाय, (७) जिस दिन मडप के मुख्य स्तम्भ की स्थापना की जाय, (८) जिस दिन मडप के स्तम्भो के ऊपर भारपट्ट रक्खा जाय, (९) जिस दिन शिखर की चोटी पर पद्मशिला रखी जाय, (१०) जिस दिन गर्भ गृह के शिखर के लगभग बीच मे शुकनासा या नासिका की ऊचाई तक पहुच कर झपा सिंह की स्थापना की जाय, (११) जिस दिन शिखर पर हिरण्यमय प्रासाद-पुरुष की स्थापना की जाय, (१२) जिस दिन घण्टा या गूमट पर आमलक रक्खा जाय, (१३) जिस दिन आमलसार शिला के ऊपर कलश की स्थापना की जाय, (१४) और जिस दिन कलश के बराबर मदिर पर ध्वजा रोपण किया जाय। इनमे सख्या २ और सख्या ३ को कुछ लोग अलग मानते है किन्तु य द कूर्मशिला को एक ही पद माना जाय तो उनकी सूची मे केवल १३ शान्ति कर्म होते है और तब चौदहवा शान्तिक देव-प्रतिष्ठा के अवसर पर करना आवश्यक होगा (१।३७-३८)

प्रासाद के गर्भ गृह की माप एक हाथ से पचास हाथ तक कही गई है। कु भक या जाड्य-कु भ या जाड्मा का निकास इसके अतिरिक्त गर्भ गृह की भित्ति के बाहर होना चाहिए। जाड्यकु भ आदि विभिन्न थरो का निर्गम तथा पीठ एव छज्जे के जो निर्गम हो उन्हे भी सम सूत्र के बाहर समझना चाहिए । गर्भगृह समरेखा में चौरस भी हो सकता है, किन्तु उसी मे फालना या खाचे देकर प्रासाद मे तीन-पाच सात या नौ विभाग किए जा सकते हैं। इसका आशय यह है कि यदि प्रासाद के गर्भगृह की लम्बाई आठ हाथ है तो दोनो ओर दो-दो हाथ के कोण भाग रख कर बीच मे चार हाथ की भित्ति को खाचा देकर थोडा आगे निकाल दिया जा सकता है। इस प्रकार का प्रासाद तीन अगो वाला या उडीसा की शब्दावली मे त्रिरथ प्रासाद कहा जायगा। इसी प्रकार दो कोण, दो खाचे और एक भित्तिरथ वाला प्रासाद पचरथ प्रासाद होता है । दो कोण, दो-दो उपरथ और एक रथ युक्त प्रासाद सप्ताग, एव दो कोण चार-चार उपरथ एव एक रथिका युक्त प्रासाद नवाग या नवरथ प्रासाद कहलाता है (१।४१) इन फालनाओ या खाचो के अनुसार ही प्रासाद का सम्पूर्ण उत्सेध या उदय खडा किया जाता है। अतएव प्रासाद रचनाओ मे फालनाओ का सर्वाधिक महत्त्व है। खुर-शिला से लेकर शिखर के ऊपरी भाग तक जितने थर एक के ऊपर एक उठते चले जाते है उन सबका विभाग इन्ही फालनाओ के अनुसार देखा जाता है। प्रासाद के एक-एक पार्श्व को उसका भद्र कहते है। प्रत्येक भद्र की विविध कल्पना कोण, प्रतिभद्र और बीच वाले भद्राश पर ही निर्भर रहती है। प्रासाद की ऊचाई मे जहा-जहा फालनाओ के जोड मिलते हैं वही ऊपर से नीचे तक बरसाती पानी के बहाव के लिए बारीक नालिया काट दी जाती हैं जिन्हें वारिमार्ग या सलिलान्तर कहते है। भद्र, फालना (प्रतिभद्र) और कर्ण या कोण की सामान्य माप के विषय मे यह नियम बरता जाता है कि भद्र चार हाथ का हो तो दोनो ओर के प्रतिभद्र या प्रतिरथ दो-दो हाथ के और दोनो कर्ण या कोण भी दो हाथ लम्बे रक्खे जाते हैं अर्थात् कर्ण और फालना से भद्र की लम्बाई दुगुनी होती है।

प्रासाद मण्डन के दूसरे अध्याय मे जगती, तोरण और देवता के स्थापन मे दिशा के नियम का विशेष उल्लेख है, प्रासाद के अधिष्ठान की सज्ञा जगती है। जैसे राजा के लिए सिंहासन वैसे ही प्रासाद के लिए जगती की शोभा कही गई है। प्रासाद के अनुरूप पाच प्रकार की जगती होती है–चतुरस्र (चौरस), आयत (लम्ब चौरस), अष्टास्र (अट्ठ स या अठकोनी), वृत्त (गोल) और वृत्तायत (लम्ब गोल, जिसका एक शिरा गोल और दूमरा आयत होता है, इसे ही द्वयस्र या बेसर कहते है)। ज्येष्ठ मध्य और कनीयसी तीन प्रकार की जगती कही गई हैं। जगती की ऊचाई और लम्बाई की नाप प्रासाद के अनुसार स्थपति को निश्चित करनी चाहिए, जिसका उल्लेख ग्रन्थकार ने किया है। प्रासाद की चौढाई से तिगुनी चौगुनी या पाचगुनी तक चौडी और मण्डप से सवाई ड्योढी या दूनी लम्बी तक जगती का विधान है। जगती के ऊपर ही प्रासाद का निर्माण किया जाता है अतएव यदि प्रासाद मे एक, दो या तीन भ्रमणी या प्रदक्षिणापथ रखने हो तो उनके लिए भी जगती के ऊपर ही गु जायश रखी जाती है। जगती के निर्माण मे चार, बारह, बीस, अट्ठाइस, या छत्तीस कोण युक्त फालनाओ का निर्माण सूत्रधार मण्डन के समय तक होने लगा था। जगती कितनी ऊंची हो और उसमे कितने प्रकार के गलते-गोले बनाए जाय इसके विषय मे मण्डन का कथन है कि जगती की ऊचाई के अट्ठाइस पद या भाग करके उसमे तीन पद का जाड्यकु भ या जाडूमा, दो पद की कणी, तीन पद का दासा जो पद्मपत्र से युक्त हो, दो पद का खुरक, उसके ऊपर सात भाग का कु भ, फिर तीन पद का कलश, एक भाग का अतर्पत्रक, तीन भाग की कपोतली या केवाल, चार भाग का पुष्पकण्ठ या अतराल होना चाहिए। जगती के चारो ओर प्राकार या दीवार और चार द्वार-मण्डप, जल निकालने के लिए मकराकृति प्रणाल, सोपान और तोरण भी इच्छानुसार बनाए जा सकते हैं। मण्डप के सामने जो प्रतोली या प्रवेशद्वार हो उसके आगे सोपान मे शुण्डिकाकृति हथिनी बनाई जाती है। तोरण की चौडाई गर्भ गृह के पदो की नाप के बराबर और ऊचाई मन्दिर के भारपट्टो की ऊचाई के अनुसार रक्खी जाती है। तोरण मन्दिर का विशेष अग माना जाता था और उसे भी जगती और उसके ऊपर पीठ देकर ऊचा बनाया जाता था। तोरण की रचना मे नाना प्रकार के रूप या मूर्तियो की शोभा बनाई जाती थी। तोरण कई प्रकार के होते थे। जैसे घटाला तोरण, तलक तोरण, हिण्डोला तोरण आदि। प्रासाद के सामने वाहन के लिए चौकी (चतुष्किका) रक्खी जाती थी।

देव मन्दिर मे वाहन के निर्माण के भी विशेष नियम थे। वाहन की ऊचाई गभारे की मूर्ति के गुह्यस्थान, नाभिस्थान या स्तन रेखा तक रखी जा सकती है। शिखर के जिस भाग पर सिंह की मूर्ति बनाई जाती है उसे शुकनासिका कहते है। उस सूत्र से आगे गूढमण्डप, गूढमण्डप से आगे चौकी और उससे आगे नृत्य-मण्डप की रचना होती है। मण्डपो की सख्या जितनी भी हो सब का विन्यास गर्भगृह के मध्यवर्ती सूत्र से नियमित होता है। मदिर के द्वार के पास त्रिशाला या अलिंद या बलाणक (द्वार के ऊपर का मडप) बनाया जाता है। पन्द्रहवी शती मे मदिरो का विस्तार बहुत बढ गया था और उसके एक भाग मे रथ यात्रा वाला बडा रथ रखने के लिए रथ शाला और दूसरे भाग मे छात्रो के निवास के लिए मठ का निर्माण भी होने लगा था।

तीसरे अध्याय मे आधार शिला प्रासाद पीठ, पीठ के ऊपर मडोवर और मन्दिर के द्वार के निर्माण का विस्तृत वर्णन है। प्रासाद के मूल मे नीव तैयार करने के लिए ककरीट (इष्ट का चूर्ण) की पानी के साथ खूब कुटाई करनी चाहिए। इसके ऊपर खूब मोटी और लम्बी चौडी प्रासाद धारिणी शिला या पत्थर का फर्श बनाया जाता है। इसे ही खुर शिला या खर शिला भी कहते हैं। इस शिला के ऊपर जैसा भी प्रासाद बनाना हो उसके अनुरूप सर्व प्रथम जगती या अधिष्ठान बनाया जाता है जिसका उल्लेख पहले

हुआ है। यदि विशेष रूप से जगती का निर्माण सभव न हो तो भी पत्थर की शिलाओ के तीन थर एक के ऊपर एक रखने चाहिए। इन थरो को भिट्ट कहा जाता है। नीचे का भिट्ट दूसरे की अपेक्षा कुछ मोटा और दूसरा तीसरे से कुछ मोटा रक्खा जाता है। भिट्ट जितना ऊचा हो उसका चौथाई निर्गम या निकास किया जाता है।

भिट्ट या जगती के ऊपर प्रासाद पीठ का निर्माण होता है। प्रासाद–पीठ और जगती का भेद स्पष्ट समझ लेना चाहिए। जगती के ऊपर मध्य मे बनाए जाने वाले गर्भ गृह या मडोवर की कुर्मी की सज्ञा प्रासाद पीठ है। इस पीठ की जितनी ऊचाई होती है उसी के बराबर गर्भ गृह का फर्श रक्खा जाता है। प्रासाद पीठ के निर्माण के लिए भी गोले गलतो का या विभिन्न थरो का विधान है। जैसे नौ अश का जाड्यकुभ, सात भाग की कणी, कपोतालि या केवाल के साथ सात भाग की ग्रासपट्टी (जिसमे सिंह मुख की आकृति बनी रहती है। और फिर उसके ऊपर बारह भाग का गज थर, दश भाग का अश्व थर और आठ भाग का नर थर बनाया जाता है। प्रत्येक दो थरो के बीच मे थोडा-अतराल देना उचित है और ऊपर नीचे दोनो और पतली कणिका भी रक्खी जा सकती है।

प्रासाद पीठ के ऊपर गर्भ गृह या मडोवर बनाया जाता है जिसे वास्तविक रूप मे प्रासाद का उदय भाग कहना चाहिए। मण्ड का अर्थ है पीठ या आसन और जो भाग उसके ऊपर बनाया जाता था उसके लिए मण्डोवर यह सज्ञा प्रचलित हुई। मडोवर के उत्सेध या उदय को १४४ भागो मे बाटा जाता है। यह ऊचाई प्रासाद पीठ के मस्तक से छज्जे तक ली जाती है। इसके भाग ये हैं—खुरक ५ भाग, कुम्भक २० भाग, कलश ८ भाग, अतराल २॥ भाग, कपोतिका या कपोतालि ८ भाग, मची ९ भाग, जङ्घा ३५ भाग, उरुजघा (उद्गम) १५ भाग है (जिसे गुजराती मे 'डौढिया' भी कहा जाता हैं), भरणी ८ भाग, शिरावटी या शिरापट्ट १० भाग, ऊपर की कपोतालि ८ भाग, अतराल ढाई भाग और छज्जा १३ भाग। इस प्रकार १४४ भाग मडोवर के उदय मे रक्खे जाते हैं। छज्जे का बाहर की ओर निकलता खाता दश भाग होता है। एक विशेष प्रकार का मडोवर मेरु मडोवर कहलाता है, उसमे भरणी के ऊपर से ही ८ भाग की मञ्ची देकर २५ भाग की जघा बनाई जाती है और फिर छज्जे के ऊपर ७ भाग की एक मञ्ची देकर १६ भाग की जघा बनाते हैं। उसके ऊपर ७ भाग की भरणी, ४ भाग की शिरावटी, ५ भाग का भारपट्ट और फिर १२ भाग का कूट छाद्य या छज्जा। इस प्रकार मडोवर की रचना मे तीन जघायें और दो छज्जे बनाये जाते थे। प्रत्येक जङ्घा मे भिन्न भिन्न प्रकार की मूर्तिया उत्कीर्ण की जाती है। आमेर के जगत शरणजी के मदिर मे मेरु मडोवर की रचना की गई हैं। एक दूसरे के ऊपर जो थरो का विन्यास है उनमे निर्गम और प्रवेश का अर्थात् बाहर की ओर निकलता खाता और भीतर की ओर दबाव रखने के भी नियम दिए गए है, मडन का कथन है कि यदि प्रासाद निर्माण मे अल्प द्रव्य व्यय करता हो तो तीन जङ्घाओ मे से इच्छानुसार जघा, रूप या मूर्तियो का निर्माण छोडा भी जा सकता है (३।२८)।

इटो से बने मदिर मे भीत की चौडाई गर्भ गृह की चौडाई का चौथा भाग और पत्थर के मदिर मे पाचवा भाग रखनी चाहिए। गभारा बीच मे चौरस (युगास्र) रखकर उसके दोनो ओर फालनाए देनी चाहिए, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मडन ने फालनाओ के लिए भद्र सुभद्र और प्रतिभद्र शब्दो का प्रयोग किया है। उन्ही के लिए उत्कल की शब्दावली मे रथ, अनुरथ, प्रतिरथ, कोणरथ शब्द आते हैं। मडोवर और उसके सामने बनाये जाने वाले मडपो के खम्भो की ऊँचाई एक दूसरे के साथ मेल मे रखनी आवश्यक है। मडप के ऊपर की छत या गूमट को करोट कहा गया है। इस करोट की ऊँचाई मडप की

चौडाई से आधी रखनी चाहिए । इस करंट या छत मे नीचे की ओर जो कई थर बनाये जाते हैं उन्हे दर्दरी कहा जाता था, गूमट के भीतरी भाग को वितान और ऊपरी भाग को सम्बरण कहते हैं । वितान मे दर्दरी या थरो की सख्या विषम रखने का विधान है ।

इसके अनतर मदिर के द्वार का सविस्तर वर्णन है (३।२७-६६)। द्वार के चार भाग होते हैं अर्थात नीचे देहली या उदुम्बर, दो पार्श्व स्तम्भ और उनके ऊपर उत्तरग या सिरदल । इन चारो को ही शिल्पी अनेक अलकरणो से युक्त करने का प्रयत्न करते थे । देवगढ के दशावतार मदिर का अलकृत द्वार एक ऐसी कृति है जिसकी साज सज्जा मे शिल्पियो ने अपने कौशल की पराकाष्ठा दिखाई है । प्राय गुप्त युग मे उसी प्रकार के द्वार बनते रहें । शनै शनैं मध्यकालीन मदिरो मे द्वार निर्माण कला मे कुछ विकास और परिवर्तन भी हुआ । मडन के अनुसार उदुम्बर या देहली की चौडाई के तीन भाग करके बीच मे मन्दारक और दोनो पार्श्वों मे ग्रास या सिंहमुख बनाने चाहिए । मन्दारक के लिए प्राचीन शब्द सन्तानक भी था (अग्रेजी फेस्टून) । गोल सन्तानक मे पद्मपत्रो से युक्त मृणाल की आकृति उकेरी जाती थी । ग्रास या सिंह मुख को कीर्तिवक्त्र या कीर्तिमुख भी कहते थे । देहली के दोनो ओर के पार्श्व स्तम्भो के नीचे तलरूपक (हिन्दी–तलकडा) नाम के दो अलकरण बनाये जाते हैं । तलकडो के बीच मे देहली के सामने की ओर बीच के दो भागो मे अर्धचन्द्र और उसके दोनो ओर एक–एक गगारा बनाया जाता है । गगारो के पास मे शखो की और पद्मपत्र की आकृति उत्कीर्ण की जाती हैं । द्वार की यह विशेषता गुप्त युग से ही आरम्भ हो गई थी, जैसा कालिदास ने मेघदूत मे वर्णन किया है (द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शखपद्मौ च दृष्ट्वा, उत्तर मेघ १७) । गगारक या गगारा शब्द की व्युत्पत्ति स्पष्ट नही है । यहा पृष्ठ ५९ और वास्तुसार मे पृ० १४० पर गगारक का चित्र दिया गया है । द्वार की ऊचाई से उसकी चौडाई आधी होनी चाहिए । और यदि चौडाई मे एक कला या सोलहवा अश बढा दिया जाय तो द्वार की शोभा कुछ अधिक हो जाती है , द्वार के उत्तरग या सिरदल भाग मे उस देव की मूर्ति बनानी चाहिए जिसकी गर्भगृह मे प्रतिष्ठा हो । इस नियम का पालन प्राय सभी मदिरो मे पाया जाता है । इस मूर्ति को ललाट-बिम्ब भी कहते थे । द्वार के दोनो पार्श्व स्तम्भो मे कई फालना या भाग बनाये जाते थे जिन्हें सस्कृत मे शाखा कहा गया है । इस प्रकार एक शाख, त्रिशाख, पच शाख, सप्त शाख, और नव शाख, तक के पार्श्व स्तम्भ युक्त द्वार बनाये जाते थे । इन्ही के लिए तिसाही, पचसाही आदि शब्द हिन्दी मे अभी तक प्रचलित हैं । सूत्रधार मडन ने एक नियम यह बताया है कि गर्भगृह की दीवार मे जितनी फालना या अग बनाये जाय उतनी ही द्वार के पार्श्व स्तम्भ मे शाखा रखनी चाहिए (शाखा स्युरग तुल्यका ३।५६) । द्वार स्तम्भ की सजावट के लिए कई प्रकार के अलकरण प्रयुक्त किये जाते थे । उनमे रूप या स्त्री पुरुषो की मूर्तिया मुख्य थी । जिस भाग मे ये आकृतिया उकेरी जाती थी उसे रूप स्तम्भ या रूप शाखा कहते थे । पुरुष सज्ञक और स्त्री सज्ञक शाखाओ का उल्लेख मण्डन ने किया हैं । इस प्रकार की शाखाये गुप्तकालीन मदिर द्वारो पर भी मीलती हैं । अलकरणो के अनुसार इन शाखाओ के और नाम भी मिलते हैं जैसे–पत्रशाखा, सिंह शाखा, गन्धर्व शाखा, खल्व शाखा आदि । खल्व शाखा पर जो अलकरण बनाया जाता था वह मटर आदि के बेलो के उठते हुए गोल प्रतानो के सदृश होता था । आबू के विमलवसही आदि मदिरो मे तथा अन्यत्र भी इसके उदाहरण हैं । खल्व शब्द प्राचीन था और उसका अर्थ फलिनीलता या मटर आदि की बेल के लिए प्रयुक्त होता था ।

प्रासाद मडन के चौथे अध्याय मे आरम्भ मे प्रतिमा की ऊचाई बताते हुए फिर शिखर निर्माण का ब्यौरे वार वर्णन किया गया है । देव प्रासादो के निर्माण मे शिखरो का महत्वपूर्ण स्थान था । मदिर के वास्तु मे नाना प्रकार के शिखरो का विकास देखा जाता है । शिखरो की अनेक जातिया मिल गयी मे कही

गई है। वास्तविक प्रासाद शिखरो के साथ उन्हे मिलाकर अभी तक कोई अध्ययन प्रस्तुत नही किया गया है। बाण ने सातवी शती मे बहुभूमिक शिखरो का उल्लेख किया है। आरम्भिक गुप्तकाल मे बने हुए साची के छोटे देव मदिर मे कोई शिखर नही है। देवगढ के दशावतार मदिर मे शिखर के भीतर का ढोला विद्यमान है। वह इस बात का साक्षी है कि उस मदिर पर भी शिखर की रचना की गई थी। शिखर का आरम्भ किस रूप मे और कब हुआ वह विषय अनुसधान के योग्य है। पजाब मे मिले हुए उदुम्बर जनपद के सिक्को पर उपलब्ध देवप्रासाद के ऊपर त्रिभूमिक शिखर का स्पष्ट अकन पाया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि शिखरो का निर्माण गुप्त युग से पहले होने लगा था। ज्ञात होता है कि मदिर के वास्तु मे दोनो प्रकार मान्य थे। एक शिखर युक्त गर्भ गृह या मडप या और दूसरे शिखर विहीन चौरस छत वाले सादा मदिर जैसे साची और मालवा के मुकन्दरा आदि स्थानो मे मिले हैं। इस प्रकार के मदिरो के विकास का पूर्वरूप कुषाण कालीन गन्धकुटी मे प्राप्त होता है, जिसमे तीन खडे पत्थरो का चौरस पत्थर से पाट कर उसके भीतर बुद्ध या बोधिसत्व की प्रतिमा स्थापित कर दी जाती थी। कालान्तर मे तो शिखर मदिरो का अनिवार्य अग बनगया और उसकी शोभा एव रूप विधान मे अत्यधिक ध्यान दिया जाने लगा। मदिर के गर्भ गृह मे खडी हुई या बैठी हुई देव प्रतिमा की ऊचाई कितनी हो और उसका दृष्टिसूत्र कितना ऊचा रक्खा जाय इसके विषय मे द्वार की ऊचाई के अनुसार निर्णय किया जाता था। जैसे एक विकल्प यह था कि द्वार की ऊचाई के आठ या नव भाग करके, एक भाग छोडकर शेष ऊचाई के तीन भाग करके उनमे से दो के बराबर मूर्ति की ऊचाई रखनी चाहिए।

मदिर के शिखर की रचना अत्यन्त जटिल विषय है। मडोवर के छज्जे के ऊपर दो एक थर और लगाकर तब शिखर का प्रारम्भ करते हैं। वास्तुसार मे इन थरो के नाम वेराडु और पहारु कहे है (वास्तुसार पृ ११२) किन्तु मडन ने केवल पहार नामक थर का उल्लेख किया है। शिखर के उठते हुए विन्यास मे शृगो की रचना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मडोवर की विभिन्न फालनाओ की ऊचाई स्कन्ध के बाद जब शिखर मे उठती है तो कोण, प्रतिरथ और रथ आदि की सीध मे शृग बनाये जाते हैं। इन्ही शृगो के द्वारा शिखर का ठाठ जटिल और सुन्दर हो जाता है। बीच के शिखर को यदि हम एक ईकाई मानें तो उसकी चारो दिशाओ मे चार उरु शृग बनाये जा सकते हैं। ये शृग भी शिखर की आकृति के होते हैं। यदि मूल शिखर का सामने से दर्शन किया जाय तो वही आकृति शृग की होती है। प्रासाद के शिखर का सम्मुख दर्शन ही शृग है। मूल शिखर और उसके चारो ओर के चार शृग इस प्रकार कुल ५ शृग युक्तरूप प्रासाद का एक सीधा प्रकार हुआ। बीच के शिखर को मूलमजरी और चारो ओर के मूलभूत वडे शृगो को उरु शृग कहते है। इसी के लिए राजस्थानी और गुजराती स्थपतियो से छातियाशृग शब्द भी प्रचलित है। वस्तुत शृग और शिखर पर्यायवाची हैं। ठक्कुर फेरू ने उरुशृग या छातिया शृग को उर सिहर (=उरु शिखर) कहा है। मूलमजरी के चार भद्र या पार्श्वों मे चार उरुशृगो के अतिरिक्त और भी अनेक शृग बनाये जाते थे। सूत्रधार मडन ने कहा है कि उरुशृगो की सख्या प्रत्येक भद्र मे एक से नव तक हो सकती है (४।१०) सबसे बडा उरुशृग शिखर की कितनी ऊचाई तक रखा जाय इसका भी नियम दिया गया है। शिखर के उदय के १३ भाग करके नीचे से सात भाग तक पहला छातिया शृग बनाया जाता है। अर्थात् शिखर की ऊचाई के सात भाग पहले उरुशृग के नीचे छिप जाते हैं। अब इस उरुशृग पर दूसरा उरुशृग बैठाना हो तो फिर इसकी ऊचाई के तेरह भाग करके सात भाग तक के उदय तक दूसरा शृग बनाया जाता है इस प्रकार जिस शिखर मे नव उरुशृग रखने हों उसकी ऊचाई सोच विचार कर उसी अनुपात से निश्चित करनी होगी। शिखर मे गोलाई लाने या ढलान देने के लिए आवश्यक है कि यदि उसके मूल मे दस भाग हो तो अग्र स्थान या सिरे पर छ भाग का अनुपात

रखना चाहिये । इस अनुपात से शिखर सुहावना प्रतीत होता है । गर्भ गृह की मूलरेखा या चौडाइ से शिखर का उदय सवाया रक्खा जाता है । शिखर के वलरण अर्थात् नमन की युक्ति साधने के लिए उसके उदय भाग मे और स्कन्ध मे क्रमश रेखाओ और कलाओ की सूक्ष्म गणना स्थपति सम्प्रदाय मे प्रचलित है । उस विषय का सक्षिप्त सकेत मडन ने किया है । रेखाओ और कलाओ का यह विषय अपराजित पृच्छा (अ १३९-१४१) मे भी आया है । खेद है कि यह विषय अभी तक स्पष्ट न होने से इस पर अधिक प्रकाश डालना सम्भव नही । मडन का कथन है कि खरशिला से कलश तक बीस भाग करके आठ या ८½ या ९ भाग मे मडोवर की ऊचाई और शेष मे शिखर का उदय रक्खा जाता है । शिखर के गूमट नुमा उठान को पद्मकोश कहा जाता है (४।२३) पद्मकोश की आकृति लाने के लिये मडन ने अति सक्षिप्त रीति से एक युक्ति कही है (चतुर्गुणेन सूत्रेण सपाद शिखरोदय (४।२३) इसके अनुसार शिखर की मूलरेखा मे चौगुना सूत्र लेकर यदि नये प्राप्त दोनो विन्दुओ को केन्द्र मानकर गोल रेखायें खीची जाय तो जहा वे एक दूसरे को काटती हो वह शिखर का अतिम बिन्दु हुआ । शिखर की मूल रेखा से उसकी (मूल रेखा की) सवाई जितनी ऊचाई पर एक रेखा खीची जाय तो वह शिखर का स्कन्ध स्थान होगा । इस स्कन्ध और पद्मकोश के अतिम बिन्दु तक की ऊचाई के सात भाग करके एक भाग मे ग्रीवा, १½ भाग मे आमलक शिला, १½ भाग मे पद्मपत्र (जिन्हें आजकल लीलोफर कहते हैं), और तीन भाग मे कलश का मान रहेगा ।

शिखर मे शुकनास का भी महत्वपूर्ण स्थान है । शुकनास की ऊचाई के पाच विकल्प कहे हैं । अर्थात् छज्जे से स्कन्ध तक के उदय को जब इक्कीस भागो मे बाटा जाय तो ९, १०, ११, १२, १३ अशो तक कही भी शुकनास का उच्छ्रय किया जा सकता है । शुकनासिका के उदय के पुन नव भाग करके १, ३, ५, ७, या ९ भागो मे कही पर भी झम्पासिह रखना चाहिये । शुकनासा, प्रासाद या देव मदिर की नासिका के समान है । शिखर मे शुकनासिका का निकलता खाता नीचे के अतराल मण्डप के अनुसार बनाया जाता है । अतराल मण्डप को कपिली या कौली मण्डप भी कहते हैं । (४।२७) अन्तराल मडप की गहराई छ प्रकार की बताई गई है । शिखर की रचना मे शृ ग, उरुशृ ग (छातिया शृ ग), प्रत्यग और अण्डको का महत्वपूर्ण स्थान है । एव भिन्न भिन्न प्रकार के शिखरो के लिए उनकी गणना अलग २ की जाती है । इसी प्रकार तवग, तिलक और सिंहकर्ण ये भी प्रकारान्तर के अलकरण है जिन्हे प्रासाद के शिखर का भूषण कहा जाता है और इनकी रचना भी शिखर को विभिन्नता प्रदान करती है ।

मडन के अनुसार प्रासाद के शिखर पर एक हिरण्यमय प्रासाद पुरुष की स्थापना की जाती है । कलश, दण्ड, और ध्वजारोपण के सबध मे भी विवरण पाया जाता है ।

पाचवें—छठें अध्यायो मे वैराज्य आदि पच्चीस प्रकार के प्रासादो के लक्षण कहे गए है । गर्भ गृह के कोण से कोण तक प्रासाद के विस्तार के ४ से ११२ तक आवश्यकतानुसार भाग किए जा सकते है और उन्ही भागो के अनुसार फालनाओ के अनेक भेद किए जाते है । प्रासादो के नाम और जातिया उनके शिखरो के अनुसार कही गई है । वस्तुत इन भेदो के आधार पर प्रासादो की सहस्रो जातिया कल्पित की जाती है । गर्भ गृह, प्रासाद भित्ति, भ्रमणी या परिक्रमा और परिक्रमा—भित्ति यह प्रासाद का विन्यास है । इनमे प्रासाद भित्ति, परिक्रमा और परिक्रमा भित्ति तीनो की चौडाई समान होती है । यदि दो हाथ की प्रासाद भित्ति, दो हाथ की परिक्रमा और दो हाथ की भ्रम भित्ति करें तो गर्भ गृह चार हाथ का होना चाहिए । परिक्रमा युक्त प्रासाद दस हाथ से कम का बनाना ठीक नही । प्रासादो के वैराज्य आदि पच्चीस भेद नागर जाति के कहे जाते है । छठे अध्याय मे विशेषत शिखरो के अनेक भेदापभेदों की व्याख्या करते हुए केसरी

आदि प्रासादो का निरूपण किया गया है। प्रयोगात्मक दृष्टि से यह विषय अत्यधिक विस्तार को प्राप्त हो गया था। यहा तक कि मेरु-प्रासाद मे ५०१ शृ गक बनाए जाते थे। वृषभध्वज नामक मेरु मे एक सहस्र एक अण्डक कहे गये है। मेरु प्रासाद बहु व्यय साध्य होने से केवल राजकीय निर्माण का विषय समझा जाता था।

७ वें अध्याय मे, मण्डपो के निर्माण की विधि दी गई है। १० हाथ से ५० हाथ तक की चौडाई के सम या सपाद मण्डप बनाए जाते थे। जैन मन्दिरो मे गूढमण्डप, चौकी मण्डप, नृत्य मण्डप, इन तीनो मण्डपो का होना आवश्यक माना गया है। मण्डप के ऊपर की छत घण्टा कहलाती थी जिसे हिन्दी मे गूमट कहते हैं। इसके ऊपर के भाग को सवरण और नीचे के भाग को वितान कहते थे। मडप के निर्माण मे स्तम्भो का विशेषत विधान किया गया है। ४, ८, १२ या २० कोने तक के स्तम्भ अथवा गोल स्तम्भ बनाए जाते थे। स्तम्भो की सख्या के भेद से २७ प्रकार के मण्डप कहे गए हैं। १२ स्तम्भो से लेकर २-२ की वृद्धि करते हुए ६४ स्तम्भो तक के मण्डपो का उल्लेख है। गूमट की छत के वितान को दर्दरी, रूपकण्ठ, विद्याधर, नर्तकी, गजतालु, कोल आदि अलकरणो से युक्त थरो मे सुशोभित किया जाता था, एक से एक विचित्र वितानो के निर्माण मे भारतीय शिल्पाचार्यो ने अपने कौशल का परिचय दिया था। यहा तक कि एक हजार एक सौ तेरह प्रकार के वितान कहे गये है। गूमट के ऊपरी भाग या सवरण के सजावट मे घण्टी का अलकरण मुख्य था। न्यूनातिन्यून पाच घटियो से लेकर ४-४ की सख्या बढाते हुए एक सौ एक घटियो तक की गिनती की जाती थी।

आठवें अध्याय मे मदिरो के एव वापी-कूप-तडागादि के जीर्णोद्धार की विधि कही गई है। साथ ही राजपुर आदि नगरो के निर्माण को सौध, जाल=गवाक्ष, कीर्ति स्तम्भ, जलाराम आदि से सुशोभित करने का वर्णन आया है। इसी प्रकार कोष्ठागार, मत्तवारणी, महानस, पुन्यशाला, आयुधशाला, छत्रागार, जल स्थान, विद्या मण्डप, व्याख्यान मण्डप आदि के निर्माण का विधान भी किया गया है। इस प्रकार सूत्रधार मण्डन ने अपने वास्तुसार सबन्धी इस ग्रथ मे सक्षिप्त शैली द्वारा प्रासाद रचना सबन्धि विस्तृत जानकारी भरने का प्रयत्न किया है। इस ग्रथ का पठन-पाठन मे अधिक प्रचार होना उचित है।

श्री प भगवानदास जैन ने अनुवाद और चित्रमय व्याख्या के द्वारा इस ग्रथ को सुलभ बनाने का जो प्रयत्न किया है इसके लिए हमे उनका उपकार मानना चाहिए। व्यक्तिगत रीति से हम उनके और भी आभारी हैं क्योकि आज से कई वर्ष पूर्व जयपुर मे रहकर हमे उनसे इस ग्रथ के साक्षात् अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ था। विदित हुआ है कि इस ग्रन्थ का वे हिन्दी भाषान्तर भी प्रकाशित करना चाहते है। आशा है उस सस्करण मे विषय को स्पष्ट करने वाले रेखाचित्रो की सख्या मे और भी वृद्धि सभव होगी।

वासुदेवशरण अग्रवाल
अध्यक्ष-कला वास्तु विभाग
काशी विश्व विद्यालय

ता० १-१-६२

विषयानुक्रमणिका

दूसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पांचवा अध्याय

आठ वा अध्याय

परिशिष्ट नं० १

परिशिष्ट नं० २

लताश्रृंगवाला विमान नागर जाति का प्रासाद (पीठ मंडोवर और शिखर का सर्वाङ्गपूर्ण दृश्य) – उदयपुर-मेवाड

घर बनाने की तथा उसमे प्रवेश करने की जो विधि वास्तुशास्त्र मे विद्वानो ने बतलायी है, उस विधि के अनुसार देवालय मे भी कार्य करें ॥४॥

देवपूजित शिवस्थान—

हिमाद्रेरुत्तरे पार्श्वे चारुदारुवनं[1] परम् ।
पावनं शङ्करस्थानं तत्र सर्वैः शिवोऽर्चितः ॥५॥

हिमालय पर्वत के उत्तर दिशा मे एक बडा मनोहर देवदारु वृक्षो का सुन्दर वन है, यह महादेवजी का पवित्र तीर्थस्थान है। वहा सब देव और दैत्य आदि ने मिलकर महादेव की पूजा की ॥५॥

प्रासादो की जाति—

प्रासादाकारपूजाभि र्देवदैत्यादिभिः क्रमात् ।
चतुर्दश समुत्पन्नाः प्रासादानां सुजातयः[2] ॥६॥

देव और दैत्य आदि सब देवो ने अनुक्रम से प्रासाद के आकार वाली शकर की अनेक प्रकार से पूजा की, जिसके चौदह लोक के देवो द्वारा भिन्न भिन्न रूप से पूजित होने से चौदह प्रकार की प्रासाद की जाति उत्पन्न हुई ॥६॥

प्रासादोत्पत्ति की चौदह जाति—

"यत्र येषा कृता पूजा तत्र तन्नामकास्तु ते ।
प्रासादाना समस्ताना कथयिष्याम्यनुक्रमम् ॥
सुरैस्तु नागरा ख्याता द्राविडा दानवेन्द्रकैः ।
लतिनाश्चैव गन्धर्वै-र्यक्षैश्चापि विमानजा ॥
विद्याधरैर्मिश्रकाश्च वसुभिश्च वराटका ।
सान्धाराश्चोरगै ख्याता नरेन्द्रै र्भूमिजास्तथा ॥
विमाननागरच्छन्दा, सूर्यलोकसमुद्भवा ।
नक्षत्राधिपलोकोक्ताश्छन्दा विमानपुष्पका ॥
पार्वतीसम्भवा सेना वलभ्याकारसस्थिता ।
हरसिद्धयादिदेवीभि कार्या सिंहावलोकना ॥
व्यन्तरस्थितदेवैस्तु फासनाकारिणो मता ।
इन्द्रलोकसमुद्भूता रथाश्च विविधा मता ॥"

अपराजितपृच्छा सू० १०६

(१) देवगुरु (२) 'च'

जिन जिन देवो ने प्रासाद के आकार वाली पूजा की, उनके नाम वाले, जो जो प्रासाद उत्पन्न हुए, उनको अनुक्रम से कहूँगा (१) देवो के पूजन से नागर जाति, (२) दानवो के पूजन से द्राविडजाति, (३) गन्धर्वो के पूजन से लतिनजाति, (४) यक्षो के पूजन से विमानजाति, (५) विद्याधरो के पूजन से मिश्रजाति, (६) वसु देवो के पूजन से वराटकजाति, (७) नागदेवो के पूजन से सान्धार जाति, (८) नरेन्द्रो के पूजन से भूमिजजाति, (६) सूर्यदेवो के पूजन से विमान-नागर जाति, (१०) चन्द्रमा के पूजन से विमानपुष्पक जाति, (११) पार्वती के पूजन से वलभी जाति, (१२) हरसिद्धि आदि देवियो के पूजन से सिंहावलोकन जाति, (१३) व्यन्तर स्थित देवो के पूजन से फासी के आकार वाली जाति, १४—और इन्द्रलोक के देवो के पूजन से रथारूह (दारुजादि) जाति, ये चौदह जाति के प्रासाद उत्पन्न हुए।

जाति के उत्तम प्रासाद—

नागरा द्राविडाश्चैव भूमिजा लतिनास्तथा।
सावन्धारा विमानादि-नागराः पुष्पकाङ्किताः[1] ॥७॥
मिश्रकास्तिलकैः[2] भृङ्गैरष्टौ जातिषु चोत्तमाः।
सर्वदेवेषु कर्त्तव्याः शिवस्यापि विशेषतः ॥८॥

चौदह जाति के प्रासादो मे (१) नागर, (२) द्राविड, (३) भूमिज, (४) लतिन, (५) साव-धार (साधार केसरी आदि), (६) विमान नागर, (७) विमान पुष्पक, और (८) शृङ्ग और तिलक वाला मिश्र, ये आठ जाति के प्रासाद उत्तम हैं। इसलिये सब देवो के लिये यही बनाने चाहिये, उनमे भी विशेषकर महादेवजी के लिये बनाना श्रेयस्कर है ॥७-८॥

प्रासादानां च सर्वेषां जातयो देशभेदतः।
चतुर्दश प्रवर्त्तन्ते ज्ञेया लोकानुसारतः ॥६॥

सब प्रासादो के भेद देशो के भेद के अनुसार होते हैं। इनके मुख्य चौदह भेद है, वे ग्रन्थ अपराजित पृच्छा सूत्र ११२ आदि शास्त्रो से जानना चाहिये ॥६॥

लक्ष्यलक्षणतोऽभ्यासाद् गुरुमार्गानुसारतः।
प्रासादभवनादीनां सर्वज्ञानमवाप्यते ॥१०॥

प्रासाद और गृह आदि बनाने के लिये सब प्रकार का शिल्पज्ञान, उसके लक्ष्य और लक्षण के अभ्यास से एव गुरुशिक्षा के अनुसार प्राप्त करना चाहिये ॥१०॥

---

(१) पुष्पकान्तिका (२) प्रासादमिश्रकाश्चैव

जिस दिशा मे वत्स का मुख हो, उस दिशा मे तथा मुख के सामने वाली दिशा मे खात, देव प्रतिष्ठा, द्वार प्रतिष्ठा आदि कार्य करना शास्त्र मे वर्जित है, परन्तु वत्समुख एक दिशा मे तीन तीन मास तक रहता है। इसलिये तीन मास तक उक्त कार्य को नही रोकने के लिये ठक्कुर फेरु कृत 'वत्थुसार पयरण' प्र० १ गाथा २० मे विशेष रूप से बतलाया है कि—

"गिहभूमि सत्तभाए पण दह तिहि तीस तिहि दहक्ख कमा
इअ दिणसखा चउदिसि सिरपुच्छसमकि वच्छठिई ।।"

घर या प्रासाद की भूमि का प्रत्येक दिशा मे सात सात भाग करना, उनमे अनुक्रम से प्रथम भाग मे पाच दिन, दूसरे मे दस दिन, तीसरे में पद्रह दिन, चौथे मे तीस दिन, पाचवे मे पद्रह दिन, छट्ठे मे दस दिन और सातवे भाग मे पाच दिन वत्स का मुख रहता है। इस प्रकार भूमि की चारो दिशाओ मे दिन सख्या समझना चाहिये। जिस अंक पर वत्स का मुख हो, उसी अक के सामने वाले बराबर के अक पर वत्स की पू छ रहती है। इस प्रकार की वत्स की स्थिति है।

वायव्य	५ मिथुन	१० मिथुन	१५ मिथुन	३० कर्क	१५ सिंह	१० सिंह	५ सिंह	ईशान
५ वृष			उत्तर					कन्या ५
१० वृष								कन्या १०
१५ वृष								कन्या १५
३० मेष	पश्चिम			घर या प्रासाद की भूमि		पूर्व		तुला ३०
१५ मीन								वृश्चिक १५
१० मीन								वृश्चिक १०
५ मीन			दक्षिण					वृश्चिक ५
नैऋत्य	कुंभ ५	कुंभ १०	कुंभ १५	मकर ३०	धनु १५	धनु १०	धनु ५	अग्नि

जैसे कन्याराशि पर सूर्य हो, और यदि पूर्व दिशा मे खात आदि कार्य करने की आवश्यकता हो तो कन्याराशि को प्रथम पाच दिन तक प्रथम भाग मे खात आदि कार्य नही करना चाहिये, परन्तु दूसरे छह भागो मे से किसी एक भाग में शुभ मूहूर्त्त में कार्य कर सकते है। एव छट्ठे से पद्रहवे दिन तक दूसरे भाग मे और सोलहवे से तीस दिन तक तीसरे भाग मे कार्य नही करे। तुला राशि के सूर्य में तीस दिन तक मध्य के चौथे भाग मे कार्य नही करे। वृश्चिक राशि के सूर्य में पहले पद्रह दिन पाचवे भाग मे, सोलहवें से पचीसवे दिन तक छट्ठे भाग मे और छब्बीसवे से तीसवे दिन तक सातमे भाग म कार्य नही करे। इसी प्रकार प्रत्येक दिशा मे प्रत्येक सक्राति के दिन सख्या समझ लेनी चाहिये।

अपराजित पृच्छा सूत्र ९२ में कहा है कि—

"देवागारं गृह यत्र न कुर्याच्छिद्र सम्मुखम् ।
मृत्युरोगभया नित्य शस्त्त च कुक्षिसम्भवम् ।।"

वत्सके सिर के भाग मे और उनके सामने के भाग मे देव मंदिर अथवा मनुष्य के घर नही बनावे, यदि बनावेंगे तो मृत्यु, रोग और भय हमेशा बना रहेगा। इसलिये वत्स की कुक्षि में कार्य करना अच्छा है। विशेष उक्त ग्रंथ मे देखे।

आयादिका विचार—

आयो व्ययर्क्षमंशस्य भित्तिबाह्ये सुरालये।
ध्वजायो देवनक्षत्रं व्ययांशौ प्रथमौ शुभौ ॥१९॥

आय, व्यय, नक्षत्र और अंश आदि की गणना देवालय मे दीवार के बाहर के भाग से होती है। देवालय मे ध्वज आय, देव नक्षत्र, प्रथम व्यय और प्रथम अंश ये शुभ है ॥१९॥

केषाञ्चिन्मरुतां[1] गेहे वृषसिंहगजाः शुभाः।
आयादूनो[2] व्ययः श्रेष्ठः पिशाचस्तु समोऽधिकः ॥२०॥

देवालयो में वृष, सिंह और गज आय भी श्रेष्ठ है। अपराजित पृच्छा सूत्र ६४ में भी कहा है कि—'ध्वज. सिंहो वृषगजौ शस्यन्ते सुरवेश्मनि।' आय से व्यय कम हो तो श्रेष्ठ है। सम व्यय हो तो पिशाच और अधिक व्यय हो तो राक्षस नाम का व्यय माना जाता है ॥२०॥

देवालय में विचारणीय—

देवतानां गृहे चिन्त्य-मायाद्यङ्गचतुष्टयम्।
नवाङ्गं नाडीवेधादि-स्थापकामरयोर्मिथः ॥२१॥

देवालय मे आय, व्यय, अंश और नक्षत्र इन चार अंगो का, तथा स्थापक (देव स्थापन करने वाले) और देव इन दोनो के परस्पर नाडीवेध, योनि, गण, राशि, वर्ण, वश्य, तारा, वर्ग और राशिपति, इन नव अङ्गो का विचार करना चाहिये ॥२१॥

आयादिचिन्तनं भूमि-लक्षणं वास्तुमण्डलम्।
मासनक्षत्रलग्नादि-चिन्तनं पूर्वशास्त्रतः ॥२२॥

आय आदिका विचार, भूमिका लक्षण, वास्तु मण्डल, मास, नक्षत्र और लग्न आदिका विचार, ये सब राजवल्लभ मंडन और अपराजित पृच्छा आदि शास्त्रो से जानना चाहिये ॥२२॥

आय व्यय और नक्षत्र लाने का प्रकार—

"व्यासे दैर्घ्यगुणेऽष्टभिर्विभजिते शेषो ध्वजाद्यायको,
ऽष्टघ्ने तद्गुणिते च धिष्ण्यभजिते साहक्षमश्वादिकम्।

---

(१) केषां च (२) हीन आयाद्

नक्षत्रे वसुभिर्व्ययोऽपि भजिते हीनस्तु लक्ष्मीप्रद,
तुल्यायश्च पिशाचको ध्वजमृते सर्वाद्धितो राक्षस ॥" राज व० अ० ३

प्रासाद अथवा गृह बनाने की भूमि की लबाई और चौडाई के नाप का गुणाकार करने से जो गुणनफल हो, वह क्षेत्रफल कहा जाता है। इसको आठ से भाग देने से जो शेष बचे, वह ध्वज आदि आय कहलाती है। क्षेत्रफल को आठ से गुणा करके, गुणनफल को सत्ताईस से भाग दे जो शेष बचे वह अश्विनी आदि नक्षत्र होता है। नक्षत्र की जो सख्या आवे, उसमे आठ का भाग देने से जो शेष बचे वह व्यय कहलाता है। आय से व्यय कम हो तो लक्ष्मी को प्राप्त करने वाला है। आय और व्यय दोनो बरावर हो तो पिशाच नाम का व्यय और ध्वज आय को छोडकर दूसरी आयी से व्यय अधिक हो तो वह राक्षस नाम का व्यय कहलाता है।

आयो की सज्ञा और दिशा—

"ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वानो वृषखरौ गज.।
ध्वाक्षश्चेति समुद्दिष्टा प्राचादिषु प्रदक्षिणा ॥" अप० सू० ६४

ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और ध्वाक्ष, ये आठ आयो के नाम हैं। वे अनुक्रम से पूर्व आदि दिशाओ के स्वामी हैं।

प्रासाद के प्रशस्त आय—

ध्वज सिंहो वृषगजौ शस्यते सुरवेश्मनि।
अधमाना खरध्वाक्ष-धूमश्वाना सुखावहा ॥" अप० सू० ६४

ध्वज, सिंह, वृष और गज ये चार आय देवालय में शुभ हैं। तथा खर, ध्वाक्ष, धूम और श्वान ये चार आय अधम जातिवालो के घरो मे सुखकारक हैं[१]।

व्यय संज्ञा—

"शान्त पौर. प्रद्योतश्च श्रियानन्दो मनोहर।
श्रीवत्सो विभवश्चैव चिन्तात्मा च व्यया स्मृता ॥
समो व्यय पिशाचश्च राक्षसस्तु व्ययोऽधिक।
व्ययो न्यूनो यक्षश्चैव धनधान्यकर स्मृत ॥" अप० सू० ६६

शान्त, पौर, प्रद्योत, श्रियानन्द, मनोहर, श्रीवत्स, विभव और चिन्तात्मा, ये व्ययो के आठ नाम हैं। आय और व्यय समान हो तो पिशाच नाम का व्यय, आय से व्यय अधिक हो तो राक्षस नाम का व्यय और आय से व्यय कम हो तो यक्ष नाम का व्यय होता है। यह धन धान्य की वृद्धि करने वाला है।

(१) विशेष जानने के लिये देखो मेरा अनुवादित राजवल्लभ मडन ग्रथ

राशि, योनि, नाडी, गण आदि जानने का शतपदचक्र—

संख्या	नक्षत्र	अक्षर	राशि	वर्ण	वश्य	योनि	राशिश	गण	नाडी	चन्द्र	व्यय
१	अश्विनि	चू चे चो ला	मेष	क्षत्रिय	चतुष्पद	अश्व	मगल	देव	आद्य	उत्तर	शान्त
२	भरणी	ली लू ले लो.	मेष	क्षत्रिय	चतुष्पद	गज	मगल	मनुष्य	मध्य	उत्तर	पौर
३	कृत्तिका	अ. इ उ ए	१ मेष ३ वृष	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	चतुष्पद	बकरा	१ मगल ३ शुक्र	राक्षस	अत्य	पूर्व	प्रद्योत
४	रोहिणी	ओ. वा वी वु	वृष	वैश्य	चतुष्पद	सर्प	शुक्र	मनुष्य	अन्त्य	पूर्व	श्रियानद
५	मृगशिर	वे वो का की	२ वृष २ मिथुन	२ वैश्य २ शूद्र	२ चतुष्पद २ मनुष्य	सप	२ शुक्र २ बुध	देव	मध्य	पूर्व	मनोहर
६	आर्द्रा	कु घ ङ छ	मिथुन	शूद्र	मनुष्य	श्वान	बुध	मनुष्य	आद्य	पूव	श्रीवत्स
७	पुनर्वसु	के को हा ही	३ मिथुन १ कक	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ जलचर	मार्जार	३ बुध १ चन्द्र	देव	आद्य	पूर्व	विभव
८	पुष्य	हु हे हो डा	कर्क	ब्राह्मण	जलचर	बकरा	चद्रमा	देव	मध्य	पूर्व	चिन्तात्म
९	आश्लेषा	डी डु डे डो	कर्क	ब्राह्मण	जलचर	मार्जार	चन्द्रमा	राक्षस	अत्य	पूर्व	शान्त
१०	मघा	मा मी मु. मे	सिंह	क्षत्रिय	वनचर	चूहा	सूर्य	राक्षस	अत्य	दक्षिण	पौर
११	पूर्वा फा०	मो टा टी. टु	सिंह	क्षत्रिय	वनचर	चूहा	सूर्य	मनुष्य	मध्य	दक्षिण	प्रद्योत
१२	उत्तरा फा	टे टो पा पी	१ सिंह ३ कन्या	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	१ वनचर ३ मनुष्य	गौ	१ सूर्य ३ बुध	मनुष्य	आद्य	दक्षिण	श्रियानन्द
१३	हस्त	पु षा. ण ठ	कन्या	वैश्य	मनुष्य	भैस	बुध	देव	आद्य	दक्षिण	मनोहर

संख्या	नक्षत्र	अक्षर	राशि	वर्ण	वश्य	योनि	राशीश	गण	नाडी	चन्द्र	व्यय
१४	चित्रा	पे पो रा री	२ कन्या २ तुला	२ वैश्य २ शूद्र	मनुष्य	वाघ	२ बुध २ शुक्र	राक्षस	मध्य	दक्षिण	श्रीवत्स
१५	स्वाति	रु रे रो. ता	तुला	शूद्र	मनुष्य	भैंस	शुक्र	देव	अन्त्य	दक्षिण	विभव
१६	विशाखा	ती तु ते तो	३ तुला १ वृश्चिक	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ कीडा	व्याघ्र	३ शुक्र १ मंगल	राक्षस	अन्त्य	दक्षिण	चिन्तात्मा
१७	अनुराधा	ना नी नु. ने.	वृश्चिक	ब्राह्मण	कीडा	हीरण	मंगल	देव	मध्य	पश्चिम	शान्त
१८	ज्येष्ठा	नो या यी यु	वृश्चिक	ब्राह्मण	कीडा	हीरण	मंगल	राक्षस	आद्य	पश्चिम	धीर
१९	मूल	ये यो भा भी	धन	क्षत्रिय	मनुष्य	कुक्कर	गुरु	राक्षस	आद्य	पश्चिम	प्रयोन
२०	पूर्वाषाढा	भु धा फ ढा	धन	क्षत्रिय	मनुष्य चतुष्पद	वानर	गुरु	मनुष्य	मध्य	पश्चिम	प्रियानंद
२१	उत्तराषाढा	भे भो जा जी	१ धन ३ मकर	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	चतुष्पद	नोला	१ गुरु ३ शनि	मनुष्य	अन्त्य	पश्चिम	मनोहर
२२	श्रवण	खी खू खे खो	मकर	वैश्य	चतुष्पद जलचर	वानर	शनि	देव	अन्त्य	पश्चिम	श्रीवत्स
२३	धनिष्ठा	गा गी गु गे	२ मकर २ कुम्भ	२ वैश्य २ शूद्र	२ जलचर २ मनुष्य	सिंह	शनि	राक्षस	मध्य	उत्तर	विभव
२४	शतभिषा	गो सा सी. सु	कुम्भ	शूद्र	मनुष्य	घोडा	शनि	राक्षस	आद्य	उत्तर	चिन्तात्मा
२५	पूर्वाभाद्र	से सो दा दी	३ कुम्भ १ मीन	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ जलचर	सिंह	३ शनि १ गुरु	मनुष्य	आद्य	उत्तर	शान्त
२६	उत्तराभाद्र	दु थ झ ञ	मीन	ब्राह्मण	जलचर	गौ	गुरु	मनुष्य	मध्य	उत्तर	धीर
२७	रेवती	दे दो चा ची	मीन	ब्राह्मण	जलचर	हाथी	गुरु	देव	अन्त्य	उत्तर	प्रयोन

ध्वजाय और देवगणनक्षत्रवाले समचोरस क्षेत्र का माप—

गज – इंच	नक्षत्र	गज – इंच	नक्षत्र	गज – इंच	नक्षत्र
१—१	मृगशीर	७–२१	रेवती	१५—१	अनुराधा
१—३	रेवती	७–२३	मृगशीर	१५—९	रेवती
१—५	मृगशीर	८—७	अनुराधा	१५–१९	पुष्य
१–१३	अनुराधा	८–१५	रेवती	१६—३	रेवती
१–२१	रेवती	८–२३	पुष्य	१६–११	अनुराधा
२—५	पुष्य	९—१	पुष्य	१६–१९	मृगशीर
२—७	पुष्य	९—९	रेवती	१६–२१	रेवती
२–१५	रेवती	९–१७	अनुराधा	१७–१३	रेवती
२–२३	अनुराधा	१०—१	मृगशीर	१७–१५	रेवती
३—७	मृगशीर	१०—३	रेवती	१७–२३	पुष्य
३—९	रेवती	१०—५	मृगशीर	१८—१	पुष्य
३–११	मृगशीर	१०–१३	अनुराधा	१८—९	रेवती
३–१९	अनुराधा	११—५	पुष्य	१८–१७	रेवती
४—३	रेवती	११—७	पुष्य	१९—१	मृगशीर
४–११	पुष्य	११–१५	रेवती	१९—३	रेवती
४–१३	पुष्य	११–२३	अनुराधा	१९—५	मृगशीर
४–२१	रेवती	१२—७	मृगशीर	१९–२१	रेवती
५—५	अनुराधा	१२—९	रेवती	१९–२३	पुनर्वसु
५–१३	मृगशीर	१२–११	मृगशीर	२०—५	पुष्य
५–१५	रेवती	१२–१९	अनुराधा	२०—७	पुष्य
५–१७	मृगशीर	१३—३	रेवती	२०–१५	रेवती
६—१	अनुराधा	१३–११	पुष्य	२०–१९	हस्त
६—९	रेवती	१३–१३	पुष्य	२०–२३	अनुराधा
६–१७	पुष्य	१३–२१	रेवती	२१—७	मृगशीर
६–१९	पुष्य	१४—५	अनुराधा	२१—९	रेवती
७—३	रेवती	१४–१३	मृगशीर	२१–११	मृगशीर
७–११	अनुराधा	१४–१५	रेवती	२१–१९	अनुराधा
७–१९	मृगशीर	१४–१७	मृगशीर	२१–२३	मृगशीर

अंश लाने का प्रकार—

"तन्मूले व्ययहर्म्यनामसहिते भक्ते त्रिभिस्त्वंशक,
स्यादिन्द्रो यमभूपती क्रमवशाद् देवे सुरेन्द्रो हित ।
वेद्यामेष यमस्तु पण्यभवने नागे तथा भैरवे,
राजांशो गजवाजियाननगरे राज्ञा गृहे मन्दिरे ॥" राज० अ० ३

मूलराशि (क्षेत्रफल) मे व्यय की सख्या और घरके नामाक्षर की सख्या जोड करके उसमे तीन से भाग दे । जो एक शेष बचे तो इन्द्रांश, दो शेष बचे तो यमांश और तीन (शून्य) शेष बचे तो राजांश जाने । इन्द्र का अंश-देवालय और वेदी मे शुभ है । यमका अंश-दुकान, नागदेव और भैरव के प्रासाद मे शुभ है । राजा का अंश-गजशाला, अश्वशाला, वाहन, नगर, राजमहल और साधारण घर में शुभ है ।

दिक् साधन—

रात्रौ दिक्साधनं कुर्याद् दीपसूत्रध्रुवैक्यतः ।
समे भूमिप्रदेशे तु शङ्कुना दिवसेऽथवा ॥२३॥

घर और देवालय आदि बराबर वास्तविक दिशा मे न होने से दिङ्मूढदोष माना जाता है । इसलिये गृह आदि बराबर ठीक दिशा मे रखने के लिये दिक् साधन करना जरूरी है । रात्रि मे दिशा का साधन दीपक, सूत और ध्रुव से किया जाता है और दिन में दिशा का साधन समतल भूमि के ऊपर शकु रखकर किया जाता है ॥२३॥

"प्राची मेषतुलारवेरुदयत स्याद् वैष्णवे वह्निभे,
चित्रास्वातिभमध्यगा निगदिता प्राची बुधै पञ्चधा ।
प्रासाद भवन करोति नगर दिङ्मूढमर्थक्षय,
हर्म्ये देवगृहे पुरे च नितरामायुर्धनं दिङ्मुखे ॥" राज० अ० १

मेष और तुला सक्रान्ति को सूर्य का उदय पूर्व दिशा मे होता है । श्रवण और कृत्तिका नक्षत्र का उदय पूर्व दिशा मे होता है । चित्रा और स्वाति नक्षत्र के मध्य मे पूर्व दिशा मानी जाती है । विद्वानो ने कहा है कि इन पाच प्रकार मे पूर्व दिशा को जाने । प्रासाद गृह और नगर को दिङ्मूढ करने से धन का नाश होता है । यदि ये वास्तविक दिशा में हो तो हमेशा आयु और धन की वृद्धि होती है ।

रात्री में और दिन में दिक्साधन—

"तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समता नीतेऽवलम्बे नते,
दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या दिशा ।

शङ्कोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छायाद्वयान्मत्स्ययो-
र्जाता यत्र युतिस्तु शङ्कु तलतो याम्योत्तरे स्त स्फुटे ॥"
राज० अ० १ श्लो० ११

रात्रि में दिक साधन—

सप्तर्षि और ध्रुव के बीच मे एक गज के अन्तर वाले दो तारा है जो ध्रुव के चारो तरफ घूमते है उनको मार्कटिका कहते है। यह मार्कटिका और ध्रुव जब बराबर समसूत्र मे आवे, तब एक अवलब लटकावे और उसके सामने दक्षिण की तरफ एक दीपक रखे। यदि दीपक का अग्र भाग, अवलब और ध्रुव ये तीनो बराबर समसूत्र मे दिखाई पडे तो उसे उत्तर दिशा जाने। अवलब और दीपक के समसूत्र एक रेखा खीची जाय तो वह उत्तर दक्षिण रेखा होगी *।

दिन मे दिक्साधन करना हो तो समतल भूमि के उपर बत्तीस अगुल का एक गोल चक्र बनावें, उसके मध्य बिन्दु पर एक बारह अगुल के नाप का शकु रखे। पश्चात् दिन के पूर्वार्ध मे देखे कि शकुकी छाया गोल मे जिस जगह प्रवेश करे, वहा एक चिह्न करे वह पश्चिम दिशा होगी और दिन के उत्तरार्ध मे जहाँ बाहर निकले वहा एक बिन्दु करे यह पूर्व दिशा होगी। पीछे पूर्व और पश्चिम की इन दोनो बिन्दुओ तक एक सरल रेखा खीची जाय तो यह पूर्व पश्चिम रेखा होगी, इसको व्यासार्ध मान करके दो गोल बनावे, जिसे एक मत्स्य के जैसी आकृति होगी, उसके ऊपर और नीचे के योग बिन्दु से एक सरल रेखा खीची जाय तो यह उत्तर दक्षिण रेखा होगी। देखो नीचे का दिक्साधन चक्र—

चक्र परिचय—

बत्तीस अगुल का 'इ उ ए' एक गोल है, उसका मध्य बिन्दु 'अ' है। उसके ऊपर बारह अगुल का एक शंकु रखकर दिन के पूर्वार्द्ध मे देखा गया तो शकुकी छाया गोल के 'क' बिन्दु के पास प्रवेश करती है, यह पश्चिम दिशा जाने और दिनार्द्ध के बाद 'च' बिन्दु के पास बाहर निकलती है, यह पूर्व दिशा जाने। इन 'क' और 'च' दोनो बिन्दु तक एक सरल रेखा खीचो जाय तो यह पूर्व पश्चिम रेखा होती है। इसको व्यासार्द्ध मान कर 'क' बिन्दु से 'च छ ज' और दूसरा 'च' बिन्दु से 'क ख ग' ऐसे दो गोल बनावे तो पूर्व पश्चिम रेखा के ऊपर एक मछली के जैसी आकृति हो जाती है। उसके मध्य बिन्दु 'अ' से एक सरल रेखा खीची जाय जो गोलके दोनो स्पर्श बिन्दु से बाहर निकल जाय, यह उत्तर दक्षिण रेखा होती है।

* उपरोक्त प्रकार से भी वास्तविक दिशा का ज्ञान नही होता, क्योकि अयनाश के कारण ध्रुव का तारा एव कृत्तिकादि नक्षत्र ठीक दिशा में उदय नही होता। जिसे आजकल नवीन आविष्कार दिक् साधन यत्र (कुतुबनुमा) से करना चाहिये।
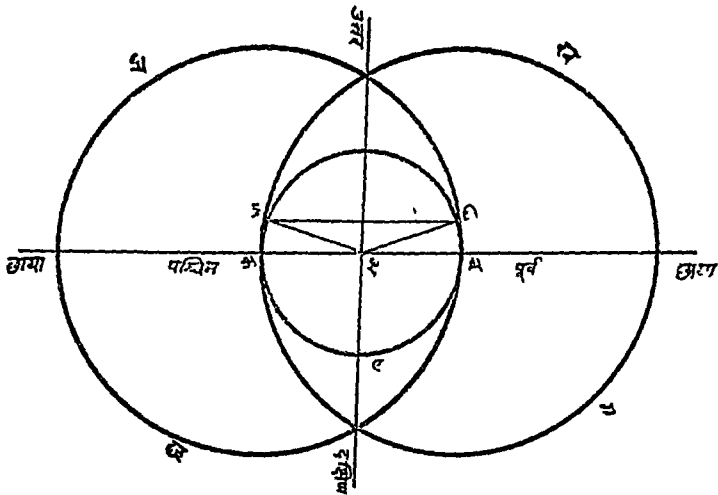
खात विधि—

नागवास्तुं समालोक्य कुर्यात् खातविधिं[1] सुधीः ।
पाषाणान्तं जलान्तं वा ततः कूर्मं निवेशयेत् ॥२४॥

प्रथम शेषनाग चक्र का विचार करके विद्वान् शिल्पी खात विधि करे। नीव को खोदने से भूमि मे पाषाण अथवा पानी निकल जाय, उसके ऊपर कूर्म (कच्छुआ) की स्थापना करे ॥२४॥

नागवास्तु—

"कन्यादौ रवितस्त्रये फणीमुख पूर्वादि सृष्टिक्रमात्"

ऐसा राजवल्लभ मण्डन के अध्याय प्रथम श्लोक २२ मे कहा है कि—
कन्या, तुला और वृश्चिक राशि का सूर्य हो तब शेषनाग का मुख पूर्व दिशा में, धन, मकर कुम्भ राशि का सूर्य हो तब दक्षिण दिशा मे, मीन, मेष और वृष राशि का सूर्य हो तब पश्चिम दिशा मे, मिथुन कर्क और सिंह राशि का सूर्य हो तब उत्तर मे शेषनाग का मुख रहता है।

"पूर्वास्येऽनिलखातन यममुखे खात शिवे कारये-
च्छीर्षे पश्चिमगे च वह्नि खनन सौम्ये खनेन्नैर्ऋते ॥"

ऐसा राजवल्लभ मण्डन के अध्याय प्रथम श्लोक २४ मे कहा है कि-शेषनाग का मुख पूर्व दिशा मे हो तो वायुकोण मे, दक्षिण दिशा मे हो तो ईशानकोण मे, पश्चिम दिशा मे हो तो अग्निकोण मे और उत्तर दिशा में हो तो नैर्ऋत्य कोण मे खात करना चाहिये।

(१) वास्तुविधिं

ज्योतिष शास्त्र के मुहूर्त ग्रन्थो मे अन्य प्रकार से कहा है। मुहूर्त्त चिन्तामणि के वास्तु प्रकरण श्लोक १६ की टीका मे विश्वकर्मा का प्रमाण देकर लिखा है कि—

"ईशानत सर्पति कालसर्पो, विहाय सृष्टि गणयेद् विदिक्षु।
शेषस्य वास्तोर्मु खमध्यपुच्छ, त्रय परित्यज्य खनेच्च तुर्यम्॥"

शेषनाग प्रथम ईशानकोण से चलता है, उसका मुख, नाभि और पूछ सृष्टिमार्ग को छोडकर विपरीत विदिशा में रहता है। अर्थात् ईशान मे मुख, वायुकोण में नाभि और नैर्ऋत्य कोण मे पूछ रहता है। इसलिये इन तीनो विदिशाओ को छोडकर चौथा अग्निकोण खाली रहता है, उसमें प्रथम खात करना चाहिये।

राहु (नाग) मुख—

"देवालये गेहविधौ जलाश्रये, राहोर्मु ख शम्भुदिशो विलोमत।
मीनार्क सिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे, खाते मुखात् पृष्ठविदिक्शुभाभवेत्॥"

देवालय का खात मुहूर्त्त करते समय राहु का मुख यदि मीन, मेष और वृषभ राशि का सूर्य हो तब ईशान कोण मे, मिथुन, कर्क और सिंह राशि का सूर्य हो तब वायुकोण मे, कन्या तुला और वृश्चिक राशि का सूर्य हो तब नैर्ऋत्यकोण मे, धन, मकर और कुम्भ राशि का सूर्य हो तब अग्निकोण मे, राहु का मुख रहता है।

घरके खात मुहूर्त्त के समय नाग का मुख सिंह कन्या और तुला राशि के सूर्य मे ईशान कोण मे, वृश्चिक धन और मकर राशि के सूर्य मे वायुकोण मे, कुम्भ मीन और मेषराशि के सूर्य मे नैर्ऋत्यकोण मे, वृष मिथुन और कर्क राशि के सूर्य मे अग्निकोण में राहु का मुख रहता हैं।

कुआ, बावडी, तालाब आदि जलाश्रयको आरभ करते समय राहु का मुख मकर कुम्भ और मीन राशि के सूर्य मे ईशान कोण मे, मेप वृष और मिथुन राशि के सूर्य मे वायुकोण मे, कर्क सिंह और कन्या राशि के सूर्य मे नैर्ऋत्यकोण मे, तुला वृश्चिक और धन राशी के सूर्य मे अग्निकोण मे राहु का मुख रहता है।

जिस विदिशा मे राहु का मुख हो, उसके पीछे की विदिशा मे खात करना शुभ है। जैसे–ईशान कोण मे मुख है, तो अग्निकोण मे, वायुकोण मे मुख हो तो ईशानकोण मे, नैर्ऋत्य कोण में मुख हो तो वायुकोण मे और अग्निकोण मे मुख हो तो नैर्ऋत्य कोण मे खात करना शुभ है।*

* राहु मुख याने नागमुख या वास्तुमुख इसमें बहुत मतान्तर है। कोई सृष्टि क्रम से और कोई विलोम क्रम से मानते हैं। विशेष जानने के लिये देखें स्वय द्वारा अनुवादित 'राजवल्लभ मडन ग्रथ'।

कूर्ममान—

अर्धाङ्गुलो भवेत् कूर्म एकहस्ते सुरालये ।
अर्धाङ्गुला ततो वृद्धिः कार्या तिथिकरावधि ॥२५॥
एकत्रिंशत्करान्तं च तदर्धा वृद्धिरिष्यते ।
ततोऽर्धापि शतार्धान्तं कूर्मो मन्वङ्गुलोत्तमः ॥२६॥

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद मे आधे अगुल के नाप का कूर्म (कच्छूआ) नीव में स्थापित करे । दोसे पंद्रह हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ आधा २ अगुल बढ़ा करके, (दो हाथ के प्रासाद मे एक अगुल, तीन हाथ के प्रासाद मे डेढ अ गुल, चार हाथ के प्रासाद मे दो अंगुल, इस प्रकार आधा २अगुल बढाने से पद्रह हाथ के प्रासाद मे साढे सात अगुल के मान का कूर्म होता है) । सोलह से इकतीस हाथ के विस्तार वाले प्रासाद मे प्रत्येक हाथ पाव २ अगुल बढा करके और बत्तीस से पचास हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ एक २ सूत बढा करके नीव मे स्थापित करे। इस प्रकार पचास हाथ के विस्तार वाले प्रासाद मे एक सूत कम चौदह अगुल के मान का कूर्म होता है ॥२५-२६॥

अपराजितपृच्छा के मत से कूर्ममान—

"एकहस्ते सुरागारे कूर्म स्याच्चतुरङ्गुल ।
अर्धाङ्गुला भवेद् वृद्धि प्रतिहस्त दशावधि ॥
पादवृद्धि पुन कुर्याद् विंशतिहस्तत करे ।
ऊर्ध्वं वै त्रिंशद्धस्तान्त वसुहस्तैकमङ्गुलम् ॥
तत परं शतार्धान्त सूर्यहस्तैकमङ्गुलम् ।
अनेन क्रमयोगेन मन्वङ्गुल शतार्धके ॥" सूत्र ५२

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद मे कूर्म चार अगुल के मान का, दोसे दस हाथ के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ आधा २ अगुल बढा कर के, ग्यारह से बीस हाथ के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ पाव २ अगुल बढा करके, इक्कीस से तीस हाथ के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ एक २ सूत बढा कर के और इकतीस से पचास हाथ के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ १⁄१२ अगुल बढा कर के बनावे । इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद में लगभग चौदह अगुल के मान का कूर्म होता है ।

अपराजितपृच्छाके मत से दूसरा कूर्ममान—

"एकहस्ते तु प्रासादे कूर्मश्चार्धाङ्गुल' स्मृत ।
अर्द्धवृद्धि. प्रकर्त्तव्या पञ्चदशहस्तावधि ॥
एकत्रिंशद्ध हस्तान्त पादवृद्धि प्रकीर्त्तिता ।
तदर्धेन पुनर्वृद्धि-र्मन्वङ्गुल शतार्धके ॥" सूत्र १५३

एक हाथ के प्रासाद मे कूर्म आधा अगुल का, दोसे पद्रह हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ आधा २ अगुल बढा करके, सोलह से एकत्तीस हाथ के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ पाव २ अगुल बढा करके, और बत्तीस से पचास हाथ के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ एक २ सूत वढा करके बनावे। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद मे एक सूत कम चौदह अगुल के मान का कूर्म होता है।

क्षीरार्णव के मत से कूर्ममान--

"शिलाया पञ्चमांशेन कर्त्तव्य कूर्ममुत्तमम् ।
सर्वालङ्कारसयुक्त दिव्यपुष्पैश्च पूजितम् ॥" अध्याय १०१

धारणी शिला के पाचवे भाग का कूर्म बनावे, यह उतम मान है। उसको सब प्रकार के अलकारो से युक्त करे और सुगधित पुष्पो से पूजित करे।

कूर्म का ज्येष्ठ और कनिष्ठ मान—

चतुर्थांशाधिको ज्येष्ठः कनिष्ठो हीनयोगतः ।
सौवर्णो रूप्यजो वापि स्नाप्यः पञ्चामृतेन स ॥२७॥
तिलैर्यवैस्तथा होम-पूर्णां चैव प्रदापयेत् ।

कूर्मका जो मान आया हो, वह मध्यम मान है, उसमे इस मान का चौथा भाग बढावे तो ज्येष्ठ मानका और चौथा भाग कम करे तो कनिष्ठ मानका कूर्म होता है। यह कूर्म सुवर्ण अथवा चादी का बनाना चाहिये। उसको पञ्चामृत से स्नान कराके, तथा तिल और जवो का पूर्ण आहुति पूर्वक होम करके स्थापित करे ॥२७॥

शिला और कूर्म का स्थापन क्रम—

ईशानादग्निकोणाद्वा शिलाः स्थाप्याः प्रदक्षिणाः ॥२८॥
मध्ये कूर्मशीला पश्चाद् गीतवादित्रमङ्गलैः ।
बलिदानं च नैवेद्यं विविधान्नं घृतप्लुतम् ॥
देवताभ्यः सुधीर्दद्यात् कूर्मन्यासे शिलासु च ॥२९॥

इति कूर्म स्थापनम् ।

प्रथम ईशान अथवा अग्नि कोने में नदा शिला की स्थापना करके पीछे प्रदक्षिण क्रम से अन्य शिलाओ को स्थापित करे। पीछे मध्य में कूर्म शिला (धारणी शिला) को स्थापित करे। शिला स्थापन करते समय मागलिक गीत और वाजीत्रो का नाद करावें। वास्तु के देवो को बलि वाकुले, नैवेद्य और अनेक प्रकार के धान्य के घृत से पूर्ण मालपूवे आदि चढावे ॥२८-२९॥

पुनः शिला स्थापन क्रम—

"नन्दा पुर प्रदातव्या शिला शेषा प्रदक्षिणे।
मध्ये च धरणी स्थाप्या यथाक्रम प्रयत्नत ॥" क्षीरार्णवे अध्य० १०१

प्रथम नन्दा नाम की शिला को स्थापित करे, पीछे अनुक्रम से भद्रा आदि शिलाओ को प्रदक्षिण क्रम से स्थापित करे और मध्य मे धरणी शिला को स्थापन करे। ऐसा क्षीरार्णव ग्र थ मे कहा है।

शिला के नाम—

"नन्दा भद्रा जया रिक्ता अजिता चापराजिता।
शुक्ला सौभागिनी चैव धरणी नवमी शिला ॥" क्षीरार्णवे अ० १०१

नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, अजिता, अपराजिता, शुक्ला और सौभागिनी ये अनुक्रम से दिशाओ की आठ शिलाओ के नाम हैं। नववी धरणी नाम की शिला मध्य भाग की है।

अपराजित मत से शिला के नाम—

"नन्दा भद्रा जया पूर्णा विजया पञ्चमी शिला
मङ्गला ह्यजितापरा-जिता च धरणीभवा ॥"

नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, विजया, मगला, अजिता, अपराजिता, ये अनुक्रम से दिशाओ की शिला के नाम है और मध्य भाग की नववी धरणी नाम की शिला है।

धरणी शिला का मान—

"एक हस्ते तु प्रासादे शिला वेदाङ्गुला भवेत्।
द्व्यङ्गुला च भवेद् वृद्धि-र्यावच्च दशहस्तकम् ॥
दशोर्ध्वं विंशपर्यन्त हस्ते हस्ते चैकाङ्गुला।
अर्द्धाङ्गुला भवेद् वृद्धि-र्यावत्पञ्चाशद्धस्तकम् ॥
तृतीयांशे कृते पिण्डे तदर्धे रूपपातकम्।
पुष्पाणि च यथाकार शिलामध्ये ह्यलकृतम् ॥" क्षीरार्णवे अ० १०१

एक हाथ के प्रासाद मे चार अगुल की शिला, दोसे दस हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ दो २ अगुल वढा करके, ग्यारह से बीस हाथ तक के प्रासाद मे एक एक अगुल वढा करके, और इक्कीस से पचास हाथ तक के प्रासाद मे आधा २ अगुल बढा करके स्थापित करे। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद मे ४७ अगुल के मान की समचोरस धरणी शिला होती है।

शिला का जो समचोरस मान आवे, उसके तीसरे भाग का पिंड (मोटाई) रक्खें। पिंड के आधे भाग मे शिला के ऊपर रूपो बनावे। तथा पुष्पकी आकृति बनावे।

ज्ञान प्रकाश दीपार्णव के मत से धरणी शिला का मान—

"एकहस्ते तु प्रासादे शिला वेदाङ्गुला भवेत्।
षडगुला द्विहस्ते तु त्रिहस्ते ग्रहसंख्यया॥
द्वादशाङ्गुल शिलामान प्रासादे चतुर्हस्तके।
तृतीयाशोदय कार्यो हस्ताद्याद् वेदहस्तकम्॥
चतुर्हस्तादित कृत्वा यावद् द्वादशहस्तकम्।
पादोनाङ्गुला च वृद्धिर्हस्ते हस्ते च दापयेत्॥
सूर्यहस्तादित कृत्वा यावच्च जिनहस्तकम्।
अर्धाङ्गुला भवेद् वृद्धि-रुच्छ्रये तु नवाङ्गुला॥
चतुर्विंशादित कृत्वा यावत् षट्त्रिंशहस्तकम्।
पादोनाङ्गुला च वृद्धि पिण्ड च द्वादशाङ्गुलम्॥
षट्त्रिंशादितश्च कृत्वा यावत् पञ्चाशद्धस्तकम्।
एकाङ्गुला भवेद् वृद्धि पिण्ड च द्वादशाङ्गुलम्॥" अ० ११

एक हाथ के प्रासाद मे शिला का मान चार अगुल, दो हाथ मे छ अगुल, तीन हाथ मे नव अगुल और चार हाथ के प्रासाद मे बारह अगुल शिला का मान है। एक से चार हाथ तक के प्रासाद मे शिला का जो मान आवे, उसके तीसरे भाग शिला की मोटाई रक्खे। पाच से बारह हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ पौन २ अगुल बढाकर के, तेरह से चोबीस हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ आधा २ अगुल बढा करके बनावे। पाच से चोबीस हाथ तक के प्रासाद मे शिला का जो मान आवे उसकी मोटाई नव अगुल की रक्खे। पचीस से छत्तीस हाथ तक पौन २
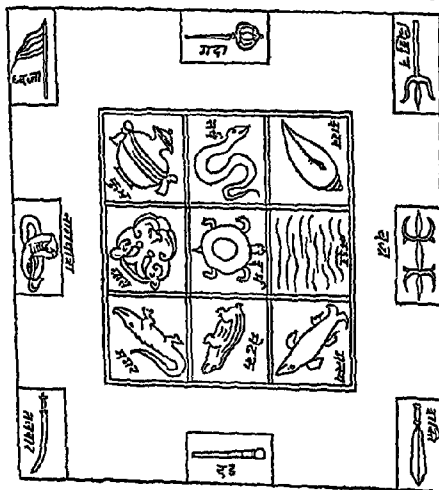
अगुल और सेतीस से पचास हाथ तक प्रत्येक हाथ एक अगुल बढा करके बनावे। उसकी मोटाई बारह अगुल की रक्खें। इस प्रकार समचोरस शिला का कुल मान ४७ अगुल का होता है।

अपराजित मत से धारणी शिला का मान—

"नवत्यङ्गुल दैर्घ्ये च पृथुत्वे चतुर्विशति ।
द्वादशाङ्गुलपिण्ड च शिलामानप्रमाणत ॥" सूत्र ४७ श्लो० १६

नव्वे अगुल लवी, चौवीस अगुल चौडी और बारह अगुल मोटी, यह धरणी शिला का मान जाने।

दूसरा मत—

"एकहस्ते च प्रासादे शिला वेदाङ्गुला भवेत्।
षडगुला द्विहस्ते च त्रिहस्ते च ग्रहाङ्गुला ॥
चतुर्हस्ते च प्रासादे शिला स्याद् द्वादशाङ्गुला।
तृतीयाशोदय कार्यो हस्तादौ च युगान्तत ॥
ततोऽपरेऽष्टहस्तान्त वृद्धिस्त्र्यडगुलतो भवेत् ।
पुनर्द्व‍्यङ्गुलतो वृद्धि पञ्चाशद्धस्तकावधि ॥
पादेन चोच्छ्रिता शस्ता ता कुर्यात् पङ्कजान्विताम ॥" सुत्र १५३

एक हाथ के प्रासाद मे चार अगुल की, दो हाथ के प्रासाद मे छह अगुल की, तीन हाथ के प्रासाद मे नव अगुल की और चार हाथ के प्रासाद मे बारह अगुल की समचोरस धरणी शिला स्थापन करना चाहिए। चार हाथ तक के प्रासाद के लिये धरणी शिला का जो मान आया हो, उसके तीसरे भाग शिला की मोटाई रखना चाहिये। पाच से आठ हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ तीन तीन अगुल और नव से पचास हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ दो दो अगुल बढा करके बनावे। इस प्रकार पचास हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद के लिये १०८ अगुल के मान की धरणी शिला होती है। वह चौथे भाग मोटो रक्खे और कमल की आकृतियो से शोभायमान बनावे।

धरणी शिला ऊपर के रूप—

"लहर मत्स्य मण्डूक मकरी ग्रासमेव च ।
जल सर्प शखयुक्त शिलामध्ये ह्यलङ्कृतम् ॥" क्षीरा० अ० १०१

पानी की लहर, मछली, मेढक, मगर, ग्रास, जल (कलश) सर्प शख इत्यादि रूप बना करके शिला को सुशोभित करना चाहिये।

कूर्मशिला के रूपो के सबध मे सूत्रधार वीरपाल विरचित बेडाया प्रासाद तिलक ग्रथ का अध्याय दूसरे मे लीखा है कि—

"कूर्ममानमिद च गर्भरचनाथाग्नौ शिलाया जलम्,
यास्ये मीनमुखं च नैर्ऋतदिशि स्थाप्य तथा दर्दुरम् ।
वारुण्या मकरश्च वायुदिशि त्रै ग्रासश्च सौम्ये ध्वनि,
नाग शङ्करदिक्षु पूर्वविषये कुम्भ शिलावह्नित ॥"

कूर्म के मान की गर्भ रचना कहता है कि—अग्निकोण मे पाणी की लहर, दक्षिण मे माछली, नैर्ऋत्य में मेढक, पश्चिम मे मगर, वायुकोण मे ग्रास, उत्तर मे शख, ईशान मे सर्प और पूर्व दिशा मे कुम्भ की आकृतिया बनानी चाहिये।

शिल्पियो की मान्यता वश परपरा से लहर की आकृति पूर्व दिशा मे बनाने की है।

सूत्रारंभ नक्षत्र—

सूत्रारम्भो गृहादीना-मुत्तरायां करत्रये ।
ब्राह्मे पुष्ये मृगे मैत्र्ये पौष्णये वासववारुणे ॥३०॥

प्रासाद और गृह आदि का सूत्रारभ तीनो उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद), हस्त, चित्रा, स्वाति, रोहिणी. पुष्य, मृगशीर्ष, अनुराधा, रेवती, धनिष्ठा और शतभिषा इन नक्षत्रो मे करना चाहिये ॥३०

शिला स्थापन नक्षत्र—

शिलान्यासस्तु रोहिण्यां श्रवणे हस्तपुष्ययोः ।
मृगशीर्षे च रेवत्या-मुत्तरात्रितये शुभः ॥३१॥

रोहिणी, श्रवण, हस्त, पुष्य, मृगशीर, रेवती और तीनो उत्तरा इन नक्षत्रो मे शिलाकी स्थापना करना शुभ है ॥३१॥

देवालय का निर्माणस्थान—

नद्यां सिद्धाश्रमे तीर्थे पुरे ग्रामे च गह्वरे ।
वापी-वाटी-तडागादि-स्थाने कार्यं सुरालयम् ॥३२॥

नदी के तट, सिद्ध पुरुषो के निर्वाण स्थान, तीर्थभूमि, शहर गाव, पर्वत की गुफाओ मे, बावडी, वाटिका (उपवन) और तालाव आदि पवित्र स्थानो मे देवालय बनाना चाहिये ॥३२॥

प्रासाद निर्माण पदार्थ—

स्वशक्त्या काष्ठमृदिष्ट-का शैलधातुरत्नजम् ।
देवतायतनं कुर्याद् धर्मार्थकाममोक्षदम् ॥३३॥

अपनी शक्ति के अनुसार काष्ठ, मिट्टी, ईंट, पाषाण, सुवर्ण आदि धातुओ और रत्न, इन पदार्थों का देवालय बनाना चाहिये। किसी भी पदार्थ का देवालय बनाने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥३३॥

देव स्थापन का फल—

देवानां स्थापनं पूजा पापघ्नं दर्शनादिकम् ।
धर्मवृद्धिर्भवेदर्थः कामो मोक्षस्ततो नृणाम् ॥३४॥

देवो की स्थापना, पूजा और दर्शन करने से मनुष्यो के सब पापो का नाश होता है तथा धर्म की वृद्धि, एव अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥३४॥

देवालय बनाने का फल—

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृन्मये दशसङ्गुणम् ।
ऐष्टके शतकोटिघ्न शैलेऽनन्तं फलं स्मृतम् ॥३५॥

देवालय घास का बनाने से कोटिगुणा, मिट्टी का बनाने से दस कोटिगुणा, ईंटो का बनाने से सौकोटिगुणा और पाषाण का बनाने से अनन्त गुणा फल होता है ॥३५॥

वास्तु पूजा का सप्त स्थान—

कूर्मसंस्थापने द्वारे पद्माख्यायां च पौरुषे ।
घटे ध्वजे प्रतिष्ठाया-मेवं पुण्याहसप्तकम् ॥३६॥

कूर्म की स्थापना, द्वार स्थापन, पद्मशिला की स्थापना, प्रासाद पुरुष की स्थापना, कलश और ध्वजा चढाना, और देव प्रतिष्ठा, ये सात कार्य करते समय वास्तु पूजन अवश्य करना चाहिये। यह पुण्याहसप्तक कहा जाता है ॥३६॥

शान्तिपूजा का चौदह स्थान—

भूम्यारम्भे तथा कूर्मे शिलायां सूत्रपातने ।
खुरे द्वारोच्छ्र्ये स्तम्भे पट्टे पद्मशिलासु च ॥३७॥
शुकनासे च पुरुषे घण्टायां कलशे तथा ।
ध्वजोच्छ्र्ये च कुर्वीत शान्तिकानि चतुर्दश ॥३८॥

भूमिका आरभ, कूर्म न्यास, शिला न्यास और सूत्रपात (तलनिर्माण), खुर शिला स्थापन, द्वार और स्तभ स्थापन, पाट चढाते समय, पद्मशिला, शुकनास और प्रासाद पुरुष के रखते समय, आमलसार, कलश चढाना, और ध्वजा चढाना, ये चौदह कार्य करते समय शान्तिपूजा अवश्य करनी चाहिये ॥३७-३८॥

प्रासाद का प्रमाण—

एक हस्तादिप्रासादाद् यावद्धस्तशतार्धकम् ।
प्रमाणं कुम्भके मूल-नासिके भित्तिबाह्यतः ॥३९॥

एक हाथ से पचास हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का प्रमाण दीवार के बाहर कु भा के मूलनासक (कोणा) तक गिना जाता है ॥३९॥

मण्डोवर के थरो का निर्गम—

कुम्भादिस्थावराणां च निर्गमः समसूत्रतः ।
पीठस्य निर्गमो बाह्ये तथैव छाद्यकस्य च ॥४०॥

कुम्भा से लेकर छज्जा के तल भाग तक जितने थर बनाये जाय, ये सब थरो के निर्गम समसूत्र मे रखने चाहिये । तथा पीठ और छज्जा का निर्गम थरो के आगे निकलता हुआ रखना चाहिये ॥४०॥

प्रासाद के अंगो की संख्या—

त्रिपञ्चसप्तनवभिः फालनाभिविभाजिते ।
प्रासादस्याङ्गसंख्या च वारिमार्गान्तरस्थितिः ॥४१॥

कर्ण, प्रतिकर्ण और नन्दी आदि फालनाये तीन, पाच, सात अथवा नव सख्या तक की जाती हैं, ये प्रासाद की अग सख्या हैं। उन्हे वारिमार्ग के अतराल मे (प्रासाद की दीवार से बाहर निकलती) रखना चाहिये ॥४१॥

फलनाओं का सामान्य मान—

फालना कर्णतुल्या स्याद् भद्र तु द्विगुणं मतम् ।
सामान्योऽयं विधिस्तुल्यो हस्ताङ्गुलविनिर्गमः ॥४२॥

इति श्री सूत्रधारमण्डनविरचिते प्रासादमण्डने वास्तुशास्त्रे

मिश्रलक्षणो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

सब फालनाये कोने के मान के बराबर रखनी चाहिये और भद्र कोने से दुगुना रखना चाहिये, ऐसा सामान्य नियम है। ये सब फालनाये प्रासाद का जितने हाथ का बिस्तार हो उतने अगुल निकलती रखनी चाहिये ॥४२॥

इति श्रीपडित भगवानदास जैन द्वारा अनुवादित प्रासादमण्डन के मिश्र-
लक्षण नाम के प्रथमाध्याय की सुबोधिनी नाम की भाषाटीका समाप्त ॥१॥

अथ प्रासादमण्डने द्वितीयोऽध्यायः

जगती—

विश्वकर्मोवाच—

प्रासादानामधिष्ठानं जगती सा निगद्यते ।
यथा सिंहासनं राज्ञः प्रासादस्य तथैव सा ॥१॥

प्रासाद की मर्यादित भूमि को जगती कहते हैं। जैसे—राजा का सिंहासन रखने के लिये अमुक स्थान मर्यादित रखा जाता है, वैसे प्रासाद बनाने के लिये अमुक भूमि मर्यादित रखी जाती है ॥१॥

अपराजितपृच्छा के सूत्र ११५ मे श्लोक ५ मे लीखा हैं कि—

"प्रासादो लिङ्गमित्युक्तो जगती पीठमेव च ॥"

प्रासाद शिवलिङ्गका स्वरूप है। जैसे शिवलिङ्ग के चारो तरफ पीठिका है, वैसे ही प्रासाद के जगतीरूप पीठिका है ।

जगती का आकार—

चतुरस्रायताष्टास्रा वृत्ता वृत्तायता तथा ।
जगती पञ्चधा प्रोक्ता प्रासादस्यानुरूपतः ॥२॥

समचोरस, लब चोरस, आठ कोने वाली, गोल और लब गोल, ऐसे पाच आकार वाली जगती है। उनमे से प्रासाद का जैसा आकार हो, वैसी जगती बनानी चाहिये ॥२॥

जगती का विस्तार मान—

प्रासादपृथुमानाच्च त्रिगुणा च चतुर्गुणा ।
क्रमात् पञ्चगुणा प्रोक्ता ज्येष्ठा मध्या कनिष्ठिका ॥३॥

प्रासाद के विस्तार के मान से तीन गुणी, चार गुणी अथवा पाच गुणी जगती बनानी चाहिये। उनमे तीनगुणी ज्येष्ठमान की, चार गणी मध्यममान को और पाच गुणी कनिष्ठ-मान की जगती समझनी चाहिये ॥३॥

अपराजितपृच्छा सू० ११५ में भी कहा है कि—

"प्रासादपृथुमानेन द्वि (त्रि ?) गुणा चोत्तमा तथा ।
मध्यमा चतुर्गुणा याधमा पञ्चगुणोच्यते ॥"

प्रासाद के विस्तार से दुगुनी हो तो उत्तम, चार गुनी हो तो मध्यम और पाच गुनी हो तो कनिष्ठ मान की जगती कही जाती है।

कनिष्ठे[1] ज्येष्ठा कनिष्ठा ज्येष्ठे मध्ये च मध्यमा ।
प्रासादे जगती कार्या स्वरूपा लक्षणान्विता ॥४॥

कनिष्ठ मान के प्रासाद मे ज्येष्ठमान की जगती, मध्यम मान के प्रासाद मे मध्यम मान की, और ज्येष्ठमान के प्रासाद मे कनिष्ठ मान की जगती प्रासाद के स्वरूप के लक्षण वाली बनानी। अर्थात् जिस आकार का प्रासाद हो, उसी आकार की जगती बनानी चाहिये ॥४॥

अपराजितपृच्छा में भी लिखा है कि—

"ज्येष्ठा कनिष्ठप्रासादे मध्यमे मध्यमा तथा ।
ज्येष्ठे कनिष्ठा व्याख्याता जगती मानसख्यया ॥" सूत्र० ११५

कनिष्ठमान के प्रासाद मे ज्येष्ठमान की, मध्यममान के प्रासाद मे मध्यममान की और ज्येष्ठमान के प्रासाद मे कनिष्ठ मान की जगती रखनी चाहिये।

रससप्तगुणाख्याता जिने पर्यायसंस्थिते ।
द्वारिकायां च कर्त्तव्या तथैव पुरुषत्रये ॥५॥

पच कल्याणक (च्यवन, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और मोक्ष) वाले अथवा देवकुलिका वाले जिन प्रासाद मे, द्वारिका प्रासाद मे और त्रिपुरुष (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) के प्रासाद मे छहगुणी अथवा सातगुणी जगती रखनी चाहिये ॥५॥

मण्डप की जगती—

मण्डपानुक्रमेणैव सपादांशेन सार्धतः ।
द्विगुणा वायता कार्या सहस्रायतने[2] विधिः ॥६॥

मडप के अनुक्रम से सवायी, डेढी अथवा दुगुनी लवी जगती करनी चाहिये। हजारो प्रासादो मे यही विधि है ॥६॥

(१) कन्यसे कन्यसा ज्येष्ठा", मुद्रित पुस्तकद्वये । (२) 'स्वहस्तायतने' ।

भ्रमणी (परीक्रमा)—

त्रिद्वयेकभ्रमसंयुक्ता ज्येष्ठा मध्या कनिष्ठिका[1] ।
उच्छ्रायस्य त्रिभागेन भ्रमणीनां समुच्छ्रयः ॥७॥

जगती मे तीन भ्रमणी (परिक्रमा) हो तो ज्येष्ठा, दो भ्रमणी हो तो मध्यमा और एक भ्रमणी हो तो कनिष्ठा जगती कहा जाता है। यह भ्रमणी की ऊचाई जगती की ऊचाई के तीसरे २ भाग की होनी चाहिये ॥७॥

"कनिष्ठे भ्रमणी चैका मध्यमे भ्रमणीद्वयम् ।
ज्येष्ठे तिस्रो भ्रमण्यश्च साङ्गोपाङ्गिकसङ्ख्यया ॥" अप० सूत्र० ११५

कनिष्ठ प्रासाद हो तो एक भ्रमणी, मध्यम प्रासाद हो तो दो भ्रमणी, और ज्येष्ठ प्रासाद हो तो तीन भ्रमणी अपने अगोपाग वाली बनानी चाहिये।

जगती के कोने—

चतुष्कोणैस्तथा सूर्य-कोणैर्विंशतिकोणकैः ।
अष्टाविंशति-षट्त्रिंशत्-कोणैः स्युः पञ्च फालनाः ॥८॥

चार कोने वाली, बारह कोने वाली, बीस कोने वाली, अट्ठाईस कोने वाली और छत्तीस कोने वाली, ये पाच प्रकार के कोने वाली जगती हैं ॥८॥

जगती की ऊंचाई का मान—

प्रासादार्द्धार्कहस्तान्ते त्र्यंशा द्वाविंशतिकरे ।
द्वात्रिंशे चतुर्थांशा भूतांशोच्चा शतार्द्धके ॥९॥

एक से बारह हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की जगती प्रासाद के अर्ध भाग की ऊची बनावे। तेरह से बाईस हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की जगती प्रासाद के तीसरे भाग की, तेईस से बत्तीस हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की जगती चौथे भाग की, और तैंतोस से पचास हाथ के प्रासाद की जगती पाचवे भाग की ऊची बनानी चाहिये ॥९॥

पुन.—

एकहस्ते करेणोच्चा सार्द्धद्वयंशाश्चतुष्करे ।
सूर्यजैनशतार्धान्तं क्रमाद् द्वित्रियुगांशकैः ॥१०॥

(१) 'कनीयसी'।

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की जगती एक हाथ, दो हाथ के प्रासाद की जगती डेढ हाथ, तीन हाथ के प्रासाद की जगती दो हाथ, चार हाथ के प्रासाद की जगती ढाई हाथ ऊची बनावे। पीछे पाच से बारह हाथ तक के प्रासाद की जगती दूसरे भाग की अर्थात् प्रासाद से आधी, तेरह से चौबीस हाथ के प्रासाद की जगती तीसरे भाग और पचीस से पचास हाथ तक के प्रासाद की जगती चौथे भाग जितनी ऊची बनावे ॥१०॥

(यह अपराजितपृच्छा का मत है। देखे सूत्र ११५ श्लोक २३ से २६)

जगती के उदय का थर मान—

तदुच्छ्रयं भजेत् प्राज्ञ-स्त्वष्टाविंशतिभिः पदैः ।
त्रिपदो जाड्यकुम्भश्च द्विपदं कर्णकं तथा ॥११॥
पद्मपत्रसमायुक्ता त्रिपदा शिरःपत्रिका[1] ।
द्विपदं खुरकं कुर्यात् सप्तभागं च कुम्भकम् ॥१२॥
कलशस्त्रिपदः प्रोक्तो भागेनान्तरपत्रकम् ।
कपोतालिस्त्रिभागा च पुष्पकण्ठो युगांशकः ॥१३॥
पुष्पकाज्जाड्यकुम्भस्य निर्गमश्चाष्टभिः पदैः ।
कर्णेषु च दिशांपालाः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणाः ॥१४॥

जगती के उदय के अट्ठाईस भाग करे। उनमे से तीन भाग का जाड्यकुम्भ, दो ।को कर्णिका (कणी), तीन भाग का पद्मपत्र (दासा) सहित ग्रासपट्टी, दो भाग का खुरा, सात भाग का कुम्भ, तीन भाग का कलश, एक भाग का अतरपत्र, तीन भाग की कपोताली (केवाल) और चार भाग का पुष्पकठ बनावे। पुष्पकठ से जाड्यकुम्भ का निर्गम आठ भाग रक्खे। जगती के कोने मे पूर्वादि सृष्टि क्रम से दिक्पालो को स्थापित करना चाहिये ॥११ से १४॥

जगती के आभूषण—

प्राकारैर्मण्डिता कार्या चतुर्भिर्द्वारमण्डपैः ।
मकरैर्जलनिष्कासैः सोपानैस्तोरणादिभिः ॥१५॥

जगती को किलो से शोभायमान करे, अर्थात् जगती के चारो तरफ किला बनावे। तथा चारो दिशाओ मे मण्डप वाले चार द्वार बनावे। पानी निकलने के लिये मगर के मुख वाली नाली रक्खे। एव सीढिया और तोरणो से शोभायमान जगती बनाये ॥१५॥

(१) शीर्षपत्रिका।

जगती का उदय और उसके थरो का दिग्दर्शन—
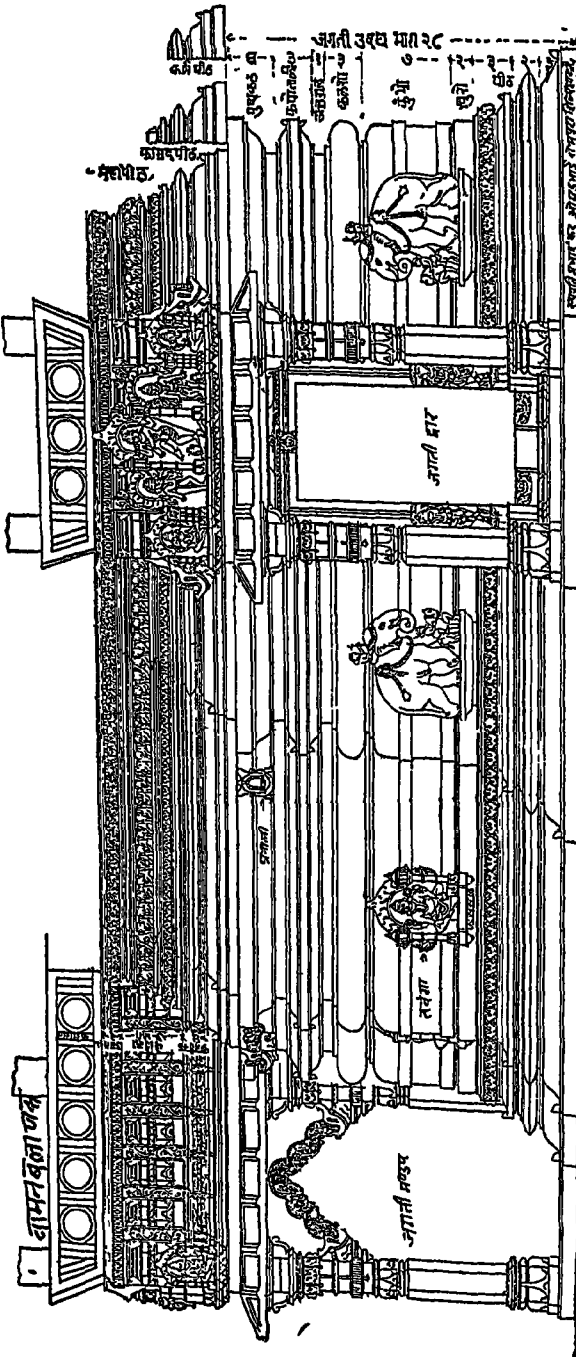
जगती का द्वार और द्वार मंडप तथा जगती के ऊपर प्रासाद की महापीठ

मण्डपाग्रे प्रतोल्यग्रे सोपानं शुण्डिकाकृतिम् ।
तोरणं कारयेत्[1] तस्य पदपदानुसारतः[2] ॥१६॥

मण्डप के आगे और प्रतोली (पोल) के आगे सीढिया बनावे, इसके दोनो तरफ हाथी की आकृति रक्खे । प्रत्येक पद के अनुसार तोरण बनावे ॥१६॥

तोरणस्योभयस्तम्भ-विस्तरं गर्भमानतः ।
भित्तिगर्भप्रमाणेन सममानेन[3] वा भवेत् ॥१७॥

तोरण के दोनो स्तभ के मध्य का विस्तार प्रासाद के गर्भगृह के मान से, अथवा दीवार के गर्भमान से, अथवा प्रासाद के मान से रखा जाता है ॥१७॥

वेदिका पीठरूपा च शोभाभिर्बहुभिर्युता ।
विचित्रं तोरणं कुर्याद् दोला देवस्य तत्र च ॥१८॥

यह जगतीरूप वेदिका प्रासाद की पीठरूप है, इसलिये इसे अनेक प्रकार के रूपो तथा तोरणो से शोभायमान बनाना चाहिये । तोरणो के झूलो मे देवो की आकृतिया बनावे ॥१८॥

देवके वाहन का स्थान---

प्रासादाद्वाहनस्थाने करणीया चतुष्किका ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्च-रससप्तपदान्तरे ॥१९॥

देवो के वाहन रहने के स्थान पर चौकी बनावे । यह चौकी प्रासाद से एक, दो, तीन, चार, पाच, छह अथवा सात पद जितनी दूर बनावे ॥१९॥

देवके वाहन का उदय--

अर्चायामे[4] नवांशे तु पञ्चषट्सप्त भागिकः ।
गुह्यनाभिस्तनान्तं वा त्रिविधो वाहनोदयः ॥२०॥

मूर्त्ति के उदय का नव भाग करे । उनमे से पाच, छह अथवा सात भाग के मान का वाहन का उदय रख । अथवा गुह्य, नाभि या स्तन पर्यन्त वाहन का उदय रक्खे । ये तीन २ प्रकार के वाहन का उदय कहा गया है ॥२०॥

(१) 'त्रिविध कुर्यात्' (२) 'पट्ट पट्टानुसारत' । (३) 'तयोमध्येऽथवा भवेत्' । (४) 'अर्चाया नवमांशे तु,'

देवके वाहन का दृष्टिस्थान--

पादं जानु कटिं याव-द्‌र्चाया वाहनस्य दृक् ।
वृषस्य विष्णुभागान्ते सूर्ये व्योमस्तनान्तकम् ॥२१॥

मूर्त्ति के चरण, जानु अथवा कमर पर्यन्त ऊचाई मे वाहन की दृष्टि रखनी चाहिये। वृषभ (नन्दी) की दृष्टि शिवलिंग के विष्णु भाग तक और सूर्य के वाहन (घोडा) की दृष्टि मूर्त्ति के स्तनभाग तक रखनी चाहिये ॥२१॥

अपराजितपृच्छा में कहा है कि---

"वृषस्य चोच्छ्रय कार्यो विष्णुभागान्तदृष्टिक ॥
पाद जानु कटिं याव-दर्चाया वाहनस्य दृक् ।
गुह्यनाभिस्तनान्त वा सूर्ये व्योमस्तनान्तकम् ॥
विलोमे कुरुते पीडा-मधोदृष्टि सुखक्षयम् ।
स्थान हन्यादूर्ध्वदृष्टि स्वस्थाने मुक्तिदायिका ॥" सूत्र० २०८

वृषभ की ऊचाई शिवलिंग के विष्णुभाग तक दृष्टि रहे, इस प्रकार रक्खे। देवो के वाहन की दृष्टि उनके चरण, जानु अथवा कटि तक रहे तथा गुह्य नाभि और स्तन तक दृष्टि रहे, इस प्रकार ऊचाई रक्खे। इससे विपरीत रखने से दु ख होवेगा। उपरोक्त मान से नीची दृष्टि रहने पर सुख का क्षय होगा और यदि ऊची दृष्टि ही रहेगी तो स्थान भ्रष्ट होगा। इसलिये कहे हुए अपने २ स्थान मे दृष्टि रखने से मुक्तिपद मिलता है।

जिन प्रासाद के मंडपो का क्रम--

जिनाग्रे समोसरणं शुकाग्रे गूढमण्डपः ।
गूढस्याग्रे[1] चतुष्किका तदग्रे नृत्यमण्डपः ॥२२॥

जिन प्रासाद के आगे समवसरण बनाना। शुकनास (कवलीमडप) के आगे गूढ मण्डप, इसके आगे चौकी मडप और इसके आगे नृत्यमडप बनाने चाहिये ॥२२॥

जिनप्रासाद में देवकुलिकाका क्रम--

द्विसप्तत्या द्विपञ्चाशैर्वा चतुर्विंशतितोऽपि वा ।
जिनालये चतुर्दिक्षु सहितं जिनमन्दिरम् ॥२३॥

ऐसा जिनमन्दिर बनाना चाहिये की जिनप्रासाद के चारो तरफ बहत्तर, बावन अथवा चौवीस देवकुलिकाये हो ॥२३॥

(१) 'तस्याग्रे पट्त्रिकाद्या च'।

परमजैन ठक्कुर 'फेरु' विरचित वत्थुसारपयरण के तीसरे प्रकरण मे देवकुलिका का क्रम बतलाया है। जैसे—

बावन जिनालय—

"चउतीसं वाम दाहिण नव पुट्ठि अट्ठ पुरओ अ देहरय।
मूलपासाय एग बावण्णजिनालये एव ॥"

जिनप्रासाद के बायी और दाहिनी ओर सत्रह २, पीछे के भाग में नौ और आगे आठ, ऐसे इकावन देवकुलिका और एक मुख्य प्रासाद मिलकर कुल बावन जिनालय कहा जाता है।

बहत्तर देवकुलिका—

"पणवीस पणवीस दाहिणवामेसु पिट्ठि इग्गार।
दह अग्गे नायव्व इअ बहत्तरि जिणिंदाल ॥"

जिनप्रासाद के बायी और दाहिनी ओर पच्चीस २, पीछे की तरफ ग्यारह और आगे की तरफ दस, ऐसे इकहत्तर देवकुलिका और एक मुख्य प्रासाद मिलकर कुल बहत्तर जिनालय कहा जाता है।

चौवीस देवकुलिका—

"अग्गे दाहिण वामे अट्ठट्ठजिणिंदगेह चउवीस।
मूलसिलागाउ कम पकीरए जगइ-मज्झम्मि ॥"

मुख्य जिनप्रासाद के आगे, दाहिनी और बायी ओर, ऐसे तीन दिशा मे आठ २ देवकुलिका बनाने से कुल चौवीस जिनालय कहा जाता है। ये सब देवकुलिकाए जगती के प्रान्त (सरहद) भाग मे की जाती है।

मण्डपाद् गर्भसूत्रेण वामदक्षिणयोर्दिशोः।
अष्टापदं प्रकर्त्तव्यं त्रिशाला वा बलाणकम् ॥२४॥

मुख्य जिनप्रासाद के गूढ मडप की बायी और दाहिनी ओर अष्टापद, त्रिशाला अथवा बलाणक बनावे। (सामने भी बलाणक बनाया जाता है) ॥२४॥

रथ और मठ का स्थान—

अपरे रथशाला च मठं याम्ये प्रतिष्ठितम्।
उत्तरे रथरन्ध्रं च प्रोक्तं श्रीविश्वकर्मणा ॥२५॥

देवालय के पीछे की तरफ रथशाला, दक्षिण मे मठ (धर्मगुरु का स्थान) और उत्तर मे रथ का प्रवेश द्वार बनावे। ऐसा विश्वकर्मा ने कहा है ॥२५॥

जगती तादृशी कार्या प्रासादो यादृशो भवेत् ।
भिन्नच्छन्दा न कर्त्तव्या प्रासादासनसंस्थिता ॥२६॥

इति प्रासादजगती ।

प्रासाद जिस आकार का हो, उसी आकार की जगती बनानी चाहिये । भिन्न आकार की नही बनानी चाहिये । क्योकि यह प्रासाद का आसनरूप है ॥२६॥

अन्य प्रासाद—

अग्रतः पृष्ठतश्चैव वामदक्षिणयोर्दिशोः[1] ।
प्रासादं कारयेदन्य नाभिवेधविवर्जितम् ॥२७॥

मुख्य प्रासाद के आगे, पीछे, बायी ओर दाहिनी ओर दूसरे प्रासाद बनाये जाय, वे सब नाभिवेध (प्रासाद के गर्भ) को छोडकर के बनावे ॥२७॥

शिवलिंग के आगे अन्य देव—

लिङ्गाग्रे तु न कर्त्तव्या अर्चारूपेण देवताः ।
प्रभानष्टा न भोगाय यथा तारा दिवाकरे ॥२८॥

शिवलिंग के सामने कोई भी देव पूजन के रूप मे स्थापित करना नही चाहिये । क्योकि जैसे सूर्य के तेज से ताराओ की प्रभा नष्ट होती है, वैसे दूसरे देवो की प्रभा नष्ट होती है । इसलिये वे देव भोगादि सुख सपत्ति नही दे सकते ॥२८॥

देव के सम्मुख स्वदेव—

शिवस्याग्रे शिव कुर्याद् ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽग्रतः ।
विष्णोरग्रे भवेद् विष्णु-र्जिने[2] जिनो रवौ रविः ॥२९॥

शिवके सामने शिव, ब्रह्मा के सामने ब्रह्मा, विष्णु के सामने विष्णु, जिनदेव के सामने जिनदेव और सूर्य के सामने सूर्य, इस प्रकार आपस मे स्वजातीय देव स्थापित किया जाय तो दोष नही माना जाता ॥२९॥

"चण्डिकाग्रे भवेन्माता यक्ष क्षेत्रादिभैरव ।
ज्ञेयास्तेषामभिमुखे ये येषा च हितैषिण ॥" अप० सू० १०८

चडिका आदि देवी के सामने मातृदेवता, यक्ष, क्षेत्रपाल और भैरव आदि देव स्थापित किये जाये तो दोष नही है । क्योकि वे आपस मे हितैषी हैं ।

(१) 'तोऽपि वा' । (२) जिने जैनो ।

परस्पर दृष्टिवेध—

ब्रह्मा विष्णुरेकनाभि-र्द्वाभ्यां[1] दोषो न विद्यते ।
शिवस्याग्रेऽन्यदेवस्य दृष्टिवेधे महद्भयम् ॥३०॥

ब्रह्मा और विष्णु ये दोनो देव एक नाभि मे हो अर्थात् उनका देवालय आपस मे सामने हो तो दोष नही है । परतु शिवके सामने दूसरे देवका दृष्टिवेध होता हो तो बडा भय उत्पन्न होता है ॥३०॥

दृष्टिवेध का परिहार—

प्रसिद्धराजमार्गस्य प्राकारस्यान्तरेऽपि वा ।
स्थापयेदन्यदेवांश्च तत्र दोषो न विद्यते ॥३१॥

शिवालय और अन्य देवो के देवालय, इन दोनो के बीच मे प्रसिद्ध राजमार्ग (आम रास्ता) हो, अथवा दीवार हो तो दोष नही है ॥३१॥

शिवस्नानोदक—

शिवस्नानोदकं गूढ-मार्गे चण्डमुखे क्षिपेत् ।
दृष्टं न लङ्घयेत्तत्र[2] हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥३२॥

शिव का स्नानजल गुप्त मार्ग से चण्डगण के मुख मे गिरे, इस प्रकार स्नान का जल निकलने की गुप्त नाली रखना चाहिये । दिखते हुये स्नान जल का उल्लघन (लाघना) नही करना चाहिये । क्योकि स्नान जल का उल्लघन करने से पूर्वकृत पुण्य का नाश होता है ॥३२॥ *
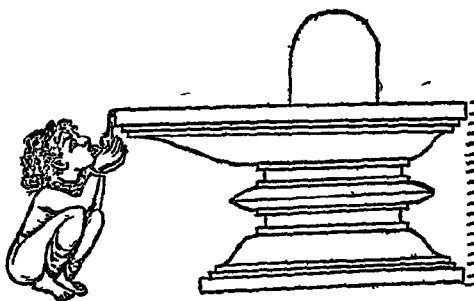
चडगण शिवस्नानोदक पी रहा है

(१) जिने । (२) स्नान ।

* चडनाथ गणदेव का स्वरूप अपराजित पृच्छा सूत्र २०८ में लिखा है कि-स्थूल शरीर वाला, भयकर मुख वाला, ऊर्ध्वासन बैठा हुआ और दोनो हाथ से स्नान जल पीता हुआ, ऐसा स्वरूप बना करके पीठिका के जल स्थान के नीचे स्थापन किया जाता है, जिससे स्नान का जल उसके मुख में होकर बाहर गिरे । इस स्नान जल के उच्छिष्ट होजाने पर उसका यदि कभी उल्लघन हो जाय तो दोष नही माना जाता, ऐसा शिल्पियो का कहना है ।

देवो की प्रदक्षिणा—

एका चण्ड्या रवौ सप्त तिस्रो दद्याद् विनायके ।
चतस्रो वासुदेवस्य[1] शिवस्यार्धा प्रदक्षिणा ॥३३॥

चडीदेवी को एक, सूर्य को सात, गणेश को तीन, विष्णु को चार और महादेव को आधी प्रदक्षिणा देनी चाहिये ॥३३॥

अग्रतो जिनदेवस्य स्तोत्रमन्त्रार्चनादिकम् ।
कुर्यान्न दर्शयेत् पृष्ठं सम्मुख द्वारलङ्घनम् ॥३४॥

जिनदेव के आगे स्तोत्र, मत्र और पूजन आदि करे। परतु बाहर निकलते समय अपनी पीठ नही दिखावे, सम्मुख ही पिछले पैर चलकर द्वार का उल्लघन करे ॥३४॥

जलमार्ग (पनाला)—

पूर्वापरमुखे द्वारे प्रणालं शुभमुत्तरे ।
इति शास्त्रविचारोऽय-मुत्तरास्या[2] न देवताः ॥३५॥

पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वार वाले प्रासाद की नाली (पनाला) उत्तर दिशा मे रखना शुभ है। उत्तर दिशा मे (दक्षिणाभिमुख) किसी भी देव की स्थापना नही करे ऐसा शास्त्र का नियम है ॥३५॥

अपराजितपृच्छा में लीखा है कि—

"पूर्वापर यदा द्वार प्रणाल चोत्तरे शुभम् ।
प्रशस्त शिवलिङ्गाना-मिति शास्त्रार्थनिश्चय ॥" सूत्र० १०८

पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वार वाले प्रासाद की नाली उत्तर दिशा मे रखना शुभ है। शिवलिंग के लिये तो यह नियम विशेष प्रशसनीय है। ऐसा शास्त्र का नियम है।

"अर्चाना मुखपूर्वाणा प्रणाल वामत शुभम् ।
उत्तरास्या न विज्ञेया अर्चारूपेण देवता ॥' सूत्र० १०८

यदि देवो का मुख पूर्व दिशा के सामने हो तो उसकी नाली बायी ओर रखना शुभ है। उत्तर दिशा मे दक्षिणाभिमुख किसी भी देव की मूर्त्ति स्थापित नही करे।

---

(१) विष्णुदेवस्य ।   (२) मुत्तरेशा ।

"जैनमुक्ता समस्ताश्च याम्योत्तरक्रमे स्थिता ।
वामदक्षिणयोगेन कर्त्तव्य सर्वकामदम् ॥" अ० सूत्र १०८

जिनदेव के प्रासाद दक्षिण और उत्तर दिशा के द्वार वाले भी बनाये जाते हैं। उनकी नाली वाम दक्षिणयोग से अर्थात् दक्षिण दिशा के सामने द्वार वाले अर्थात् दक्षिणाभिमुख प्रासाद की नालो बायी ओर तथा उत्तर दिशा के सामने द्वार वाले (उत्तराभिमुख) प्रासाद की नाली दाहिनी ओर बनावे, अर्थात् उत्तर या दक्षिण दिशा के द्वार वाले प्रासाद की नाली पूर्व दिशा मे रक्खे। यह सब इच्छापूर्ण करने वाली है।

वास्तुमंजरी में भी कहा है कि—

"पूर्वापरास्यप्रासादे नाल सौम्ये प्रकारयेत् ।
तत्पूर्वे याम्यसौम्यास्ये मण्डपे वामदक्षिणे ॥"

पूर्व और पश्चिमाभिमुख प्रासाद की नाली उत्तर दिशा मे, उत्तर और दक्षिणाभिमुख प्रासाद की नाली पूर्व दिशा मे रक्खे। मडप मे स्थापित किये देवो की नाली बायी ओर दाहिनी ओर रखनी चाहिये।

मण्डपस्थित देवो की नाली—

मण्डपे ये स्थिता देवा-स्तेषां वामे च दक्षिणे ।
प्रणालं कारयेद् धीमान् जगत्या च चतुर्दिशम् ॥३६॥

मडप में जो देव स्थापित हो, उनके स्नान जल निकलने की नाली बायी ओर दाहिनी ओर रखना चाहिये, अर्थात् मूलनायक के बायी ओर बैठे हुए देवो की नाली बायी ओर तथा दाहिनी ओर बैठे हुए देवो की नाली दाहिनी ओर बनावे। जगती के चारो दिशा में नाली बनावे ॥३६॥

"वामे वाम प्रकुर्वीत दक्षिणे दक्षिण शुभम् ।
मण्डपादिषु प्रतिमा येषु युक्त्या विधीयते ॥" अप० सू० १०८

मडप मे जो देव बैठे हो, उनमें मूलनायक के बायी ओर के देवो की नाली बायी ओर तथा दाहिनी ओर के देवो की नाली दाहिनी ओर बनाना शुभ है।

पूर्व और पश्चिमाभिमुखदेव—

पूर्वापरास्यदेवानां कुर्यान्नो दक्षिणोत्तरम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवार्केन्द्र-गुहाः पूर्वापराङ्मुखाः ॥३७॥

पूर्व और पश्चिम दिशाभिमुख वाले देवो का मुख दक्षिण और उत्तर दिशा मे नही रखना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र और कार्त्तिकेय, ये देव पूर्व और पश्चिम मुख वाले है। इसलिये इनका मुख पूर्व अथवा पश्चिम दिशा मे रहे, इस प्रकार की स्थापना करनी चाहिये ॥३७॥

नगराभिमुखाः श्रेष्ठा मध्ये बाह्ये च देवताः ।
गणेशो धनदो लक्ष्मीः पुरद्वारे सुखावहाः ॥३८॥

नगर के मध्य और बाहर स्थापित किये हुए देवो का मुख नगर के सम्मुख रखना श्रेष्ठ है। गणेश, कुबेर और लक्ष्मीदेवी, उन्हे नगर के दरवाजो पर स्थापित करना सुखदायक है ॥३८॥

दक्षिणाभिमुखदेव—

विघ्नेशो भैरवश्चण्डी नकुलीशो ग्रहास्तथा ।
मातरो धनदश्चैव शुभा दक्षिणदिङ्मुखाः ॥३९॥

गणेश, भैरव, चण्डी, नकुलीश, नवग्रह, मातृदेवता और कुबेर, इन देवो को दक्षिणाभिमुख स्थापित करे तो शुभफल देनेवाले है ॥३९॥

विदिशाभिमुखदेव—

नैर्ऋत्याभिमुखः कार्यो हनुमान् वानरेश्वरः ।
अन्ये विदिङ्मुखा देवा न कर्त्तव्याः कदाचन ॥४०॥

इति देवाना दृष्टिदोषदिग्विभाग ।

वानरेश्वर हनुमानजी का मुख नैर्ऋत्य दिशाभिमुख रक्खे। बाकी दूसरे किसी भी देव का मुख विदिशा मे कभी भी नही रखना चाहिये ॥४०॥

सूर्य आयतन—

सूर्याद् गणेशो विष्णुश्च चण्डी शम्भुः प्रदक्षिणे ।
भानोर्गृहे ग्रहास्तस्य गणा द्वादश मूर्त्तयः ॥४१॥

इति सूर्यायतनम् ।

सूर्य के पचायतन देवो मे—मध्य मे सूर्य, उसके प्रदक्षिण क्रम से गणेश, विष्णु, चण्डीदेवी और महादेव को स्थापित करे। तथा नवग्रह और बारह गणो की मूर्त्तिया भी स्थापित करे ॥४१॥

गणेश आयतन—

गणेशस्य गृहे तद्वच्चण्डी शम्भुर्हरी रविः ।
मूर्त्तयो द्वादशान्येऽपि गणाः स्थाप्या हिताश्च ये ॥४२॥

इति गणेशायतनम् ।

गणेश के पचायतन देवो मे—मध्य मे गणेश, उसके पीछे प्रदक्षिण क्रम से चडीदेवी, महादेव, विष्णु और सूर्य की स्थापना करे। तथा बारह गणो की मूर्त्तिया भी स्थापित करना हित कारक है ॥४२॥

विष्णु आयतन—

विष्णोः प्रदक्षिणेनैव गणेशार्काम्बिकाशिवाः ।
गोप्यस्तस्यावतारस्य मूर्त्तयो द्वारिका तथा ॥४३॥

इति विष्णवायतनम् ।

विष्णु के पचायतन देवो मे—मध्य मे विष्णु को स्थापित करके उसके प्रदक्षिण क्रमसे गणेश, सूर्य, अम्बिका और शिव को स्थापित करे। तथा गोपियो की और अवतारो की मूर्त्तिया तथा द्वारिका नगरी को स्थापित करे ॥४३॥

चण्डी आयतन—

चण्ड्याः शम्भुर्गणेशोऽर्कों विष्णुः स्थाप्यः प्रदक्षिणे ।
मातरो मूर्त्तयो देव्या योगिन्यो भैरवादयः ॥४४॥

इति चण्डिकायतनम् ।

चडी देवी के पचायतन देवो मे—मध्य मे चडी देवी की स्थापना करके, उसके प्रदक्षिण क्रम से महादेव, गणेश, सूर्य और विष्णु को स्थापित करे। तथा मातृदेवी, चौसठ योगिनी आदि देवियो की और भैरव आदि देवो की भी मूर्त्तिया स्थापित करे ॥४४॥

शिव पञ्चायतन—

शम्भोः सूर्यो गणेशश्च चण्डी विष्णुः प्रदक्षिणे ।
स्थाप्याः सर्वे शिवस्थाने दृष्टिवेधविवर्जिताः ॥४५॥

इति शिवायतनम् ।

शिव के पञ्चायतन देवो मे-मध्य मे शिव को स्थापित करके, उसके प्रदक्षिण क्रम से सूर्य, गणेश, चण्डी और विष्णु को स्थापित करे। परतु उनका दृष्टिवेध अवश्य छोड देवे ॥४५॥

त्रिदेव स्थापना क्रम—

रुद्रस्त्रिपुरुषे मध्ये रुद्राद्वामगतो हरिः ।
दक्षिणाङ्गे भवेद् ब्रह्मा विपर्यासे भयावहः ॥४६॥

त्रिपुरुष प्रासाद मे महादेव को मध्य मे स्थापित करे। उसकी बायी ओर विष्णु और दाहिनी ओर ब्रह्मा को स्थापित करे। इससे विपरीत स्थापन करेगे तो भयकारक होगे ॥४६॥

त्रिदेवो का न्यूनाधिक मान—

रुद्रवक्त्रत्रिभागोनो हरिरर्द्धे पितामहः ।
तत्तुल्या पार्वतीदेवी सुखदा सर्वकामदा ॥४७॥

इति त्रिपुरुषन्यास ।

इति श्री सूत्रधार मण्डनविरचिते वास्तुशास्त्रे प्रासादमण्डने जगती-
दृष्टिदोषायतनाधिकारे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

शिवमुख का एक तृतीयाश भाग कम करके दो तृतीयाश भाग तक विष्णु की ऊचाई रक्खे। और विष्णु के मुखार्द्ध भाग तक ब्रह्मा की ऊचाई रक्खे। ब्रह्मा की ऊचाई के बराबर पार्वती देवी की ऊचाई रक्खे। यह नियम सुखदायक और सब इच्छितफल देनेवाला है ॥४७॥

अपराजित पृच्छा में भी कहा है कि—

"ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र-स्त्वेकस्मिन् वा पृथग्गृहे ।
भूयो न्यूनन्यूनतश्च रुद्रो हरि पितामह ॥
अशोनश्च हराद्विष्णु-र्विष्णोरर्धं पितामह ।
वामदक्षिणयोगेन मध्ये रुद्र च स्थापयेत् ॥
सस्थाप्य च शुभ कर्त्ता नृपाद्या. सुजना प्रजा ।
प्रकर्त्तव्य त्यज विप्राद्या समे यान्ति समन्वितम् ?॥
ताभ्या ह्रस्वो यदा रुद्र क्षयो राज्ञि जने मृति ।
राष्ट्रक्षोभो नृपयुद्ध ब्रह्मविष्णू समौ यदा ॥
अनावृष्टिर्जने मारिर्ब्रह्मह्रस्वे जनार्दने ।
विपर्यये नृपाद्याश्च अस्वस्था भ्रमति प्रजा ॥" सूत्र १३६

त्रिपुरुष प्रासाद मे ब्रह्मा विष्णु और महादेव ये तीनो देव एक ही गर्भगृह मे या अलग २ गर्भगृह मे स्थापित करना हो तो महादेव से न्यून विष्णु और विष्णु से न्यून ब्रह्मा की ऊचाई रखनी चाहिये। महादेव से एक भाग न्यून विष्णु और विष्णु से आधा भाग न्यून ब्रह्मा की ऊचाई रखनी चाहिये। मध्य मे महादेव, उसकी बायी ओर विष्णु और दाहिनी ओर ब्रह्मा को स्थापित करने से राजा और प्रजा का कल्याण होता है। विष्णु और ब्रह्मा की ऊचाई से महादेव की ऊचाई कम हो तो राजाओ का विनाश और मनुष्यो का मरण होता है। ब्रह्मा और विष्णु की ऊचाई बराबर हो तो देश मे उत्पात और राजाओ का युद्ध होता है। ब्रह्मा की ऊचाई से विष्णु की ऊचाई कम हो तो अनावृष्टि और मनुष्यो मे महामारी आदि रोग की उत्पत्ति होती है। इसलिये कहे हुए मानके अनुसार ही इन्हे बनाना चाहिये, विपरीत करने से राजा और प्रजा अस्वस्थ रहते है।

इति श्री प० भगवानदास जैन विरचित प्रासाद मण्डन के
दूसरे अध्याय की सुबोधिनी नाम्नी भाषा टीका समाप्त ॥२॥

अथ प्रासादमण्डने तृतीयोऽध्यायः

प्रासादधारिणी खरशिला—

अतिस्थूला[1] सुविस्तीर्णा प्रासादधारिणी शिला ।
अतीवसुदृढा कार्या इष्टिकाचूर्णधारिभिः[2] ॥१॥

प्रासाद को धारण करनेवाली जो आधार शिला है, यह जगती के दासा के ऊपर और प्रथम भिट्ट के नीचे जो बनायी जाती है, उसको खरशिला कहते है। वह अतिस्थूल और अच्छी तरह विस्तारवाली बनावे, तथा ईंट, चूना और पानी से बहुत मजबूत बनावे ॥१॥

खरशिला का मान—

"प्रासादच्छन्दमस्योर्ध्वे दृढखरशिलोत्तमा ।
एकहस्ते पादहस्त पञ्चान्तेऽङ्गुलवृद्धित ॥
अर्धाङ्गुल तदूर्ध्वे तु नवान्त सुदृढोत्तमा ।
पादवृद्धि पुनर्दद्याद् हस्ते हस्ते तथा पुन ॥
हस्ताना त्रिंशतिर्याव–दर्द्धपादा तदूर्ध्वत ।
विंशत्यङ्गुलपिण्डा च शतार्द्धे तु खरा शिला ॥" अप० सू० १२३

प्रासादतल के ऊपर बहुत मजबूत और उत्तम खरशिला बनावे। वह एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद मे छ अगुल के उदयवाली बनावे। पीछे दो से पाच हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ एक २ अगुल, छह से नव हाथ तक आधा २ अगुल, दस से तीस हाथ तक पाव २ अगुल और इक्तीस से पचास हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद मे प्रत्येक हाथ एक २ जव बढा करके बनावे। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद के लिये लगभग वीस अगुल के ऊचाई की खरशिला होनी चाहिये। क्षीरार्णव अध्याय १०२ मे कहा है कि—

"प्रथमभिट्टस्याधस्तात् पिण्डो वर्ण (कूर्म ?) शिलोत्तमा ।
तस्य पिण्डस्य चार्धेन खरशिलापिण्डमेव च ॥"

प्रथम भिट्ट के नीचे कूर्मशिला की मोटाई से अर्धमान की खरशिला की मोटाई रक्खे ।

---

(१) अतिस्थुलातिविस्तीर्णा । (२) 'इष्टका' ।

भिट्टमान—

शिलोपरि भवेद् भिट्ट-मेकहस्ते युगाङ्गुलम् ।
अर्धाङ्गुला भवेद् वृद्धि-र्यावद्धस्तशतार्द्धकम् ॥२॥

खरशिला के ऊपर भिट्ट नाम का थर बनावे। एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद को चार अंगुल के उदय का बनावे। पीछे दोसे पचास हाथ तक के प्रासाद के लिये प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढा करके बनावे ॥२॥

प्रकारन्तर से भिट्टमान—

अङ्गुलेनांशहीनेन अर्द्धेनार्द्धेन च क्रमात् ।
पञ्चदिग्विंशतिर्याव-च्छतार्द्धं च विवर्द्धयेत् ॥३॥

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद को चार अंगुल का भिट्ट बनावे। पीछे दो से पाच हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ एक २ अंगुल, छह से दस हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ पौन २ अंगुल, ग्यारह से बीस हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल और इक्कीस से पचास हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ पाव २ अंगुल बढा करके भिट्ट का उदय रक्खे ॥३॥

यही मत क्षीरार्णव, अपराजित पृच्छा वास्तुविद्या और वास्तुराज आदि शिल्पग्रन्थो मे दिया गया है।

भिट्टका निर्गम—

एकद्वित्रीणि भिट्टानि हीनहीनानि कारयेत् ।
स्वस्वोदयप्रमाणस्य चतुर्थांशेन निर्गमः ॥४॥

इति भिट्टमानम् ।

उपरोक्त कथन के अनुसार भिट्टका जो उदयमान आया हो, उसमे एक, दो अथवा तीन भिट्ट बना सकते है। परन्तु ये एक दूसरे से हीनमान का बनाना चाहिये। राजसिंहकृत वास्तु-राज मे कहा है कि—"युगाशह्लख द्वितीय तदर्धोच्च तृतीयकम् ।" अर्थात् प्रथम भिट्ट से दूसरा भिट्ट पौन भाग का, और तीसरा भिट्ट आधा उदय में रक्खे। तथा अपने २ उदय का चौथा भाग बराबर निर्गम रक्खे ॥४॥

क्षीरार्णवमें कहा है कि—

"प्रथम निर्गम कार्यं चतुर्थांशे महामुने । ।
द्वितीय तृनायाशेन तृतीय च तदर्धत ॥"

प्रथम भीट का निर्गम अपने चौथे भाग, दूसरे भिट्टका निगम अपने तीसरे भाग और तीसरे भिट्टका निर्गम अपने उदय से आधा रक्खे।

पीठ का उदय मान—

पीठमर्धं त्रिपादांशै-रेकद्वित्रिकरे गृहे ।
चतुर्हस्ते त्रिसार्धांशं पादांश पञ्चहस्तके ॥५॥
दशविंशतिषट्त्रिंश-च्छतार्धं हस्तकावधिः ।
वृद्धिर्वेदत्रियुग्मेन्दु-संख्या स्यादङ्गुलैः क्रमात् ॥६॥
पञ्चाशं हीनमाधिक्य-मेकैकं तु त्रिधा पुनः ।

भीट के ऊपर पीठ बनाया जाता है, उसका उदयमान-एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की पीठका उदय बारह अगुल, दो हाथ के प्रासाद की पीठका उदय सोलह अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद की पीठ अठारह अगुल, चार हाथ के प्रासाद की पीठ अपने साढे तीन भाग (साढे सत्ताईश अगुल) की, पाच हाथ के प्रासाद की पीठ अपने चौथे भाग (तीस अगुल) की उदय मे बनावे। छह से दस हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ चार २ अगुल, ग्यारह से बीस हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ तीन २ अगुल, इक्कीस से छत्तीस हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ दो २ अगुल और सेतीस से पचास हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ एक २ अगुल बढा करके बनावे। इस प्रकार पचास हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की पीठ का उदय पाच हाथ और छह अगुल होता है।

उदय का पाचवा भाग उदय मे कम करे तो कनिष्ठ मान की और बढा देवे जो ज्येष्ठ मान की पीठ होती है। ज्येष्ठ मान की पीठ का पांचवा भाग ज्येष्ठ पीठ मे बढावे तो ज्येष्ठ ज्येष्ठ, कम करे तो ज्येष्ठ कनिष्ठ, मध्यम मान के पीठ का पाचवा भाग मध्यम मे बढावे तो ज्येष्ठ मध्यम और कम करे तो कनिष्ठ मध्यम, कनिष्ठ मान की पीठ का पाचवा भाग कनिष्ठ पीठ मे बढावे तो ज्येष्ठ कनिष्ठ और कम करे तो कनिष्ठ कनिष्ठ मान की पीठ होती है। ऐसे नव प्रकार से पीठ का उदयमान समझना चाहिये ॥६॥

वास्तुमंजरी में कहा है कि—

"प्रासादस्य समुत्सेध एकविंशतिभाजिते ।
पञ्चादिनवभागान्ते पञ्चधा पीठसमुच्छ्रय ॥"

प्रासाद की (मडोवरकी) ऊचाई का इक्कीस भाग करे। इनमे से पाच, छह, सात, आठ अथवा नव भाग के मान का पीठ का उदय रक्खें। ये पाच प्रकार के पीठ के उदय है।

यह मत अपराजित पृच्छा सूत्र १२३ श्लोक ७ मे भी लीखा है। तथा श्लोक २५ से २६ तक जो पीठ का मान लिखा है, उसमे चार हाथ के प्रासाद की पीठ अर्द्ध, तृतीयाश और चतुर्थांश मान की लिखा है।

क्षीरार्णव मत से पीठमान—

"एकहस्ते तु प्रासादे पीठ वै द्वादशाङ्गुलम् ।
हस्तादिपञ्चपर्यन्त हस्ते हस्ते पञ्चाङ्गुला ॥
पञ्चोर्ध्वं दशपर्यन्त वृद्धिर्वेदाङ्गुला भवेत् ।
दशोर्ध्वं विंशयावत्तु हस्ते हस्ते त्रयाङ्गुला ॥
विंशोर्ध्वं षट्त्रिंशान्त वृद्धिस्तु चाङ्गुलद्वया ।
षट्त्रिंशोर्ध्वं शतार्धान्त हस्तहस्तैकमङ्गुला ॥
पञ्चमांशे ततो हीन कनिष्ठ शुभलक्षणम् ।
पञ्चमांशेऽधिक चैव ज्येष्ठ त्वष्ट्रा च भाषितम् ॥" अध्याय ३

इसका अर्थ श्लोक पाच और छह के बराबर है। सिर्फ दोसे पाच हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ पाच २ अगुल बढा करके बनाना लिखा है, यही विशेष है। इस मत से पचास हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की पीठ का उदय पाच हाथ और आठ अगुल का होता है।

अपराजितपृच्छा के मतसे पीठ का उदयमान—

"एकहस्ते तु प्रासादे पीठ वै द्वादशाङ्गुलम् ।
द्वयष्टाङ्गुल द्विहस्ते च त्रिहस्तेऽष्टादशाङ्गुलम् ॥
अर्द्ध पाद त्रिभाग वा त्रिविध परिकल्पयेत् ।
त्र्यशेनार्धेन पादेन चतुर्हस्ते सुरालये ॥
पाद पीठोच्छ्रय कार्यं प्रासादे पञ्चहस्तके ।
पञ्चोर्ध्वं दशपर्यन्त रसांश हस्तवृद्धये ॥
ततो हस्ते चाष्टमांशा वृद्धिः स्याद् द्वाविंशावधि ।
षट्त्रिंशदन्त वृद्धिस्तु हस्ते वै द्वादशांशिका ॥
चतुर्विंशत्यशिका तदूर्ध्वं यावच्छतार्धकम् ।
मध्ये न्यूनेऽधिके पञ्चमांशे ज्येष्ठ कनिष्ठकम् ॥
त्रिज्येष्ठमिति च ख्यात त्रिमध्य त्रिकनिष्ठकम् ।
तस्याभिधान वक्ष्येऽह-मुदित नवधोच्छ्रयात् ॥" सूत्र० १२३

'एक हाथ के प्रासाद को बारह अगुल, दो हाथ के प्रासाद को सोलह अगुल, तीन हाथ के प्रासाद को अठारह अगुल पीठ का उदय रक्खे। अर्थात् एक हाथ के अर्द्ध भाग, दो हाथ के तीसरे भाग और चार हाथ के चौथे भाग पीठ का उदय रक्खे। चार हाथ के प्रासाद को अर्द्ध भाग (४८ अगुल), तीसरे भाग (३२ अगुल) अथवा चौथे भाग (२४ अगुल) पीठ का उदय रखना चाहिये। पाच हाथ के प्रासाद को चौथे भाग (३० अगुल), छह से दस हाथ के प्रासाद को प्रत्येक हाथ चार २ अंगुल, ग्यारह से बाईस हाथ के प्रासाद को तीन २ अगुल, तेईस से छत्तीस हाथ के प्रासाद को दो दो अगुल और सेतीस से पचास हाथ के प्रासाद को

क्षीरार्णव मत से पीठमान—

"एकहस्ते तु प्रासादे पीठ वै द्वादशाङ्गुलम् ।
हस्तादिपञ्चपर्यन्त हस्ते हस्ते पञ्चाङ्गुला ॥
पञ्चोर्ध्व दशपर्यन्त वृद्धिर्वेदाङ्गुला भवेत् ।
दशोर्ध्वं विंशयावत्तु हस्ते हस्ते त्र्याङ्गुला ॥
विंशोर्ध्वं षट्त्रिंशान्त वृद्धिस्तु चाङ्गुलद्वया ।
षट्त्रिंशोर्ध्व शतार्धान्त हस्तहस्तैकमङ्गुला ॥
पञ्चमांशे ततो हीन कनिष्ठ शुभलक्षणम् ।
पञ्चमांशेऽधिक चैव ज्येष्ठ त्वष्ट्रा च भाषितम् ॥" अध्याय ३

इसका अर्थ श्लोक पाच और छह् के बराबर है। सिर्फ दोसे पाच हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ पाच २ अगुल बढा करके बनाना लिखा है, यही विशेष है। इस मत से पचास हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की पीठ का उदय पाच हाथ और आठ अगुल का होता है।

अपराजितपृच्छा के मतसे पीठ का उदयमान—

"एकहस्ते तु प्रासादे पीठ वै द्वादशाङ्गुलम् ।
द्व्यष्टाङ्गुल द्विहस्ते च त्रिहस्तेऽष्टादशाङ्गुलम् ॥
अर्द्ध पाद त्रिभाग वा त्रिविध परिकल्पयेत् ।
त्र्यशेनार्धेन पादेन चतुर्हस्ते सुरालये ॥
पाद पीठोच्छ्रय कार्यं प्रासादे पञ्चहस्तके ।
पञ्चोर्ध्वं दशपर्यन्त रसाश हस्तवृद्धये ॥
ततो हस्ते चाष्टमाशा वृद्धि स्याद् द्वाविंशावधि ।
षट्त्रिंशदन्त वृद्धिस्तु हस्ते वै द्वादशाशिका ॥
चतुर्विंशत्यशिका तदूर्ध्वं यावच्छतार्धकम् ।
मध्ये न्यूनेऽधिके पञ्चमाशे ज्येष्ठ कनिष्ठकम् ॥
त्रिज्येष्ठमिति च ख्यात त्रिमध्य त्रिकनिष्ठकम् ।
तस्याभिधान वक्ष्येऽह-मुदित नवधोच्छ्रयात् ॥" सूत्र० १२३

एक हाथ के प्रासाद को बारह अगुल, दो हाथ के प्रासाद को सोलह अगुल, तीन हाथ के प्रासाद को अठारह अगुल पीठ का उदय रक्खे। अर्थात् एक हाथ के अर्द्ध भाग, दो हाथ के तीसरे भाग और चार हाथ के चौथे भाग पीठ का उदय रक्खे। चार हाथ के प्रासाद को अर्द्ध भाग (४८ अगुल), तीसरे भाग (३२ अगुल) अथवा चौथे भाग (२४ अगुल) पीठ का उदय रखना चाहिये। पाच हाथ के प्रासाद को चौथे भाग (३० अगुल), छह से दस हाथ के प्रासाद को प्रत्येक हाथ चार २ अगुल, ग्यारह से बाईस हाथ के प्रासाद को तीन २ अगुल, तेईस से छत्तीस हाथ के प्रासाद को दो दो अगुल और सेतीस से पचास हाथ के प्रासाद को

प्रत्येक हाथ एक २ अगुल बढा करके पीठ का उदय रखना चाहिये। यह पीठ की उचाई का मध्यम मान माना गया है। इसमे इसका पाचवा भाग बढावे तो ज्येष्ठमान और घटावे तो कनिष्ठ मान होता है। ज्येष्ठ मान का पाञ्चवा भाग ज्येष्ठ मे बढावे तो ज्येष्ठ ज्येष्ठ, घटावे तो ज्येष्ठ कनिष्ठ, मध्यम का पाचवा भाग मध्यम मे बढावे तो ज्येष्ठ मध्यम घटावे तो कनिष्ठ मध्यम, कनिष्ठ मान का पाचवा भाग कनिष्ठ मे बढावे तो ज्येष्ठ कनिष्ठ और घटावे तो कनिष्ठ कनिष्ठ, इस प्रकार पीठ के उदय का नव भेद होते है। इन नव भेदो के नाम बतलाते है—

"शुभद सर्वतोभद्र पद्मक च वसुन्धरम्।
सिंहपीठ तथा व्योम गरुड हसमेव च॥
वृषभ यद्भवेत् पीठ मेरोराधारकारणम्।
पीठमानमिति स्यात प्रासादे आदिशोभया॥" सूत्र० १२३

शुभद, सर्वतोभद्र, पद्मक, वसुन्धर, सिंहपीठ, व्योम, गरुड, हस और वृषभ ये नव नाम पीठोदय के है। इनमे वृषभपीठ मेरुप्रासाद का आधार रूप है।

दि० वसुनंदीकृत प्रतिष्ठाशार में पीठ का मान—

"प्रासादविस्तरार्द्धेन स्वोच्छ्रित पीठमुत्तमम्।
मध्यम पादहीन स्याद् उत्तमार्द्धेन कन्यसम्॥"

प्रासाद के विस्तार के अर्द्धमान का पीठ का उदय रक्खे। इसे उत्तम मान की पीठ माना है। इस उत्तम मान की पीठ के उदय का चार भाग करके उनमे से तीन भाग के मान का पीठ का उदय रक्खे तो मध्यम मान की और दो भाग के मान का पीठ का उदय रक्खे तो कनिष्ठ मान की पीठ माना है।

पीठोदय का थरमान—

त्रिपञ्चाशत् समुत्सेधे द्वाविंशत्यंशनिर्गमे॥७॥
नवांशो जाडयकुम्भश्च सप्तांशा[1] कर्णिका[2] भवेत्।
सान्तराल कपोतालिः सप्तांशा ग्रासपट्टिका॥८॥
सूर्यदिग्वसुभागैश्च गजवाजिनराः क्रमात्।
वाजिस्थानेऽथवा कार्यं स्वस्वदेवस्य वाहनम्॥९॥

पीठ का जो उदयमान आया हो, उसमे ५३ भाग करे। उनमे से बाईस भाग के मान का पीठ

प्रासाद की महापीठ
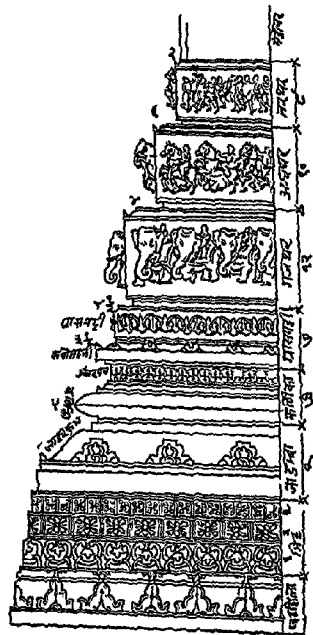
(१) सप्तांश। (२) कणक।

का निर्गम रक्खें। उदय के तरेपन भाग मे से नव भाग का जाड्यकुम्भ, सात भाग की अंतरपत्र के साथ कर्णिका, सात भाग की कपोतालि के साथ ग्रासपट्टी, इसके ऊपर बारह भाग का गजथर, दश भाग का अश्वथर, और आठ भाग का नरथर बनावे। अश्वथर के स्थान पर देव के वाहन का भी थर बना सकते है ॥७ से ६॥

थरो का निर्गममान—

पञ्चांशा कर्णिकाग्रे तु निर्गमो जाड्यकुम्भकः।
त्रिसार्द्धा कर्णिका सार्धा चतुर्भिर्ग्रासपट्टिका ॥१०॥
कुञ्जराश्वनरा वेदा रामयुग्माशनिर्गमाः।
अन्तरालमधस्तेषा-मूर्ध्वाधः कर्णयुग्मकम् ॥११॥

कर्णिकासे आगे पाच भाग निकलता जाड्यकुम्भ, ग्रासपट्टी से आगे साढे तीन भाग निकलती कर्णिका, गजथर से आगे साढे चार भाग निकलती ग्रासपट्टी, अश्वथरसे आगे चार भाग निकलता गजथर, नर थरसे आगे तीन भाग निकलता अश्वथर और खुरासे आगे दो भाग निकलता नर थर रखे। इस प्रकार बाईस भाग पीठ का निर्गम जाने। इन गजादि थरो के नीचे अंतराल रक्खे और अंतराल के ऊपर और नीचे दो दो कर्णिका बनावे ॥१०-११॥

कामदपीठ और कणपीठ (साधारणपीठ)—

गजपीठं विना स्वल्प-द्रव्ये पुण्यं महत्तरम्।
जाड्यकुम्भश्च कर्णाली ग्रासपट्टी तदा भवेत् ॥१२॥
कामदं कणपीठं च जाड्यकुम्भश्च कर्णिका।
लतिने निर्गम हीनं सान्धारे निर्गमाधिकम् ॥१३॥

गज आदि थरो वाली पीठ को गजपीठ कहते है। ऐसी रूपवाली पीठ बनाने में द्रव्य का अधिक खर्च होता है, इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार अल्प द्रव्य से साधारण पीठ बनाने से भी बडा पुण्य होता है। गज अश्व आदि रूपोवाली पीठ को छोडकर जाड्यकुम्भ, कर्णिका और केवाल के साथ ग्रासपट्टी वाली साधारण पीठ बनावे, उसको कामदपीठ कहते हैं। तथा जाड्यकुम्भ और कर्णिका ये दो थरवाली पीठ बनावे, उसको कणपीठ कहते हैं। लतिनजाति के प्रासाद के पीठ का निर्गम कम होता है और साधार जातिके प्रासाद के पीठ का निर्गम अधिक होता है ॥१२-१३॥

सर्वेषा पीठमाधारः पीठहीनं निराश्रयम्।
पीठहीन विनाशाय प्रासादभुवनादिकम् ॥१४॥

इति पीठम्।
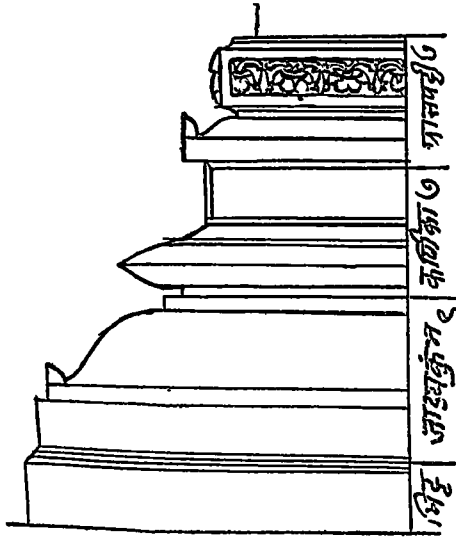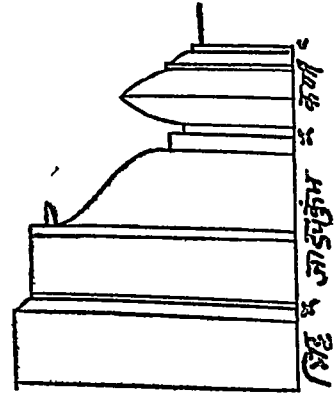
कामद् पीठ   कर्णपीठ

प्रासाद और भवन (गृह) आदि सब मे पीठका आधार है, यदि पीठ न होवे तो ये निराधार माने जाते है । इसलिये बिना पीठ वाले ये प्रासाद और गृह आदि थोडे समय मे ही नष्ट हो जाते है ।।१४।।

प्रासाद का उदयमान (मंडोवर)—

> हस्तादिपञ्चपर्यन्तं विस्तारेणोदयः समः ।
> स क्रमान्नवसप्तेषु-रामचन्द्राङ्गुलाधिकः ।।१५।।
> पञ्चादिदशपर्यन्तं त्रिंशद्यावच्छताद्र्ध्वकम् ।
> हस्ते हस्ते क्रमाद् वृद्धि-र्मनुसूर्यनवाङ्गुला ।।१६।।

एक से पाच हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का उदय विस्तार के बराबर मान का बनावें, परन्तु उनमे क्रमश नव, सात, पाच, तीन और एक अगुल बढा करके बनावे । अर्थात् प्रासाद का विस्तार एक हाथ का हो तो उसका उदय एक हाथ और नव अगुल (कुल ३३ अगुल), दो हाथ का हो तो दो हाथ और सात अगुल (कुल ५५ अगुल), तीन हाथ का हो तो तीन हाथ और पाच अगुल (कुल ७७ अगुल), चार हाथ का हो तो चार हाथ और तीन अगुल (कुल ९९ अगुल) और पाच हाथ का हो तो पाच हाथ और एक अगुल (कुल १२१ अगुल) का उदय रक्खे । छह से दस हाथ तक के विस्तार वासे प्रासाद का उदय प्रत्येक हाथ चौदह २ अगुल, ग्यारह से तीस हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का उदय प्रत्येक हाथ

बारह २ अगुल और इकतीस से पचास हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का उदय प्रत्येक हाथ नव २ अगुल की वृद्धि करके रक्खें। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद की कुल ऊंचाई पचीस हाथ और ग्यारह अगुल होती है ॥१५-१६॥ देखो अपराजित पृच्छा सूत्र १२६

अन्य प्रकार का उदय मान—

एक हस्तादिपञ्चान्तं पृथुत्वेनोदयः समः।
हस्ते सूर्याङ्गुलावृद्धि-र्यावत् त्रिंशत्करावधि ॥१७॥
नवाङ्गुला करे वृद्धि-र्यावद्धस्तशतार्धकम्।
पीठोर्ध्वे उदयश्चैव छाद्यान्ते नागरादिषु[1] ॥१८॥

एक से पाच हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का उदय विस्तार के बराबर रखें। पीछे छह से तीस हाथ तक के प्रासाद का उदय प्रत्येक हाथ बारह २ अगुल बढाकर के और इकतीस से पचास हाथ तक के प्रासाद का उदय प्रत्येक हाथ नव २ अगुल बढाकर के रखे। यह प्रासाद का उदय पीठ के ऊपर खुरा से लेकर छज्जा के अत भाग तक माना गया है ॥१७-१८॥

प्रासाद के उदय के लिये अपराजित पृच्छा सूत्र १२६ में श्लोक १० मे अन्य प्रकार से लीखा है कि—

"कुम्भकादि प्रहारान्त प्रयुक्त वास्तुवेदिभि ।
तदधस्तात्तु पीठ च ऊर्ध्वे स्याच्छिखरोदय ॥"

कुम्भा के थर से लेकर छाद्य के प्रहार थर के अत तक ऊचाई जाननी चाहिये, ऐसा वास्तुशास्त्र के जानने वाले विद्वानो ने कहा है। कुम्भा के नीचे पीठ और प्रहार थर के ऊपर शिखर का उदय होता है।

क्षीरार्णव के मतानुसार पासाद का उदयमान—

"एकहस्ते तु प्रासादे त्र्यस्त्रिशाङ्गुलोदय।
द्विहस्ते तूदय कार्यो सप्ताङ्गुल. करद्वय ॥
त्रिहस्ते च यदा माना-दधिकश्च पञ्चाङ्गुल।
चतुर्हस्तोदय कार्य एकेनाङ्गुलेनाधिक ॥
विस्तरेण सम कार्य पञ्चहस्तादये भवेत्।
षड्हस्ते तूदय कार्यो न्यूनो द्वावङ्गुलौ तथा ॥
उदय सप्तहस्ते च न्यून सप्ताङ्गुलस्तथा।
अष्टहस्तोदय कार्य षोडशाङ्गुलहीनक ॥
हीन एकोनत्रिंश स्यात् प्रासादे नवहस्तके।
दशहस्तेषूदय कार्योऽष्टहस्तप्रमाणत ॥

(१) 'नागरोचित.।'

सपाददश हस्तश्च प्रासादे दशपञ्चके ।
विंशहस्तोदये कार्य. सार्द्धद्वादशहस्तक ॥
पञ्चविंशोदये ज्ञेय. पादोनदशपञ्चक ।
त्रिंशहस्ते महाप्राज्ञ । सप्तदशोदयस्तथा ॥
सपादैकोनविंशति पञ्चत्रिंशे मुनीश्वर ! ।
व्योमवेदे यदा हस्ते सार्ध स्यादेकविंशति ॥
चतुर्विंशति पादोन. पञ्चचत्वारिंशद्धस्तके ।
शतार्द्धोदये मान तु हस्ता स्यु पञ्चविंशति. ॥''

प्रासाद का विस्तार एक हाथ हो तो ३३ अगुल, दो हाथ हो तो ५५ अगुल, तीन हाथ हो तो ७७ अगुल, चार हाथ हो तो ६७ अगुल, पाच हाथ का हो तो पाच हाथ, छह हाथ का हो तो पाच हाथ और २२ अगुल, सात हाथ का हो तो छह हाथ और १७ अगुल, आठ हाथ का हो तो सात हाथ और आठ अगुल, नव हाथ का हो तो सात हाथ और १६ अगुल, दस हाथ का हो तो आठ हाथ, पद्रह हाथ का हो तो दस हाथ और छह अगुल, बीस हाथ का हो तो बारह हाथ और बारह अगुल, पचीस हाथ का हो तो चौदह हाथ और १८ अगुल, तीस हाथ का हो तो सत्रह हाथ, पेतीस हाथ का हो तो १६ हाथ और छह अगुल, चालीस हाथ का हो तो २१ हाथ और १२ अगुल, पैतालीस हाथ का हो तो २३ हाथ १८ अगुल, और पचास हाथ का हो तो २५ हाथ का उदय करना चाहिये । अर्थात् दश हाथ के बाद पाच पाच हाथ मे सवा दो २ हाथ उदय क ने का विधान है ।

प्रासाद के उदय से पीठका उदयमान—

एकविंशत्यंशभक्ते प्रासादस्य समुच्छ्रये ।
पञ्चादिनवभागान्तं पीठस्य पञ्चधोदयः ॥१६॥

प्रासाद का खुरा से लेकर छज्जा तक जो उदयमान आवे, उसका इक्कीस भाग करके पाच, छह, सात, आठ अथवा नव भाग जितना पीठ का उदय रक्खे । इस तरह पाच प्रकार से पीठ का उदयमान होता है ॥१६॥

१४४ भाग के मंडोवर (दीवार) के थरो का उदयमान—

वेदवेदेन्दुभक्ते तु छाद्यान्त पीठमस्तकात् ।
खुरकः पञ्चभागः स्याद् विंशतिः कुम्भकस्तथा ॥२०॥
कलशोऽष्टौ द्विसार्द्धं तु कर्त्तव्यमन्तरालकम् ।
कपोतिकाष्टौ मञ्ची च कर्त्तव्या नवभागिका ॥२१॥

पञ्चत्रिंशत्पदा[1] जङ्घा तिथ्यंशैरुद्गमो भवेत् ।
वसुभिर्भरणी कार्या दिग्भागैश्च[2] शिरावटी ॥२२॥
अष्टांशोर्ध्वा कपोतालि-र्द्विसार्द्धमन्तरालकम् ।
छाद्यं त्रयोदशांशोच्चं दशभागैर्विनिर्गमः ॥२३॥

इति मण्डोवर ।

पीठ के ऊपर से छज्जा के अंत भाग तक पूर्वोक्त प्रासाद के उदय का जो मान आया हो, उसका एक सौ चउआलीस (१४४) भाग करे। उनमे से पाच भाग का खुरा, बीस भाग का कुम्भा, आठ भाग का कलश, ढाई भाग का अंतराल, आठ भाग का केवाल, नव भाग की मची, पैंतीस भाग की जघा, पद्रह भाग का उद्गम (उर जघा), आठ भाग की भरणी, दस भाग की शिरावटी, आठ भाग की कपोतिका (केवाल), ढाई भाग का अंतराल और तेरह भाग का छज्जा का उदय रक्खे और छज्जा का निर्गम दस भाग का रक्खे ॥२० से २४॥

इन १४४ भाग के मडोवर के थरो मे जो रूप किया जाता है, उसका वर्णन अपराजित पृच्छा सूत्र १२२ के अनुसार ज्ञानप्रकाश दीपार्णव के पांचवे अध्याय मे लिखा है कि—

"खुरक पञ्चभागस्तु विंशति कुम्भकस्तथा ।
पूर्वमध्यापरे भागे ब्रह्मविष्णुरुद्रादय ॥
त्रिसन्ध्या भद्रे शोभाढ्या चित्रपरिकरैर्वृता ।
नासके रूपसघाटा गर्भे च रथिकोत्तमा ॥
मृणालपत्र शोभाढ्य स्तम्भिका तोरणान्विता ।"

पीठ के ऊपर खुरा पाच भाग और कुम्भा बीस भाग रक्खे। कुम्भा मे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का स्वरूप बनावे, इन तीन देवो मे से एक मध्य में और उसके दोनो बगल मे एक २ देव बनावे। भद्र के कुम्भा मे तीन सध्या देवी, अपने परिवार के साथ बनावे, कोणे के कुम्भा मे अनेक प्रकार के रूप बनावे, तथा भद्र के मध्यगर्भ मे सुन्दर रथिका (गवाक्ष) बनावे। कमल के पान के आकार और तोरण वाले स्तभ बनावे।

"कलशो वसुभागस्तु सार्धद्वौ चान्त पत्रकम् ॥
वसुभिश्च कपोतालि-र्मञ्चिका नवभागिका ।
पञ्चत्रिंशदुच्छ्रिता च जङ्घा कार्या विचक्षणै ॥
भ्रमनिर्वाणतै स्तम्भै-र्नासिकोपाङ्गफालना ।
मूलनासकसर्वेषु स्तम्भा स्युश्चतुरस्रका ॥
गजै सिंहैर्वरालैश्च मकरै समलङ्कृता ।"

(१) 'त्रिंशतश्चयुता' । (२) 'शिरावटी दशाधिका ।'
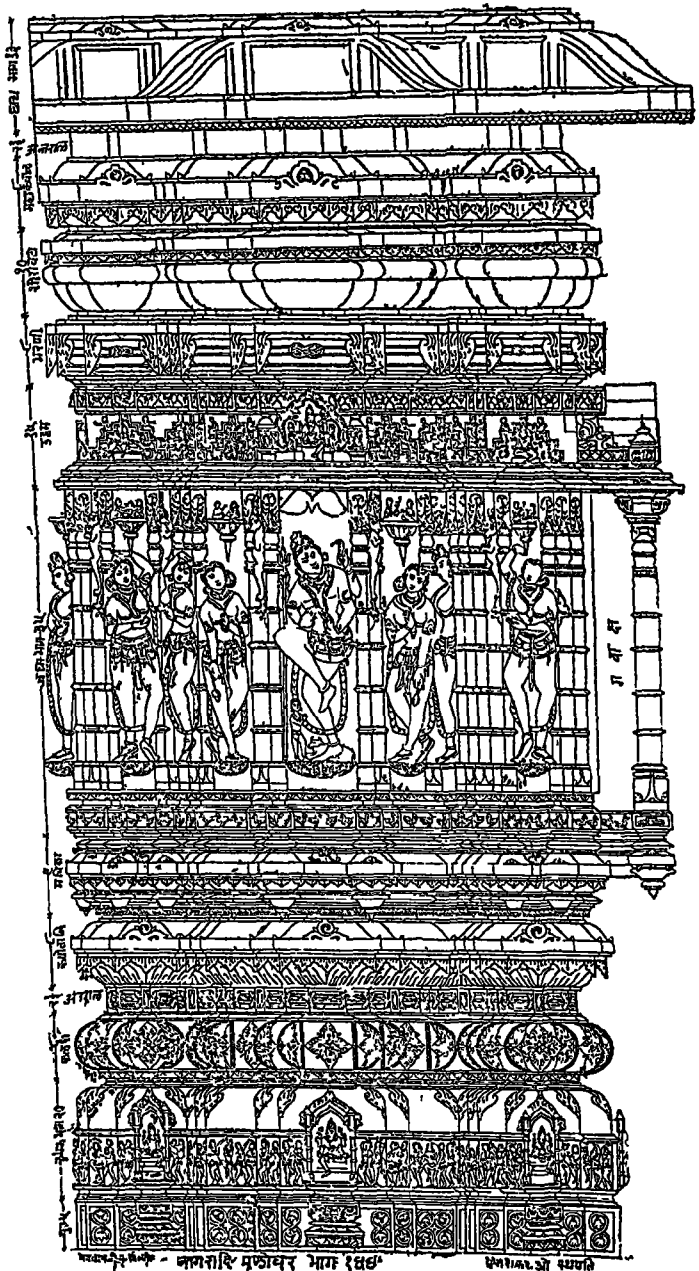
१४४ भाग का मंडोवर (प्रासाद की दीवार)

आठ भाग का कलश, ढाई भाग का अंतरपत्र, आठ भाग का केवाल, नव भाग की मचिका और पैंतीस भाग की जघा करे। कोना और उपाग आदि फालना की जघा मे भ्रमवाले स्तभ बनावे, सब मुख्य कोने की जघा मे समचोरस स्तभ बनावे, तथा गज, सिंह, वरालक और मकर के रूपो से शोभायमान बनावे।

"कर्णेषु च दिक्पालाष्टौ प्राच्यादिषु प्रदक्षिणे॥
नाट्येश पश्चिमे भद्रे अन्धकेश्वरो दक्षिणे।
चण्डिका[1] उत्तरे देव्यो दष्ट्रासुविकृताननाः॥
प्रतिरथे तस्य देव्य कर्तव्याश्च दिशापते।
वारिमार्गे मुनीन्द्राश्च प्रलीना तप साधने॥
गवाक्षाकारो भद्रेषु कुर्यान्निर्गमभूषित।"

कर्ण की जघा मे आठ दिक्पाल पूर्वादि दिशा के प्रदक्षिण क्रम से रक्खे। नाट्येश (नटराज) पश्चिम भद्र मे, अधकेश्वर दक्षिण भद्र मे, विकराल मुख वाली और भयकर दात वाली चडिका देवी उत्तर दिशा के भद्र मे रक्खे। प्रतिरथ के भद्र में दिक्पालो की देवियां बनावे। वारिमार्ग मे तप साधना मे लीन ऐसे ऋषियो के रूप बनावें। भद्र के गवाक्ष बाहर निकलता हुआ शोभायमान बनावे।

चार प्रकार की जंघा—

"नागरी च तथा लाटी वैराटी द्राविडी तथा॥
शुद्धा तु नागरी ख्याता परिकर्मविवर्जिता।
स्त्रीयुग्मसयुता लाटी वैराटी पत्रसङ्कुला॥
मञ्जरी बहुला कार्या जङ्घा च द्राविडी सदा।
नागरी मध्यदेशेषु लाटी लाटे प्रकीर्तिता॥
द्राविडी दक्षिणे देशे वैराटी सर्वदेशजा।"

नागरी, लाटी, वैराटी और द्राविडी ये चार प्रकार की जघा है। उनमे नागरी जघा विना किसी प्रकार के रूप की और शुद्ध सादी है। स्त्री युगल के रूप वाली लाटी जघा है। कमल पत्रो वाली वैराटी जघा है। बहुत मञ्जरी (शृङ्गो) वाली द्राविडी जघा है। मध्यप्रदेश

(१) अपराजित पृच्छा सूत्र १२७ श्लोक २८ मे 'जिनरागे च शासनदेव्य।' अर्थात् वितराग देव के देवालय मे चण्डिका के स्थान पर उनकी शासन देवियां को रखना लीखा है।
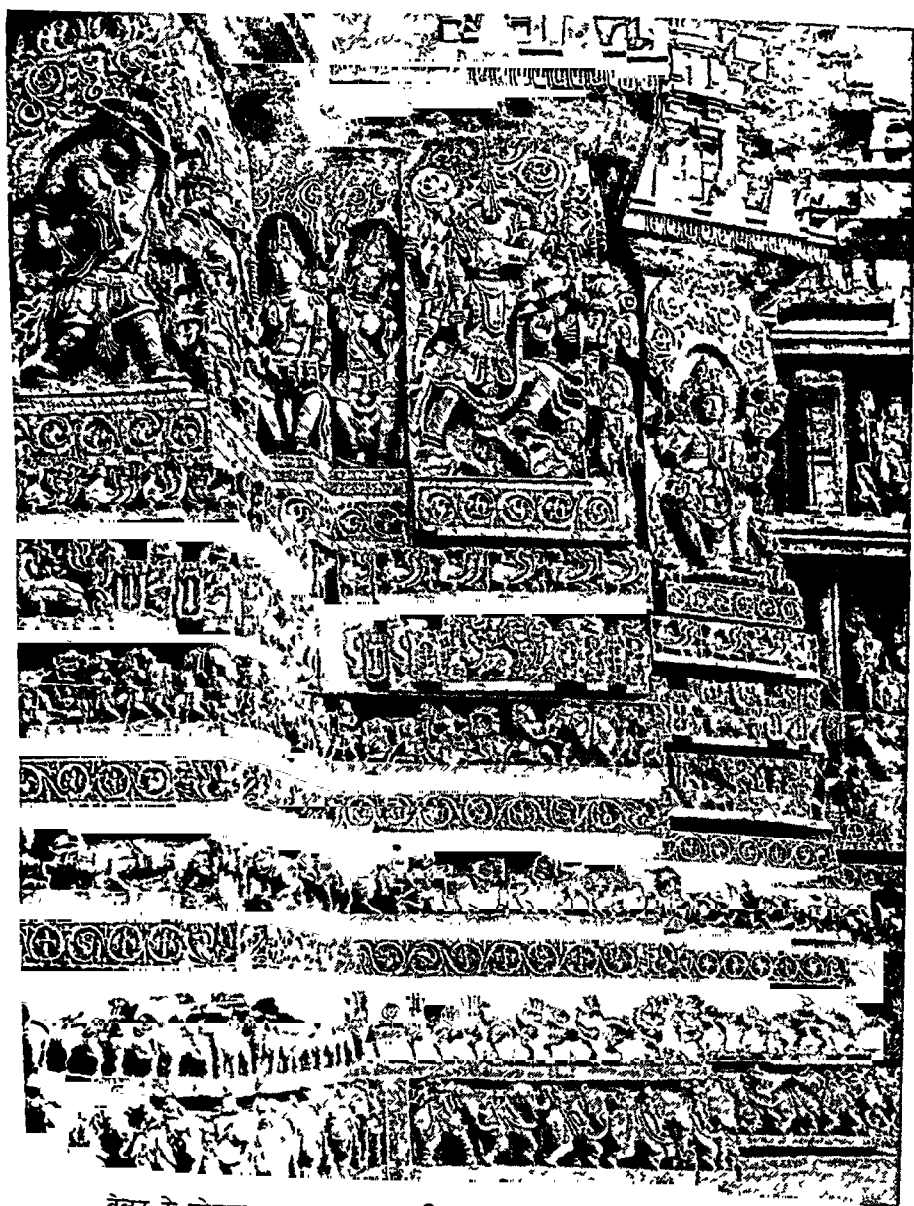
वेलूर के सोमनाथपुरम् का एक द्राविड प्रासाद के मडोवर (दीवार) और पीठ की अनुपम कलाकृति
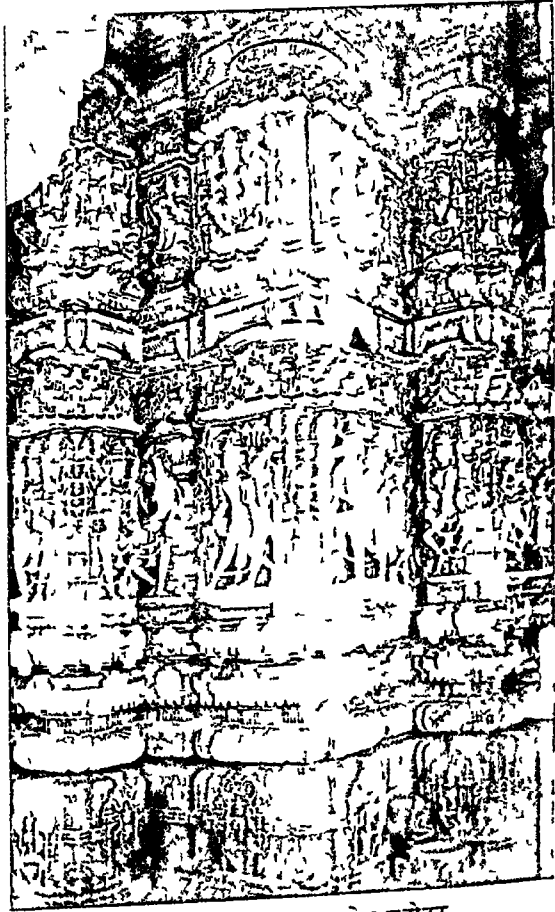
अनुपम कारीगरी वाला मेरु मंडोवर
जैन मंदिर-आबू

मे नागरी जघा, लाटदेश मे लाटी जघा, दक्षिण देश मे द्राविडी जघा और सारे देश मे वैराटी जघा प्रसिद्ध है।

मेरुमण्डोवर भाग २४९

"उद्गम पञ्चदशाशै. कपिग्रासैरलङ्कृत ॥
भरणी वसुभागा तु शिरावटी पञ्चैव च।
तदूर्ध्वं पञ्चभि पट्ट कपोतालिर्वसुस्मृता॥
द्विसार्धमन्त'पत्र च त्रिदश कूटच्छाद्यकम्।
निर्गम वसुभागे तु मेर्वादीनामत शृणु॥"

पन्द्रह भाग का उद्गम बनावे, एव उसमे बन्दरो के रूप बनावे। आठ भाग की भरणी, पाच भाग को शिरावटी, उसके ऊपर पाच भाग का पाट, आठ भाग का केवाल, ढाई भाग का अतरपत्र और तेरह भाग का छज्जा का उदय रखना चाहिये। छज्जा का निर्गम आठ भाग रखे।

मेरु मंडोवर—

मेरुमण्डोवरे मञ्ची भरण्यूर्ध्वेऽष्टभागिका।
पञ्चविंशतिका जङ्घा उद्गमश्च त्रयोदश ॥२४॥
अष्टाशा भरणी शेषं पूर्ववत् कल्पयेत् सुधीः।
सप्तभागा भवेन्मञ्ची कूटच्छाद्यस्य मस्तके ॥२५॥
षोडशांशा पुनर्जङ्घा भरणी सप्तभागिका।
शिरावटी चतुर्भागा पट्टः स्यात् पञ्चभागिकः ॥२६॥
सूर्यांशैः कूटच्छाद्यं च सर्वकामफलप्रदम्।
कुम्भकस्य युगांशेन स्थावराणां प्रवेशकः ॥२७॥

इति मेरुमडोवर।

जिस मडोवर मे एकसे अधिक जघा होवे, उसको मेरुमडोवर कहते है। उसमे भरणी के ऊपर खुर, कुम्भ, कलश, अतराल और केवाल, ये प्रथम के पाच थर नही बनाये जाते, किन्तु मञ्ची आदि सब थर बनाये जाते है। इसलिये प्रथम खुरा से लेकर भरणी
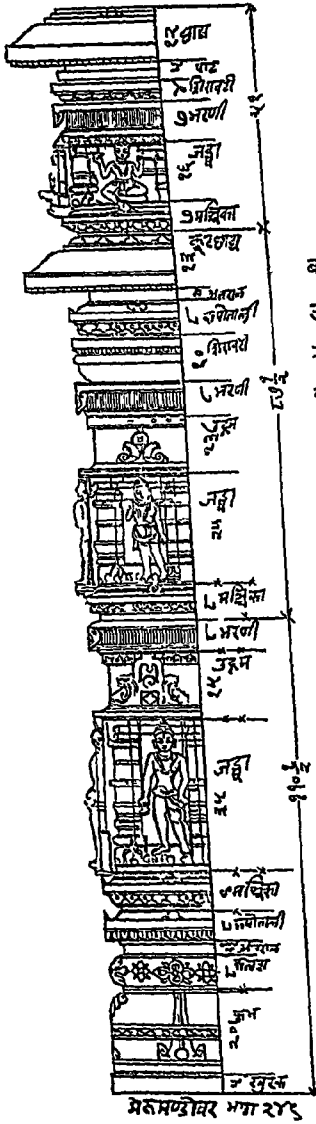
तक सब थर १४४ भाग के मान से बनाकर के पीछे उसके ऊपर मञ्ची आदि थर बनायें जाते हैं, उनका मान इस प्रकार है—

सामान्य मण्डोवर उदय
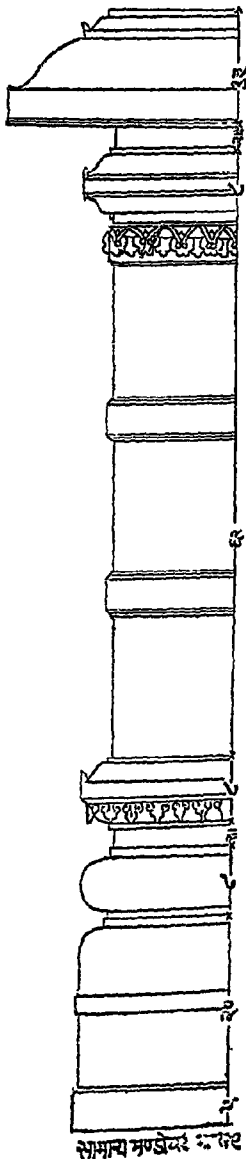
उपरोक्त १४४ भाग के मण्डोवर के खुरासे लेकर भरणी तक के सब थर बना करके उसके ऊपर मची आठ भाग की, जघा पचीस भाग की, उद्गम तेरह भाग का और भरणी आठ भाग की बनानी चाहिये। इसके ऊपर शिरावटी केवाल, अतराल और छज्जा, ये चार थर १४४ भाग के मडोथर के मान का बनावे। फिरसे इस छज्जा के ऊपर सात भाग की मची, सोलह भाग की जघा, सात भाग की भरणी, चार भाग की शिरावटी, पाच भाग का पाट और बारह भाग का कूटछाद्य बनावे। यह मेरुमडोवर सब इच्छित फल देने वाला है। कुम्भा का एक चतुर्थांश भाग जितना सब थरो का निर्गम रखे ॥२२४ से २७॥

क्षीरार्णव में कहा है कि—

"अस्योदये च कर्त्तव्य प्रथम पट्कुच्छाद्यकम् ।
यावत्समोदय प्राज्ञ । तावन्मण्डोवर कृतम् ॥
तथाद्यच्छाद्यसस्थाने द्वे जङ्घे परिकीर्त्तिते ।
"भवेयुर्द्वादशजङ्घा यावत्तु शतार्धोदये ॥
षड्विध कूटच्छाद्य च द्विभूम्योरन्तरे मुने'।
भरण्यूर्ध्व भवेन्माञ्ची छाद्योर्ध्वे न च मञ्चिका ॥
पुनर्जङ्घा प्रदातव्या यावद् द्वादशसख्यया ।
किञ्चित् किञ्चिद् भवेन्न्यून कर्त्तव्यो भूमिकोच्छ्रय ॥
शतार्द्धोदये माने च महामेरु प्रदापयेत् ।" अध्याय १०४॥

जितना प्रासाद का उदय हो, उतना ही ऊचा मडोवर रखें। इस मडोवर के उदय मे छह छज्जे बनावें। प्रथम छज्जा दो जघा वाला बनावे। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद म बारह जघा और छह छज्जा बनाया जाता है। दो दो भूमि के फासले पर एक २ छज्जा बनाना चाहिये। भरणी के ऊपर माची रखें, किन्तु छज्जा के ऊपर माची नहीं रखनी चाहिये। नीचे से भूमि से ऊपर की भूमि की ऊचाई कम कम रखनी चाहिये। यह महामेरु मडोवर पचास हाथ के प्रासाद के लिये बनाना चाहिये।

सामान्य मंडोवर—

शिरावट्य् दुगमो मञ्ची जङ्घा रूपाणि वर्जयेत् ।
अल्पद्रव्ये महत्पुण्यं कथितं विश्वकर्मणा ॥२८॥

इति सामान्यमडोवर. ।

शिरावटी, उद्गम, मंची और जघा, इन थरो मे जो जो रूप बनाये जाते है, इनसे द्रव्य का अधिक व्यय होता है। इसलिये ये थर बिना रूप का बनावे ताकि खर्च कम हो। विश्वकर्माजी के कथनानुसार इससे पुण्य भी महान् होता है। ॥२८॥

प्रकारान्तरे मंडोवर— भाग २७
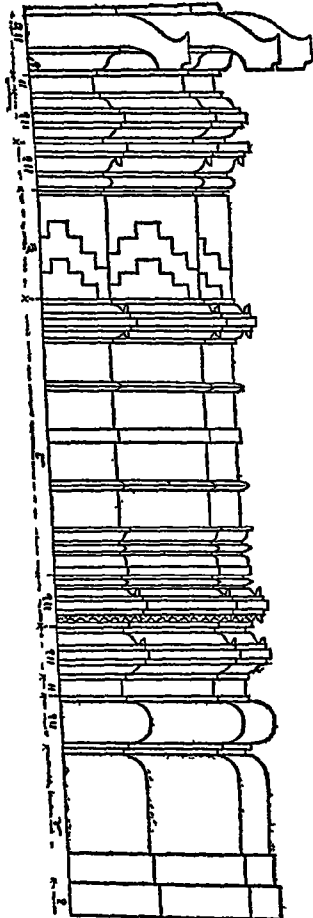
२७ भाग का मडोवर—

पीठतश्छाद्यपर्यन्तं सप्तविंशतिभाजिते ।
द्वादशानां खुरादीनां भागसंख्या क्रमेण तु ॥२९॥
स्यादेकवेदसार्धार्ध-सार्द्धमार्द्धाष्टभिस्त्रिभिः ।
सार्द्धसार्द्धार्ध भागैश्च सार्धद्वौ[1] द्व्यंशनिर्गमः॥ ३०॥

इति प्रकारान्तरे मण्डोवर ।

पीठ के ऊपर से छज्जा के ऊपर तक मडोवर के उदय का सत्ताईस (२७) भाग करे। उनम खुरा आदि बारह थरो की भाग सख्या क्रमश इस प्रकार है–एक भाग का खुरा, चार भाग का कु भ, डेढ भाग का कलश, आधा भाग का अतराल, डेढ भाग का केवाल, डेढ भाग की माची, आठ भाग की जघा, तीन भाग का उद्गम, डेढ भाग की भरणी, डेढ भाग का केवाल,[२] आधा भाग का अतराल और ढाई भाग का छज्जा का उदय रक्खे, छज्जा का निर्गम दो भाग मे करे। ॥२९॥३०॥

मडोवर की मोटाइ—

पादांशेनैष्टके पञ्च-षडंशैः शैलदारुजे ।
सान्धारे चाष्टभिर्भागै[३]-र्दशांशैर्धातुरत्नजे ॥३१॥

(१) द्विसार्धे ।
(२) भरणी के ऊपर कितनेक प्रासादों मे शिरावटी है और कितनेक प्रासादों में केवाल देखने में आता है। (३) ऽष्टाशतो भित्ति ।

ईंटो के प्रासाद की दीवार प्रासाद के विस्तार के चौथा भाग जितनी, पाषाण के और लकडी के प्रासाद की दीवार पाचवे भाग अथवा छट्ठे भाग जितनी, साधार प्रासाद की दीवार आठवे भाग, धातु और रत्न के प्रासाद की दीवार दसवे भाग जितनी मोटी बनावे ॥३१॥

अपराजित सूत्र १२६ में कहा है कि—

"मृदिष्टकाकर्मयुक्ता भित्ति पादा प्रकल्पयेत् ।
पञ्चमांशेऽथवा सा तु षष्ठांशे शैलजे भवेत् ॥
दारुजे सप्तमांशे च सान्धारे चाष्टमांशके ।
धातुजे रत्नजे भित्ति प्रासादे दशमांशत ॥"

मिट्टी और ईंट के प्रसाद की दीवार चौथे भाग, पाषाण के प्रासाद की दीवार पाचवे अथवा छट्ठे भाग, लकडी के प्रासाद की दीवार सातवे भाग, सान्धार जाति के प्रासाद की दीवार आठवे भाग, धातु और रत्न के प्रासाद की दीवार दसवे भाग जितनी मोटी बनावे।

अन्य प्रकार से मंडोवर की मोटाई—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे दशभागैर्विभाजिते ।
भित्तिर्द्विभागकर्त्तव्या षड्भागं गर्भमन्दिरम् ॥३२॥

समचोरस प्रासाद की भूमि के दस भाग करे। उनमे से दो २ भाग की दीवार की मोटाई रक्खे। बाकी छह भाग का गभारा बनावे ॥३२॥

शुभाशुभगर्भगृह—

मध्ये युगास्रं भद्राढ्यं सुभद्रं प्रतिभद्रकम् ।
फालनीय गर्भगृह दोषद गर्भमायतम् ॥३३॥

गर्भगृह चार काने वाला समचोरस बनावे। उसमें भद्र, सुभद्र और प्रतिभद्र आदि फालना (खाचा) बनाना शुभ है। परन्तु लबचोरस गभारा बनाने पर दोष होता है ॥३३॥

अपराजित पृच्छा सूत्र १२६ में कहा है कि—

"एकद्वित्रिकमात्रापि गर्भगेह यदायतम् ।
यमचुल्ली तदा नाम भर्तृगृहविनाशिका ॥"

यदि गर्भगृह एक, दो, तीन अगुल भी सम्मुख लबा हो तो यह यमचुल्ली नाम का गर्भगृह कहा जाता है। यह स्वामी के गृह का विनाश कारक है।

लंबचोरस शुभ गर्भगृह—

"दारुजे वलभीना तु आयत च न दूषयेत् ।
प्रशस्त सर्वकृत्येषु चतुरस्र शुभप्रदम् ॥" अप० सू० १२६

दारुजादि (लकडी के बने हुए) और वलभी (स्त्रीलिंग) जाति के प्रासाद मे गर्भगृह लबा हो तो दोष नही लगता है । बाकी समस्त जाति के प्रासादो मे समचोरस गर्भगृह बनाना, सब कार्यों मे प्रशसनीय और शुभ है ।

स्तम्भ और मंडोवर का समन्वय—

कुम्भकेन समा कुम्भी स्तम्भप्रान्तेन तूद्गमः ।
भरण्या भरणीं शीर्षं कपोताल्या सम भवेत् ॥३४॥
पेटके[1] कूटच्छाद्यस्य कुर्यात् पटस्य पेटकम् ।

मडोवर का कुम्भ और स्तभ की कुम्भी, स्तभ का मथाला और मडोवर का उद्गम, स्तभ की भरणी और मडोवर की भरणी, मडोवर की कपोताली और स्तभ की शिरावटी, ये सब समसूत्र मे रखने चाहिये और पाट के पेटा भाग तक छज्जा की नमन (छज्जा नमता) रखनी चाहिये ।

गर्भगृह के का मान और गुम्बज—

सषडंशः सपादः स्यात् सार्धो गर्भस्य विस्तरात् ॥३५॥
वृहद्देवालये पट्ट-पेटान्तं हि त्रिधोदयः ।
भजेदष्टभिरेकांशा कुम्भी स्तम्भोऽर्द्धपञ्चभिः ॥३६॥
अर्द्धेन भरणी शीर्ष-मेकं पट्टस्तु सार्धकः ।
व्यासार्धेन करोटः स्याद् दर्दरी विषमा शुभा ॥३७॥

इति गर्भगृहोदयप्रमाणम् ।

गर्भगृह (गभारे) के विस्तार मे विस्तार का षष्ठाश युक्त सवाया अथवा डेढा गर्भगृह का उदय रक्खे । यह गभारे के तल से पाट के पेटा भाग तक गर्भगृह के उदय का तीन प्रकार का मान हुआ । (अपराजित पृच्छा सू० १२६ श्लो० ५ मे गभारे का उदय पौने दुगुणा तक रखने

(१) 'अधस्तान्'

को कहा है) जो उदयमान आया हो, उसका आठ भाग करे, उनमें से एक भाग की कुम्भी, साढे पाच भाग का स्तभ, आधे भाग की भरणी और एक भाग की शिरावटी बनावे। इसके ऊपर डेढ भाग का केवाल (पाट) रक्खे। गर्भगृह के विस्तार से आधा करोट (गुम्बज) का उदय रखना चाहिये, उसमे दर्दरी का थर विपम सख्या मे रक्खे ।।।३५ से ३७।।

उदुम्बर (देहली) की ँ ई—

मूलगर्भस्य सूत्रेण कुम्भेनोदुम्बरः समः ।
तदधः पञ्चरत्नानि स्थापयेच्छिल्पिपूजया ॥३८॥

प्रासाद के कोने के समसूत्र मे उदुम्बर (देहली) बनावे। यह कुम्भा के उदय के बराबर ऊचाई मे रक्खे। इसकी स्थापना करते समय नीचे पचरत्न रक्खे और शिल्पियो का सम्मान करे ॥३८॥

उदुम्बर की रचना—

द्वारव्यासत्रिभागेन मध्ये मन्दारको भवेत् ।
वृत्त मन्दारकं कुर्याद् मृणाल पत्रसंयुतम् ॥३९॥
जाड्यकुम्भः कणाली च कीर्त्तिवक्त्रद्वय तथा ।
उदुम्बरस्य पार्श्वे च शाखायास्तलरूपकम् ॥४०॥

द्वार के विस्तार का अर्थात् देहली का तीन भाग करे। उनमें से एक भाग का मध्य में मदारक बनावे। यह अर्धचद्र के आकार वाला गोल और पद्मपत्र युक्त बनाना चाहिये। बदुम्बर की ऊचाई के अर्धभाग मे जाड्यकुम्भ और कणी, ये दो थर वाली कणपीठ बनावें। मदारक के दोनो तरफ एक २ भाग का कीर्त्तिमुख (ग्रासमुख) बनावे और उसके बगल म शाखा के तलका रूपक बनावे ॥३९-४०॥

कुभा से हीन उदुम्बर और तल—

कुम्भस्यार्द्धे त्रिभागे वा पादे हीन उदुम्बरः ।
तदर्धे कर्णक मध्ये पीठान्ते बाह्यभूमिका ॥४१॥

इति उदुम्बर ।

उदु बर का उदय कुम्भ के उदय के बराबर रखना चाहिये। परन्तु कम करना चाहे तो कुम्भ के उदय का आधा एक तृतीयाश अथवा चौथा भाग जितना कम कर सकते है। उदय के आधे भाग तक कणपीठ करना और गर्भगृह का तल रखना चाहिये और बाहर के मण्डप के तल पीठ के उदयान्त बराबर रखें ॥४१॥

अपराजित पृच्छा सूत्र १२९ में कहा है कि—

"उदुम्बरं तथा वक्ष्ये कुम्भिकान्त तदुच्छ्रयम् ।
तस्यार्धेन त्रिभागेन, पादोनरहित तथा ॥
उक्तं चतुर्विध शस्त कुर्याच्चैवमुदुम्बरम् ।
अत्युत्तमाश्च चत्वारो न्यूना दुष्यास्तथाधिका ॥
खुरकोर्ध्वेऽर्द्ध चन्द्र स्यात् तदूर्ध्वं स्यादुदुम्बर' ।
उदुम्बरार्द्धे त्र्यशे वा पादे वा गर्भभूमिका ॥
मण्डपेषु च सर्वेषु पीठान्ते रङ्गभूमिका ॥"
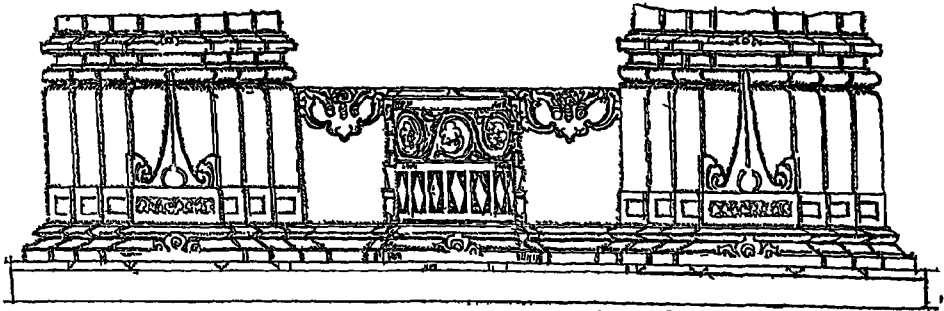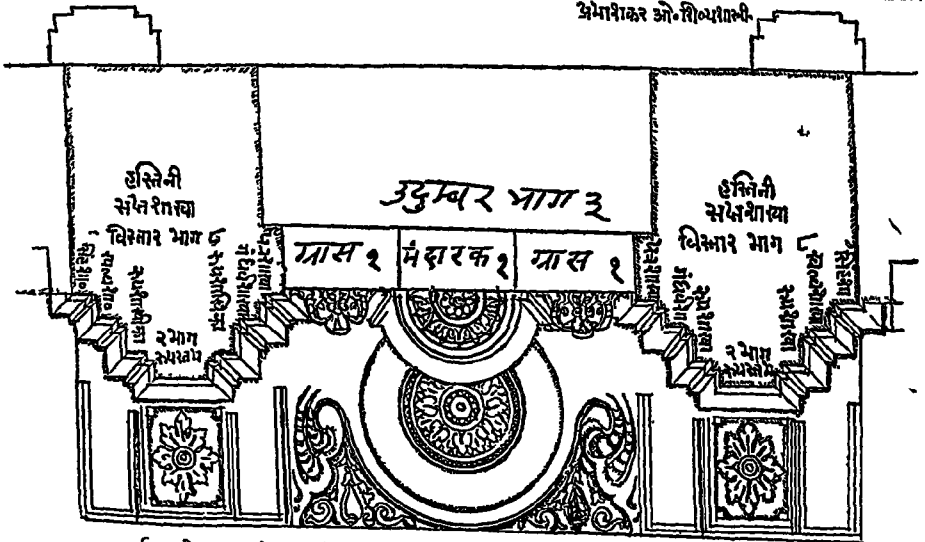
मंदिर के द्वार की देहली का उदय और तल भाग तथा अर्द्ध चंद्र और गगारक

नागरप्रासाद का द्वारमान—

एकहस्ते तु प्रासादे द्वारं स्यात् षोडशाङ्गुलम् ।
षोडशाङ्गुलिका वृद्धि-र्यावद्धस्तचतुष्टयम् ॥४४॥
अष्टहस्तान्तकं यावद् दीर्घे वृद्धिगुणाङ्गुला ।
द्व्यङ्गुला प्रतिहस्त च यावद्धस्तशतार्द्धकम् ॥४५॥
यानवाहनपल्यङ्कं द्वारं प्रासादसद्मनाम् ।
दैर्घ्यार्द्धेन पृथुत्वं स्याच्छोभनं तत्कलाधिकम् ॥४६॥

इति नागरप्रासादद्वारमानम् ।

नागर जाति के प्रासाद के द्वार का उदय एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद के द्वार का उदय सोलह अगुल रखना चाहिये। पीछे चार हाथ तक सोलह २ अंगुल, पाच से आठ हाथ तक तीन २ अगुल और नौ से पचास हाथ तक प्रत्येक हाथ दो,२ अगुल बढा करके द्वार का उदय रखना चाहिये। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद के द्वार का उदय १६० अगुल[1] होता है। पालखी, वाहन, शय्या और पलग तथा प्रासाद और घर का द्वार, ये सब विस्तार मे लबाई से आधा रखना चाहिये। उसमे भी लबाई का सोलहवा भाग विस्तार में बढावे तो अधिक शोभायमान होता है ॥४४ से ४६॥

क्षीरार्णवमें कहा है कि—

"एकहस्ते तु प्रासादे द्वार च षोडशाङ्गुलम् ।
इय वृद्धि प्रकर्त्तव्या यावच्च चतुर्हस्तकम् ॥
वेदाङ्गुला भवेद् वृद्धि-र्यावच्च दशहस्तकम् ।
हस्तविंशतिमाने च हस्ते हस्ते त्र्याङ्गुला ॥
द्व्याङ्गुला भवेद् वृद्धि प्रासादे त्रिंशद्धस्तके ।
अङ्गुलैका ततो वृद्धि-र्यावत्पञ्चाशद्धस्तकम् ॥
नागरं रम्यमिद द्वार-मुक्त क्षीरार्णवे मुने ॥
दशमांशे यदा हीन द्वार स्वर्गे मनोहरम् ॥
अधिक दशमांशेन प्रासादे पर्वताश्रये ।
तावदशेनान्तरे ज्ञानु-मर्हद्येयमुनीश्वर" ॥

[1] समरांगण सूत्रधार अध्याय ५५ श्लोक १०६ मे चार से अधिक मान के प्रासाद मे तीन अगुल बढाना लीखा है। जिसे पचास हाथ के प्रासाद का द्वारमान २०२ अगुल का होता है।

शिवे द्वार भवेज्ज्येष्ठ कनिष्ठ च जनालये ।
मध्यम सर्वदेवाना सर्वकल्याणकारकम् ॥
उत्तममुदयार्धेन पादोन मध्यमानकम् ।
तस्य हीन कनिष्ठ च विस्तारे द्वारमेव च ॥
एव ज्ञान यदा ज्ञात्वा यदा द्वार प्रतिष्ठितम् ।
नागर सर्वदेवाना सर्वदेवेषु दुर्लभम् ॥"

इति विश्वकर्मकृते क्षीरार्णवे नारदपृच्छिते शताग्रे पञ्चमोऽध्याय ।

एक से चार हाथ तक प्रत्येक हाथ सोलह २ अगुल की, पाच से दश हाथ तक चार २ अगुल की, ग्यारह से बीस हाथ तक तीन २ अगुल की, इक्कीस से तीस हाथ तक दो २ अगुल की और इकतीस से पचास हाथ तक एक अगुत की वृद्धि करके द्वार बनाना चाहिये। हे मुनि। यह क्षीरार्णव मे नागर जाति के द्वार का मान कहा। उसमे से दसवा भाग कम करे तो स्वर्ग के और अधिक करे तो पर्वत के आश्रित प्रासाद के द्वारका मान होता है। शिवालय मे ज्येष्ठ द्वार, मनुष्यालय मे कनिष्ठ द्वार और सब देवो के प्रासादो मे मध्यम द्वार बनाना चाहिये। यह सब कल्याण करने वाला है। उदय से आधा विस्तार रक्खे तो यह उत्तम मान का द्वार माना जाता है। इसमे उत्तम मान के विस्तार का चतुर्थांश कम रक्खे तो मध्यम मान का और इसमे भी मध्यम मान के विस्तार का चतुर्थांश कम रक्खे तो कनिष्ठ मान का द्वार माना जाता है। ऐसा समझ करके ही सब देवो के लिये यह नागर जाति का द्वार बनाना चाहिये।

भूमिजादिप्रासादका द्वारमान—

एकहस्ते सुरागारे द्वारं सूर्याङ्गुलोदयम् ।
सूर्याङ्गुला प्रतिकरं वृद्धिः पञ्चकरावधि ॥४७॥
पञ्चाङ्गुला च सप्तान्तं नवान्तं सा युगाङ्गुला ।
द्व्यङ्गुला तु शतार्द्धान्तं वृद्धिः कार्या कर प्रति ॥४८॥

इति भूमिजप्रासादद्वारमानम्'।

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद के द्वार का उदय बारह अगुल, पीछे पाच हाथ तक प्रत्येक हाथ बारह २ अगुल, छह और सात हाथ तक पाच २ अगुल, आठ और नव हाथ तक चार २ अगुल, दस से पचास हाथ तक के प्रासाद के द्वार का उदय दो २ अगुल बढा करके रक्खे। (उदय से आधा विस्तार रखना चाहिये। विस्तार मे उदय का सोलहवा भाग बढाने से अधिक शोभायमान होता है) ॥४७-४८॥

द्राविडप्रासाद का द्वारमान—

प्रासादे एकहस्ते तु द्वारं कुर्याद् दशाङ्गुलम् ।
रसहस्तान्तकं यावत् तावती वृद्धिरिष्यते ॥४९॥
पञ्चाङ्गुला दशान्तं च द्व्यङ्गुला च शतार्द्धकम् ।
पृथुत्वं च तदर्धेन शुभं स्यात्तु कलाधिकम् ॥५०॥

इति द्राविडद्वारमानम् ।

एक हाथ के प्रासाद के द्वार का उदय दस अगुल, पीछे छह हाथ तक प्रत्येक हाथ दस २ अगुल, सात से दस हाथ तक पाच २ अगुल और ग्यारह से पचास हाथ तक के प्रासाद के द्वार का उदय प्रत्येक हाथ दो दो अगुल बढा करके रक्खे। उदय से आधा विस्तार रक्खे। विस्तार मे उदय का सोलहवा भाग बढावे तो अधिक शोभायमान होता है ॥४९-५०॥

अन्य जाति के प्रासादो का द्वारमान—

विमाने भूमिजं मान वैराटेषु तथैव च ।
मिश्रके लतिने चैव प्रशस्त नागरोद्भवम् ॥५१॥
विमाननागरच्छन्दे कुर्याद् विमानपुष्पके ।
सिंहावलोकने द्वार नागर शोभन मतम् ॥५२॥
वलभ्यां भूमिज मानं फांसाकारेषु द्राविडम् ।
धातुजे रत्नजे चैव दारुजे च रथारुहे ॥५३॥

इति द्वारमानम् ।

विमान और वैराट जाति के प्रासाद का द्वार भूमिज जाति के मान का, मिश्र और लतिन जाति के प्रासाद का द्वार नागर जाति के मान का, विमाननागर, विमानपुष्पक और सिंहावलोकन जाति के प्रासाद का द्वारमान नागर जाति के मान का, वलभी प्रासाद का द्वारमान भूमिज जाति के मान का, फासनाकार, धातु, रत्न, दारुज और रथारूह जाति के प्रासाद का द्वार द्राविड जाति के मान का रखना चाहिये ॥५१-५३॥

द्वारशाखा—

नवशाखं महेशस्य देवानां सप्तशाखिकम् ।
पञ्चशाखं सार्वभौमे त्रिशाखं मण्डलेश्वरे ॥५४॥

एकशाखं भवेद् द्वारं शूद्रे वैश्ये द्विजे सदा ।
समशाखं च धूमाये श्वाने रासभवायसे' ॥५५॥

महादेव के प्रासाद का द्वार नवशाखा वाला, दूसरे देवो के प्रासाद का द्वार सात शाखा वाला, चक्रवर्ती राजाओ के प्रासाद का द्वार पाच शाखावाला, सामान्य राजाओ के प्रासाद का द्वार तीन शाखावाला, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र जाति के गृहो के द्वार एक शाखावाला बनावे। दो, चार, छह और आठ, ये सम शाखावाले द्वार धूम, श्वान, खर और ध्वाक्ष आय वाले घरो मे बनाने चाहिये ॥५४-५५॥

शाखा के आय—

"नवशाखे ध्वजश्चैको वृषभ' पञ्चशाखिके ।
त्रिशाखे च तथा सिंह सप्तशाखे गज. स्मृत ॥" अप० सू० १३१

नवशाख मे ध्वज आय, पचशाख मे वृषआय, त्रिशाख में सिंह आय और सप्तशाख मे गज आय देनी चाहिये।

प्रासाद के अंग तुल्य शाखा—

त्रिपञ्चसप्तनन्दाङ्गे शाखाः स्युरङ्गतुल्यकाः ।
हीनशाखं न कर्त्तव्य-मधिकाढ्यं सुखावहम् ॥५६॥

प्रासाद के भद्र आदि तीन, पाच, सात अथवा नव अग हैं। उनमे से जितने अग का प्रासाद हो, उतनी शाखाये बनानी चाहिये। अग से कम शाखा नही बनाना चाहिये, लेकिन यदि अधिक बनावे तो वह सुखदायक है।

शाखा से द्वारका नाम और परिचय—

"पद्मिनी नवशाख च सप्तशाख तु हस्तिनी ।
नन्दिनी पञ्चशाख च त्रिविध चोत्तम भवेत् ॥
मुकुली मालिनी ज्येष्ठा गान्धारी सुभगा तथा ।
मध्यमेति द्विधा प्रोक्ता कनिष्ठा सुप्रभा स्मृता ॥
मुकुली चाष्टशाख च षट्शाख च मालिनी ।

(१) श्वाने ध्वाङ्क्षे च रासभे ।

गान्धारी च चतु. शाख त्रिशाख सुभगा स्मृता ॥

सुप्रभा तु द्विशाख चैकशाख स्मरकीत्तितम् ॥" अप० सू० १३१

नवशाखा वाला द्वारका नाम पद्मिनी, सात शाखा वाला द्वारका नाम हस्तिनी और पंचशाखा वाला द्वारका नाम नन्दिनी है। ये तीनो द्वार उत्तम हैं। मुकुली और मालिनी ये

त्रिशाखा द्वार
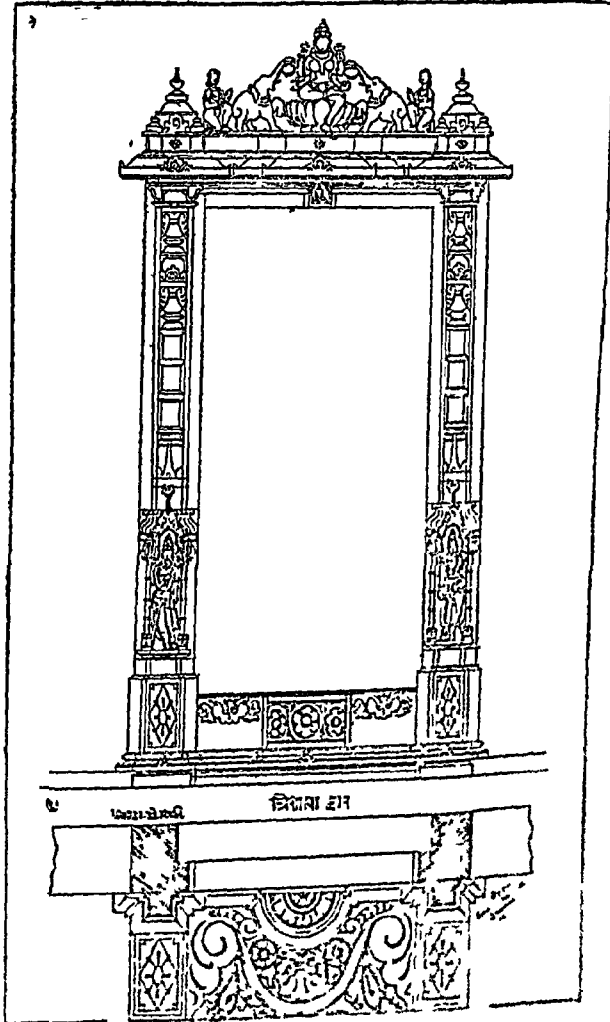
दोनो द्वार ज्येष्ठ है। गाधारी और सुभगा ये दोनो द्वार मध्यम है और सुप्रभा द्वार कनिष्ठ है। आठ शाखावाला द्वार मुकुली, छह शाखावाला मालिनी, चार शाखावाला गाधारी, तीन शाखावाला सुभगा, दो शाखावाला सुप्रभा और एक शाखावाला स्मरकीर्त्ति नाम का द्वार है।

न्यूनाधिक शाखामान—

अङ्गुलं सार्धमर्द्धं वा कुर्याद्धीनं तथाधिकम्।
आयदोषविशुद्ध्यर्थं[1] ह्रस्ववृद्धी न दूषिते ॥५७॥

द्वार शाखा के मान मे शुभ आय न आती हो तो एक, डेढ अथवा आधा अगुल न्यूनाधिक करके श्रेष्ठ आय लानी चाहिये। आय दोष की शुद्धि के लिये शास्त्रीय मान मे इतना न्यूनाधिक परिवर्तन किया जाय तो दोष नही है ॥५०॥

त्रिशाखा—

चतुर्भागाङ्कितं कुर्याच्छाखाविस्तारमानकम्।
मध्ये द्विभागिकं कुर्यात् स्तम्भं पुरुषसञ्ज्ञकम् ॥५८॥

स्त्रीसञ्ज्ञका भवेच्छाखा पार्श्वतो भागभागिका।
निर्गमे चैकभागेन रूपस्तम्भः प्रशस्यते ॥५९॥

शाखा के विस्तार का चार भाग करे। उनमे से दो भाग का रूप स्तभ बनावे। यह स्तभ पुरुष सज्ञक है। इसके दोनो तरफ एक २ भाग की शाखा रक्खे। यह शाखा स्त्री सज्ञक है। रूप स्तभ का निर्गम एक भाग का रखना श्रेष्ठ हैं ॥५९॥

शाखा स्तंभ का निर्गम—

एकांशं सार्धभागं च पादोनद्वयमेव च।
द्विभागं निर्गमे कुर्यात् स्तम्भं द्रव्यानुसारतः ॥६०॥

द्रव्य की अनुकूलता के अनुसार शाखा के स्तभ का निर्गम एक, डेढ, पोना दो अथवा दो भाग तक रख सकते हैं ॥६०॥

शाखोदर का विस्तार और प्रवेश—

पेटके विस्तरं कार्यं प्रवेशस्तु युगांशकः।
कोणिका स्तम्भमध्ये तु भूषणार्थं हि पार्श्वयोः ॥६१॥

(१) 'ह्रासो वृद्धिन दुष्यति।'
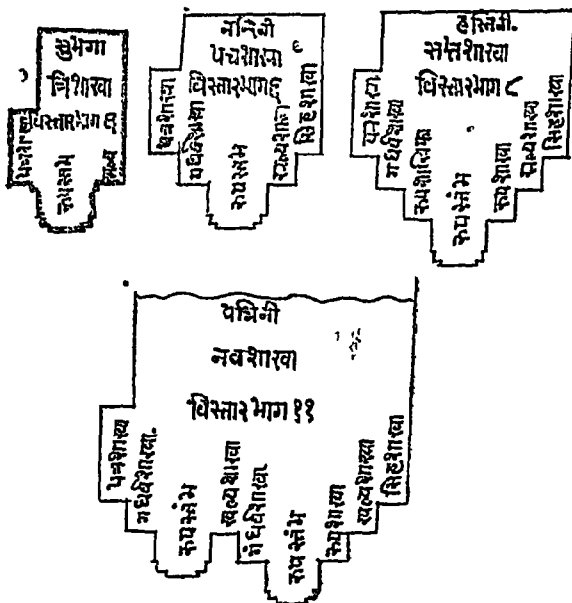
शाखा के विस्तार का चोथा भाग शाखा का प्रवेश (निर्गम) रक्खे। रूपस्तंभ के दानो तरफ शोभा के लिये एक २ कोणिका बनावे, इसमे चपा के फूलो की अथवा जलवट की आकृति करें ॥६१॥

सूत्रधार राजसिंह कृत वास्तुराज में कहा है कि—

"सर्वेपा पेटके व्यास प्रवेशस्तु युगाशक। ।
सार्धवेदाशतो वापि पञ्चाशोऽथवा मत ॥" अध्याय ६

सब शाखाओ का प्रवेश शाखा के विस्तार के चोथे भाग, साढे चार भाग अथवा पाचवें भाग तक रक्खे। अपराजित पृच्छा सूत्र १३२ श्लो० २८ वे मे भी यही लिखा है।

शाखा के द्वारपाल का नाम—

द्वारदैर्घ्ये चतुर्थांशे द्वारपालो विधियते ।
स्तम्भ शाखादिकं शेषं त्रिभागा च विभाजयेत् ॥६२॥
इति त्रिशाखादिलक्षणम् ।

द्वार के उदय का चार भाग करके एक भाग के उदय म द्वारपाल बनावें और बाकी तीन भाग के उदय मे स्तभ और शाखा आदि बनावें ॥६२॥

शाखा के रूप—

"कालिन्दी वामशाखाया दक्षिणे चैव जाह्नवी ।
गङ्गार्कतनयायुग्म-मुभयोर्वामदक्षिणे ॥
गन्धर्वा निर्गमे कार्या एकभागा विचक्षणे ।
तत्सूत्रे खल्वशाखा च सिंहशाखा च भागिका ॥
नन्दी च वामशाखाया कालो दक्षलताश्रित ।
यक्षा स्युरन्तशाखाया निधिहस्ता शुभोदया ॥" अप० सू० १३२

बायी द्वार शाखा के द्वारपाल की बायी ओर यमुना और दाहिनी ओर गगा, तथा दाहिनी द्वार शाखा के द्वारपाल की बायी ओर गगा और दाहिनी ओर यमुना देवी का रूप बनाना चाहिये। गधर्व शाखा के समसूत्र मे खल्वशाखा रक्खे, इन दोनो का निर्गम भी एक भाग रक्खे। सिंहशाखा का निर्गम भी एक भाग रक्खे। हाथ मे निधि को धारण किये हुए बायी शाखा मे नदी और दाहिनी शाखा मे काल नाम के यक्षो के रूप बनावे।

पञ्चशाखा—

पत्रशाखा च गन्धर्वा रूपस्तम्भस्तृतीयकः ।
चतुर्थी खल्वशाखा च सिंहशाखा च पञ्चमी ॥६३॥

इति पञ्चशाखा. ।

पहली पत्रशाखा, दूसरी गान्धर्वशाखा, तीसरा रूपस्तभ, चौथी खल्वशाखा और पाचवी सिंहशाखा है।

पञ्चशाखा का मान—

"शाखाविस्तारमान च षड्भिर्भागैर्विभाजयेत् ।
एकभागा भवेच्छाखा रूपस्तम्भो द्विभागिक ॥
निर्गमश्चैकभागेन रूपस्तम्भ प्रशस्यते ।
कोणिका स्तम्भमध्ये च उभयोर्वामदक्षिणे ॥
गन्धर्वा निर्गमे कार्या एकभागा विचक्षणै ।
तत्सूत्रे खल्वशाखा च सिंहशाखा च भागिका ॥
सपाद सार्धभागो वा रूपस्तम्भ प्रशस्यते ।
उत्सेधस्याष्टमांशेन शस्त शाखोदरं मतम् ॥" अप० सू० १३२

पचशाखा के विस्तार का छह भाग करे। उनमे से एक २ भाग की चार शाखा और दो भाग का रूपस्तम्भ बनावे। रूपस्तम्भ का निर्गम एक भाग रक्खे, इसके दोनो तरफ एक २

कोणी बनावे। गान्धर्व शाखा का निर्गम एक भाग रक्खे। उसके समसूत्र मे खल्वशाखा और सिंहशाखा एक २ भाग निकलती रक्खे। स्तभ का निर्गम सवा अथवा डेढ भाग का भी रख सकते हैं। द्वार के उदय का अष्टमाश शाखा के पेटाभाग का विस्तार रक्खें।

सप्तशाखा के मान--

प्रथमा पत्रशाखा च गन्धर्वा रूपशाखिका।
चतुर्थी स्तम्भशाखा च रूपशाखा च पञ्चमी ॥६४॥
षष्ठी तु खल्वशाखा च सिंहशाखा च सप्तमी।
स्तम्भशाखा भवेन्मध्ये रूपशाखाग्रस्नतः ॥६५॥

इति सप्तशाखा।

प्रथमा पत्रशाखा, दूसरी गान्धर्वशाखा, तीसरी रूपशाखा, चौथी स्तभशाखा, पाचवी रूपशाखा, छट्ठी खल्वशाखा और सातवी सिंहशाखा है। मध्य मे स्तभशाखा रखे। यह रूपशाखा से आगे निकलती हुयी रक्खे ॥६४-६५॥

सप्तशाखा का मान—

"शाखाविस्तारमान तु वसुभागविभाजितम्।
भागभागाश्च शाखा स्यु-र्मध्यस्तम्भो द्विभागिक ॥
कोणिका भागपादेन विस्तारे निर्गमे तथा।
निर्गम· सार्धभागेन रूपस्तम्भ प्रशस्यते ॥
गन्धर्वा सिंहशाखा च निर्गमो भागमेव च।
निर्गमश्च तदर्धेन शेषा शाखा प्रशस्यते ॥" अप० सू० १३२

सप्तशाखा के विस्तार का आठ भाग कर उनमे से प्रत्येक शाखा का विस्तार एक २ भाग और मध्य मे स्तभ का विस्तार दो भाग रक्खे। स्तभ मे दोनो तरफ विस्तार व और निर्गम मे पाव २ भाग की कोणिका बनावे। डेढ़ भाग निकलता रूपस्तभ रखना अच्छा है। गधर्व और सिंहशाखा का निर्गम एक २ भाग और बाकी शाखाओं का निर्गम आधा २ भाग रखना अच्छा है।

नवशाखा के नाम--

पत्रगान्धर्वसञ्ज्ञा च रूपस्तम्भस्तृतीयकः।
चतुर्थी खल्वशाखा च गन्धर्वा तथ पञ्चमी ॥६६॥

रूपस्तम्भस्तथा षष्ठी रूपशाखा ततः परम् ।
खल्वशाखा च सिंहाख्या मूलकर्णेन सम्मिता ।।६७।।

इति नवशाखा' ।

प्रथमा पत्रशाखा, दूसरी गाधर्वशाखा, तीसरी स्तभशाखा, चौथी खल्वशाखा, पांचवी गाधर्वशाखा, छठा रूपस्तभ, सातवी रूपशाखा, आठवी खल्वशाखा और नववी सिंहशाखा है। ये नवशाखा का विस्तार प्रासाद के कोने तक किया जाता है ।।६६-६७।।

नवशाखा का मान—

"शाखाविस्तारमान तु रुद्रभागविभाजितम् ।
द्विभाग स्तम्भ इत्युक्त उभयो कोणिकाद्वयम् ।।
निर्गम सार्धभागेन पादोनद्वयमेव च ।
रूपस्तभद्वय कार्यं गन्धर्वाद्वयमेव च ।।" अप० सूत्र १३२

नवशाखा के विस्तार का ग्यारह भाग करके, उनमे से दोनो स्तभ दो २ भाग रखना चाहिये। उनके दोनो तरफ पाव २ भाग की कोणिकाये बनावे। स्तभका निर्गम डेढा अथवा पौने दुगुना रखे। इन नवशाखाओ मे दो स्तम और दो गाधर्व शाखा है। दोनो स्तभ का विस्तार दो २ भाग और प्रत्येक शाखा का विस्तार एक २ भाग रखना चाहिये।

उत्तरग के देव—

यस्य देवस्य या मूर्त्तिः सैव कार्योत्तरङ्गके ।
शाखायां च परिवारो गणेशश्चोत्तरङ्गके ।।६८।।

इति श्री सूत्रधारमंडनविरचिते वास्तुशास्त्रे प्रासादमण्डने भिट्ट-
पीठमण्डोवरगर्भगृहोदुम्बरद्वारप्रमाणनामस्तृतीयोऽध्यायः ।

प्रासाद के गर्भगृह मे जिस देव की मूर्त्ति प्रतिष्ठित हो, उस देव की मूर्त्ति द्वार के उत्तरग मे रखनी चाहिये। तथा शाखाओ मे उस देव के परिवार का रूप बनाना चाहिये। उत्तरग मे गणेश को भी स्थापित कर सकते हैं ।।६८।।

इति श्री पडित भगवानदास जैन का अनुवादित प्रासादमडन के
तीसरे अध्याय की सुबेधिनी नाम्नी भाषाटीका समाप्त ।।३।।

अथ प्रासादमण्डने चतुर्थोऽध्यायः

द्वारमान से मूर्त्ति और पद्मासन का मान--

द्वारोच्छ्रायोऽष्टनवधा भागमेकं परित्यजेत् ।
शेषे त्र्यंशे द्विभागार्चा त्र्यंशोना द्वारतोऽथवा ॥१॥

द्वार के उदय का आठ अथवा नव भाग करे। उनमे से ऊपर का एक भाग छोड दे, बाकी जो सात अथवा आठ भाग रहे, उनके तीन भाग करें। उनमे से दो भाग की मूर्त्ति और एक भाग ऊचाई मे पद्मासन (पीठिका) बनावे अथवा दरवाजे का तीन भाग करके उसमे से दो भाग की मूर्त्ति बनावें ॥१॥

द्वारदैर्घ्ये तु द्वात्रिंशे तिथिशक्रकलांशकैः ।
ऊर्ध्वार्चा आसनस्था तु मनुविश्वार्कभागतः ॥२॥

द्वार के उदय का बत्तीस भाग करें। उनमे से पद्रह, चौदह अथवा सोलह भाग के मान की खडी मूर्त्ति बनावे। बैठी मूर्त्ति चौदह, तेरह अथवा बारह भाग की बनावे ॥२॥

क्षीरार्णव अ० ११० में लीखा है कि--

"द्वार चाष्टविभक्त च त्रिधा भक्तं च सप्तभि ।
पीठमान भागमेक शेष च प्रतिमा मुने ॥
सप्तभाग भवेद् द्वार षड्भाग च त्रिधाकृतम् ।
द्विभाग प्रतिमामान शेष पीठ हि चोच्यते ॥
द्वार षड्भागिक कुर्यात् त्रिधा पञ्च प्रकल्पयेत् ।
पीठस्चैकेन भागेन द्विभागं प्रतिमा भवेत् ॥
एवमूर्ध्वप्रतिमा च अर्द्धे शयनासन भवेत् ।
पीठमान च नान्यत्र शेषस्थाने च लिङ्गकम् ॥
जलशय्याप्रमाणेन द्वारविस्तारसाधितम् ।
अन्यथा च यदा अर्चा विस्तरं नैव लङ्घयेत् ॥"

द्वार की ऊचाई का आठ भाग करके ऊपर का एक भाग छोड दें, बाकी के सात भाग के, तीन भाग करे, उनमे से दो भाग की प्रतिमा और एक भाग की पीठ (पबासन) बनावें।

अथवा द्वार की ऊचाई का सात भाग करके ऊपर का एक भाग छोड दे, बाकी छह भाग के तोन भाग करे, उनमे से दो भाग की प्रतिमा और एक भाग का पबासन बनावे। द्वार की ऊचाई का छह भाग करके ऊपर का एक भाग छोड दे, बाकी के पाच भाग का तीन भाग करे, उनमे से दो भाग की प्रतिमा और एक भाग का पबासन बनावे। यह खडी प्रतिमा का मान है। शयनासन प्रतिमा के पीठ का मान द्वारोदय के अर्द्धमान का बनावे और बाकी प्रतिमा का मान जाने। जलशय्या वाली प्रतिमा के मानानुसार द्वार का विस्तार रक्खे। अर्थात् जलशय्यावाली प्रतिमा द्वार के विस्तार से अधिक मान की नही बनानी चाहिये।

गर्भगृह का मान—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ।
[२]द्विद्विभागेन द्वौ भित्ती षड्भागं गर्भमन्दिरम् ॥३॥

प्रासाद की समचोरस भूमि के दस भाग करे। उनमे से दो दो भाग की दोनो तरफ की दोवार और बाकी छह भाग का गर्भगृह बनावे ॥३॥

गर्भगृह के मान से मूर्त्तिका मान—

तृतीयांशेन गर्भस्य प्रासादे प्रतिमोत्तमा ।
मध्यमा स्वदशांशोना पञ्चांशोना कनीयसी ॥४॥

गर्भगृह के विस्तार के तीसरे भाग की प्रतिमा बनाना उत्तम है। प्रतिमा का दसवा भाग प्रतिमा के मान में से घटादे तो मध्यम मान की और पाचवा भाग घटादे तो कनिष्ठ मान की प्रतिमा माना जाता है ॥४॥

देवो का दृष्टिस्थान—

आयभागैर्भजेद् द्वार-मष्टममूर्ध्वतस्त्यजेत् ।
सप्तमसप्तमे दृष्टि-र्वृषे सिंहे ध्वजे शुभा ॥५॥

देहली के ऊपर से लेकर उत्तरंग के नीचे भाग तक के द्वार के बीच में आठ भाग करे। उनमें से ऊपर का आठवा भाग छोडकर उसके नीचे का सातवा भाग का आठ भाग करे।

(२) 'भित्तिद्विभागा कर्त्तव्या।'

* कितने ही शिल्पी सातवा और आठवा भाग के मध्य में आख की कीकी रहे, इस प्रकार प्रतिमा की दृष्टि रखते हैं, इससे आय का मेल नहीं मिलता, जिसे उनकी मान्यता प्रमाणिक मालूम नहीं होती।

उनमे से भी ऊपर का एक भाग छोडकर के उसके नीचे का सातवा भाग गज आय है, उसमे सब देवों की दृष्टि रखनी चाहिये। अर्थात् द्वार के मध्य उदय का चौसठ भाग करके उनमे से पचपनवे भाग मे दृष्टि रखे। अथवा आठ भाग वाले सातवे भाग के वृष, सिह और ध्वज आय मे भी, दृष्टि रखना शुभ माना है ॥५॥

विशेष देवो का दृष्टिस्थान—

पष्ठभागस्य पञ्चांशे लक्ष्मीनारायणादिदृक् ।
शयनार्चेशलिङ्गानि द्वारार्द्धं न व्यतिक्रमेत् ॥६॥

द्वार के आठ भागो मे जो छठा भाग है, उसके आठ भाग करके पाचवे भाग मे लक्ष्मीनारायण की दृष्टि रक्खे। शयनासन वाले देव और शिवलिङ्ग की दृष्टि द्वार के अर्धभाग मे रक्खे, किन्तु द्वारार्ध का उल्लघन करके दृष्टि नही रक्खे ॥६॥

देवो का पदस्थान—

पट्टाधो यक्षभूताद्याः पट्टाग्रे सर्वदेवताः ।
तदग्रे वैष्णवं ब्रह्मा मध्ये लिङ्गं शिवस्य च ॥७॥

इति प्रतिमाप्रमाणदृष्टिपदस्थानम् ।

गर्भगृह के स्तभ के ऊपर जो पाट रखा जाता है, उसके नीचे यक्ष, भूत और नाग आदि को स्थापित करे। तथा दूसरे सब देव पाट के आगे स्थापित करे। उसके आगे वैष्णव और ब्रह्मा को और गर्भगृह के मध्य (ब्रह्मभाग) में शिवलिंग को स्थापित करें ॥७॥

वत्थुसार पयरण ३ के मत से पदस्थान—

"गब्भगिहड्ढपणंसा जक्खा पढमसि देवया बीए ।
जिणकिण्हरवी तइए बंभु चउत्थे शिव पणगे ॥"

गर्भगृह् के बराबर दो भाग करे, उनमे से दीवार के तरफ के भाग के पाच भाग करे, इनमे दीवार वाले प्रथम भाग में यक्षको, दूसरे भाग में देवियों को, तीसरे भाग में जिनदेव, कृष्ण (विष्णु) और सूर्य को, चौथे भाग मे ब्रह्मा को और पाचवें भाग मे (गर्भगृह के मध्य भाग मे) शिवलिङ्ग को स्थापित करे।

समरागण सूत्रधार अ० ७० के मत से पदस्थान—

"भक्ते प्रासादगर्भार्द्धे दशधा पृष्ठभागतः ।
पिशाचरक्षोदनुजाः स्थाप्या गन्धर्वगुह्यकाः ॥
आदित्यचण्डिकाविष्णु-ब्रह्मेशानां पदं क्रमात् ॥"

गर्भगृह के बराबर दो भाग करके दीवार की तरफ के अर्धभाग के दस भाग करें, उनमे से दीवार से प्रथम भाग मे पिशाच, दूसरे मे राक्षस, तीसरे मे दैत्य, चौथे मे गधर्व, पाचवे मे यक्ष, छठे मे सूर्य, सातवे मे चडिका, आठवें मे विष्णु, नवे मे ब्रह्मा और दसवे मे शिव को स्थापित करे।

अग्निपुराण अ० ६७ के मत से पदस्थान—

"षड्भिर्विभाजिते गर्भे त्यक्त्वा भाग च पृष्ठत ।
स्थापन पञ्चमांशे च यदि वा वसुभाजिते ।।
स्थापन सप्तमे भागे प्रतिमासु सुखावहम् ।।"

गर्भगृह का छह भाग करें, उनमे से दीवार के पासका एक भाग छोड दें, उसके आगे के पाचवे भाग में सब देवो को स्थापित करे। अथवा गर्भगृह के आठ भाग करके दीवार के पासका एक भाग छोड दे, उसके आगे सातवे भाग में सब देवो को स्थापित करना सुखकारक है। *

प्रहार थर—

छाद्यस्योर्ध्वे प्रहारः स्याच्छृङ्गे शृङ्गे तथैव च ।
प्रासादभृङ्गभृङ्गेषु अधोभागे तु छाद्यकम् ।।८।।

छज्जा के ऊपर प्रहार का थर बनावे। प्रत्येक शृङ्ग के नीचे प्रहार का थर बनाना चाहिये। उसके नीचे छाद्य (छज्जा) बनावे ।।८।।

छाद्यके थरमान—

छाद्यं भागद्वयं सार्धं सार्धभागं च पालवम् ।
मुण्डलीकं भागमेकं भागेन तिलकस्तथा ।।९।। A

छज्जा का उदय दो भाग अथवा डेढ (ढाई ?) भाग, पालव ~~डेढ भाग~~ मुंडलिक एक भाग और तिलक एक भाग रखना चाहिये ।।९।।

शृंगक्रम—

मूलकर्णे रथादौ च एक द्वित्रिक्रमान् न्यसेत् ।
निरन्धारे मूलभित्तौ सान्धारे भ्रमभित्तिषु ।।१०।।

*विशेष माहिती के लिये स्वय द्वारा अनुवादित 'देवतामूर्त्ति प्रकरण' और 'रूपमण्डन' देखना चाहिये।
A यह श्लोक बहुतसी प्रतो मे नही है।

मूलकर्ण (कोना), रथ, उपरथ आदि प्रासाद के अंग हैं, उनके ऊपर एक, दो अथवा तीन शृङ्ग अनुक्रम से चढावे। निरधार (प्रकाश वाला) प्रासाद की मुख्य दीवार पर और साधार (परिक्रमा वाला) प्रासाद हो तो परिक्रमा की दीवार पर शृङ्गो का क्रम रक्खे ॥१०॥

उरःशृंग का क्रम—

उरुशृङ्गाणि भद्रेस्यु-रेकादिग्रहसंख्यया ।
त्रयोदशोर्ध्वे सप्ताधो लुप्तानि चोरुशृङ्गकैः ॥११॥
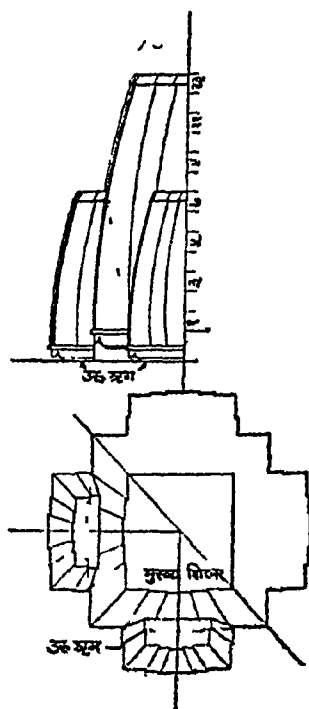
उरुश्रृंगकी रचना

प्रासाद के भद्र के ऊपर एक से नव तक उर शृङ्ग चढाये जाते हैं। शिखर के उदय का तेरह भाग करके उनमें से सात भाग के मान का उर.शृङ्ग बनावे। दूसरा उर शृङ्ग प्रथम के उर शृङ्ग का तेरह भाग करके उनमें से सात भाग का बनावे। इस प्रकार ऊपर के उर शृङ्ग का तेरह भाग करके सात भाग के उदय म नीचे का उर शृङ्ग रक्खे ॥११॥
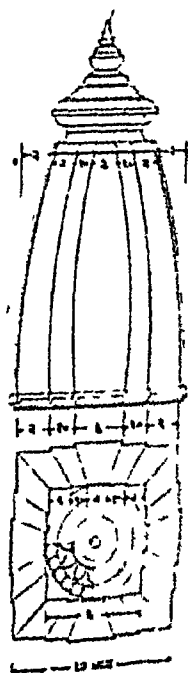
शिखरका निर्माण

शिखर निर्माण—

रेखामूले च दिग्भागं कुर्यादग्रे षडंगकम् ।
षड्बाह्ये दोषदं प्रोक्त पञ्चमध्ये न शोभनम् ॥१२॥

शिखर के नीचे के दोनों कोने के विस्तार का दस भाग करे। उनमें से शिखर के ऊपर के स्कंध का विस्तार छह भाग रखे। इस स्कंध का विस्तार छह भाग से [illegible]

शिखर दोष कारक होता है और पाच भाग से कम रक्खे तो शिखर शोभायमान नही होता ॥१२॥

ज्ञानरत्नकोष में लीखा है कि—

"चतुरस्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रतिभाजिते ।
द्वौ द्वौ भागौ तु कर्त्तव्यौ कोणे कोणे न संशय ॥
भद्रं भागत्रयं कार्यं सार्धभाग तु चानुगम् ।
व्यासमानं सपादं च उच्छ्रयेण तु कारयेत् ॥
स्कन्धं षड्भागिकं कार्यं तस्योर्ध्वं नवधा भवेत् ।
चतुर्भागायतं कोणं त्रिभिर्भागैस्तु चानुगम् ॥
भद्रपूर्णं तु द्विभिर्भागै–स्ततस्तु साधयेत् कलाम् ॥"

प्रासाद के समचोरस क्षेत्र का दस भाग करे। उनमे से दो दो भाग के दो कोण, तीन भाग का भद्र और डेढ २ भाग के दो प्रतिकर्ण बनावे। शिखर विस्तार से ऊंचाई मे सवाया रक्खे और उसका स्कंध छह भाग विस्तार मे रक्खे। इसका नव भाग करके चार भाग के दोनो कोण, तीन भाग के दोनो प्रतिकर्ण और पूरा भद्र दो भाग का रक्खे। पीछे रेखा बनावे।

२५६ रेखा का नकशा

कलारेखा की साधना—

"आदिकोणं द्विधा कृत्य
प्रथम वेदभाजितम् ॥
द्वितीयं तु त्रिभिर्भागै-रेव
सप्तकला भवेत् ।
उदयं द्वयष्टभिर्भागै. कृत्वा
रेखा समालिखेत् ॥
ऊर्ध्वतिर्यग् भागाना भागे
भागे तु लाञ्छयेत् ।
एवं तु सिध्यते रेखा भद्रे
कोणे तयानुगे ॥"

एक तरफ के कोण का दो भाग करे। उनमे से प्रथम भाग का चार और दूसरे भाग का
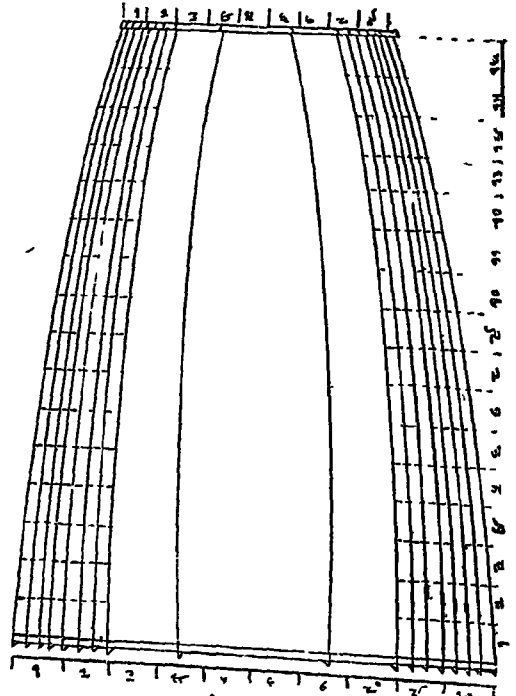
तीन भाग करने से सात कला रेखा होती हैं। इसी तरह दूसरी तरफ के कोण की भी सात कला रेखा होती हैं। ऐसी कुल चौदह कला रेखाओं में दोनो प्रतिकर्ण की दो कला रेखा मिलाने से सोलह कला रेखा होती है। इनके उदय में सोलह २ भाग करने से दोसौ छप्पन कला रेखायें होती है।

उदयभेदोद्भवरेखा—

सपादं शिखरं कार्यं सकर्णं शिखरोदयम् ।
सपादकर्णयोर्मध्ये रेखाः स्युः पञ्चविंशतिः ॥१३॥

मूलरेखा के विस्तार से शिखर का उदय सवाया करें। सवाया शिखर में दोनों कोने के मध्य में पचीस रेखायें हैं ॥१३॥

सपादकर्णयोर्मध्ये[1] उदये पञ्चविंशतिः ।
प्रोक्ता रेखाः कलाभेदैर्वलये पञ्चविंशतिः ॥१४॥

सवाया उदय वाले शिखर के दोनों कोने के मध्य में पचीस रेखा उदय में होती हैं। कला के भेद से ये शिखर के नमन में पचीस रेखायें है ॥१४॥

कलाभेदोद्भव रेखा—

पञ्चादिनन्दयुग्मान्तं खण्डानि तेष्वनुक्रमात् ।
अंशवृद्ध्या कलाः कार्या दैर्घ्ये स्कन्धे च तत्समाः ॥१५॥

शिखर के उदय का पाच से लेकर उनतीस खंड करे। उन खंडों में अनुक्रम से एक २ कला उदय में बढ़ावे। जैसे-प्रथम पाच खंडो में एक से पाच कला, छट्ठे में छह और सातवें में सात, इस प्रकार उनतीसवे खंड में उनतीस कला हैं। उदय में जितनी कला हो, उतनी कला संख्या स्कंध में भी बनाना चाहिये ॥१५॥

अष्टादावष्टषष्ट्यन्तं चतुर्वृद्ध्या च षोडश ।
दैर्घ्यतुल्याः कलाः स्कन्धे एकहीनाशोऽशोभनम् ॥१६॥

प्रथम समचार की तिन खंडों में आठ २ कला रेखा हैं। पीछे [illegible] चार २ कला बढ़ाने से अठारहवें खंड में अड़सठ कला रेखा होती है। उदय में जितनी कला हो, उतनी स्कंध में भी बनावें। एक भी कम रखे तो शोभायमान नहीं लगता ॥१६॥

(१) पुनरुक्ति मालूम होता है।

रेखाचक्र—

ऊर्ध्वा अष्टादशांशाः स्यु-स्तिर्यक्षोडश एव च ।
चक्रेऽस्मिंश्च भवन्त्येव रेखाणां षट्शरद्वयम् ॥१७॥

शिखर के उदय मे अठारह और तिरछी सोलह रेखा होती हैं, ऐसा चक्र बनाने से दोसौ छप्पन रेखाये होती हैं, उपर 'कला रेखा की साधना' पढे ॥१७॥

प्रथम समचार की त्रिखंडा कलारेखा—

त्रिखण्डत् खण्डवृद्धिश्च यावदष्टादशैव हि ।
एकैकांशे कलाष्टौ च समचारस्तु षोडश ॥१८॥

त्रिखड से लेकर एक २ खड बढाते हुए अठारह खड तक बढावे । प्रथम प्रत्येक त्रिखड मे समचार की आठ २ कला रेखाये है । ऐसे सोलह चार है ॥१८॥

दूसरा सपादचार की त्रिखडा कलारेखा—

द्वितीयप्रथमे खण्डे कलाष्टौ द्वितीये नव ।
तृतीये दशखण्डेषु शेषेषूर्ध्वेऽप्ययं क्रमः ॥१९॥

दूसरा सपादचार हो तो प्रथम खड मे आठ, दूसरे खड मे नव और तीसरे खड में दस कला रेखा बनावे । इस प्रकार बाकी के चारो मे भी इसी क्रम रेखा बनावे ॥१९॥

तीसरा सार्द्धचार की त्रिखंडा कलारेखा—

अष्टदिक्सूर्यभागैश्च त्रिखण्डा तृतीया भवेत् ।
अनेन क्रमयोगेन कोष्ठानङ्कैः प्रपूरयेत् ॥२०॥

तीसरा सार्धचार हो तो प्रथम खड मे आठ, दूसरे खड मे दस और तीसरे खड मे बारह कलारेखा बनावे । इस क्रम से दूसरे चारो के कोठे को अको से पूर्ण करे ॥२०॥

सोलह प्रकार के चार—

'सम सपाद सार्द्धश्च पादोनो द्विगुणस्तथा ।
द्विगुणश्च सपादो द्वौ सार्ध पादोनकस्त्रय ॥

---

* श्लोक १८ से २० तक का खुलासा वार आशय समझने के लिये देखो चार के भेदो से त्रिखडा की रेखा और कला जानने का यत्र ।

त्रिखंडा की रेखा और कला—

नम्बर	चार के नाम	रेखा का नाम	प्रथम खंडकी कला	द्वितीय खंडकी कला	तृतीय खंडकी कला	कला की कुल संख्या
१	समचार ८×१=८	शशिनी	८	८	८	२४
२	सपादचार ८×१।=१०	शीतला	८	९	१०	२७
३	सार्धचार ८×१॥=१२	सौम्या	८	१०	१२	३०
४	पादोनद्वयचार ८×१॥।=१४	शान्ता	८	११	१४	३३
५	द्विगुणचार ८×२=१६	मनोरमा	८	१२	१६	३६
६	सपाद द्विगुणचार ८×२।=१८	शुभा	८	१३	१८	३९
७	सार्धद्विगुणचार ८×२॥=२०	मनोभवा	८	१४	२०	४२
८	पादोनत्रयचार ८×२॥।=२२	वीरा	८	१५	२२	४५
९	त्रिगुणचार ८×३=२४	कुमुदा	८	१६	२४	४८
१०	सपाद त्रिगुणचार ८×३।=२६	पद्मकोसरा	८	१७	२६	५१
११	सार्द्ध त्रिगुणचार ८×३॥=२८	ललिता	८	१८	२८	५४
१२	पादोन चतुष्क ८×३॥।=३०	लीलावती	८	१९	३०	५७
१३	चतुर्गुणचार ८×४=३२	त्रिदशा	८	२०	३२	६०
१४	सपाद चतुष्कचार ८×४।=३४	पूर्णमण्डना	८	२१	३४	६३
१५	सार्धचतुष्कचार ८×४॥=३६	पूर्णनंदा	८	२२	३६	६६
१६	पादोन पंचकचार ८×४॥।=३८	महाश्री	८	२३	३८	६९

इस प्रकार चतुःखंडादिकी कला रेखाएं चार के भेदों से समझना चाहिये।

त्रिगुणोऽथ सपादोऽसौ सार्ध पादोनवेदक ।
चतुर्गुण सपादोऽसौ सार्ध पादोनपञ्चक ॥
इति षोडशधा चार त्रिखण्डाद्यासु लक्षयेत् ॥" अप० सू० १३९

त्रिखडादि खडो मे सोलह कलाचारो के भेदो से सोलह २ रेखाये उत्पन्न होती है। ये सोलह कलाचार इस प्रकार है—प्रथम सम (बराबर) चार, दूसरा सपाद (सवाया) चार, तीसरा सार्द्ध (डेढा) चार, चौथा पौने दो गुणा, पाचवा दो गुणा, छट्ठा सवा दो गुणा, सातवा ढाईगुणा, आठवा पौने तीनगुणा, नवा तीनगुणा, दसवा सवा तीनगुणा, ग्यारहवा साढे तीनगुणा, बारहवा पौने चार गुणा, तेरहवा चार गुणा, चौदहवा सवा चार गुणा, पद्रहवा साढे चार गुणा, और सोलहवा पौने पाच गुणा है।

रेखासंख्या—

रेखाणां जायते सख्या षट्पञ्चाशच्छतद्वयम् ।
दैर्घ्ये भवन्ति यावन्त्यः कलाः स्कन्धेऽपि तत्समाः ॥२१॥

इति रेखानिर्णय[१] ।

सोलह प्रकार के कलाचारो के भेदो से प्रत्येक त्रिखडादि मे सोलह २ रेखाये उत्पन्न होती है। इसलिये रेखाओ की कुल सख्या दोसौ छप्पन होती हैं। शिखर के उदय मे जितनी कलारेखा उत्पन्न हो, उतनी स्कध मे भी बनानी चाहिये ॥२१॥

मडोवर और शिखर का उदयमान—

विंशद्भिर्विभजेद् भागैः शिलातः कलशान्तकम् ।
मण्डोवरोऽष्टसार्धाष्ट-नवांशैः शिखरं[१] परम् ॥२२॥

खरशिला से लेकर कलश के अत भाग तक के उदय के बीस भाग करे। उनमे से आठ, साढे आठ अथवा नव भाग का मडोवर का उदय रक्खे, इसी क्रम से ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ मान के मडोवर का उदय होता है। ऐसा अप० सू० १३८ मे भी कहा है। बाकी जो भाग रहे, उतने उदय का शिखर बनावे ॥२२॥

शिखर विधान—

रेखामूलस्य विस्तारात्[२] पञ्चकोशं समालिखेत् ।
चतुर्गुणेन सूत्रेण सपादः शिखरोदयः ॥२३॥

---

(१) 'शिखरोदयम्' । (२) 'विस्तारे' ।

मूलरेखा के विस्तार से चार गुणा सूत्र से दोनों कोने के मूल बिंदु से दो गोल बनावें। जिसके दोनों गोल के स्पर्श से कमल की पखुडी जैसी आकृति वाला पद्मकोश बन जाता है। उसमें दोनों कोने के मध्य विस्तार से सवाया शिखर का उदय रक्खे ॥२३॥✽

ग्रीवा, आमलसार और कलशका मान—

> स्कन्धकोशान्तरे सप्त-भक्ते ग्रीवा तु भागतः।
> सार्धं आमलसारश्च पद्मच्छत्रं[3] तु सार्धकम् ॥२४॥
> त्रिभाग उच्चकलशो द्विभागस्तस्य विस्तरः।
> प्रासादस्याष्टमांशेन पृथुत्वं कलशाण्डकम् ॥२५॥

ऊपर के लिखे अनुसार सवाया शिखर का उदय करने के बाद जो पद्मकोश का उदय बाकी रहता है, उसमें ग्रीवा, आमलसार और कलश बनावे। जैसे—शिखर के स्कंध से लेकर पद्मकोश के अन्त्य बिन्दु तक के उदय का सात भाग करे। उनमें से एक भाग की ग्रीवा, डेढ़ भाग का आमलसार, डेढ भाग का पद्मच्छत्र (चंद्रिका) और तीन भाग का कलश बनावे। द्विभाग के विस्तार वाले कलश का बीजोरा बनावे। कलश के अंडा का विस्तार प्रासाद के आठवें भाग का रक्खे ॥२४-२५॥

शुकनासका उदय—

> छाद्यतः स्कन्धपर्यन्त-मेकविंशतिभाजिते।
> अङ्कदिग्रुद्रसूर्यांशं विश्वांशैस्तस्य चोच्छ्रितिः ॥२६॥

छज्जा से लेकर शिखर के स्कंध तक के उदय का इक्कीस भाग करे। इनमें से नव, दश, ग्यारह, बारह अथवा तेरह भाग तक शुकनास का उदय रक्खे ॥२६॥

सिंहस्थान—

> शुकनासस्य सस्थाने छाद्यो पञ्चधा मतम्।
> एकत्रिपञ्चसप्ताङ्क-सिंहस्थानानि कल्पयेत् ॥२७॥

---

(३) 'पद्म'।

✽ शिल्पियों की मान्यता है कि—[illegible] (पायचा) से शिखर का उदय [illegible] [illegible] के [illegible] चार गुणा सूत्र से, [illegible] [illegible] गुणा [illegible] [illegible] गुणा सूत्र और [illegible] उदय [illegible] हो तो [illegible] गुणा सूत्र से [illegible] [illegible] कमल की पखुडी जैसा आकार बन जाता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] बाकी रहे उदय में आमलसार और कलश आदि बनावें।

छज्जा के ऊपर शुकनास का उदय पाच प्रकार का माना हैं। उनमे से शुकनास के उदय का जो मान आया हो उसका नव भाग करे। इनमे से एक, तीन, पाच, सात अथवा नव, इन पाच भागो मे से किसी भी भाग मे सिह स्थान की कल्पना कर सकते हैं। अर्थात् उस स्थान पर सिह रखा जाता है ॥२७॥

*कपिली (कोली) का स्थान—

द्वारस्य दक्षिणे वामे कपिली षड्विधा मता।
तदूर्ध्वे शुकनासा स्यात् सैव प्रासादनासिका ॥२८॥

गर्भगृह के द्वार के ऊपर दाहिनी और बायी ओर छह प्रकार से कोली बनावे। उसकी ऊचाई मे शुकनास बनावे, यह प्रासाद की नासिका है ॥२८॥

कपिली का मान—

प्रासादो दशभागश्च द्वित्रिवेदांशसम्मिताः।
प्रासादार्धेन पादेन त्रिभागेनाथ निर्मिता ॥२९॥

प्रासाद के विस्तार का दस भाग करे, उनमे से दो, तीन अथवा चार भाग की, तथा प्रासाद के मान से आधे, चौथे अथवा तीसरे भाग के मान की, ऐसे छह प्रकार के मान से कपिली (कोली) बनाने का विधान है ॥२९॥

छह प्रकार की कपिली—

"अञ्चिता कुञ्चिता शस्या त्रिधोदितक्रमागता ।
मध्यस्था भ्रमा सभ्रमा षट्कोल्य परिकीर्तिता ॥
प्रासादे दशधा भक्ते भूमिसीमा विचक्षण ! ।
अञ्चिता च द्विभागा स्यात् त्रिभागा कुञ्चिता तथा ॥
शस्या चैव चतुर्भागा त्रिधा चोक्तक्रमागता ।
॥
प्रासादपादमध्यस्था भ्रमा सभ्रन्त्रिभागत ।
अर्द्धे तु सभ्रमा कार्या प्रासादस्य प्रमाणत ॥" अप० सू० १३८

* गर्भगृह के द्वार के मडप को कोली मडप कहते हैं। उसके छज्जा के ऊपर शुकनास के दोनो तरफ शिखर के आकार का मडप किया जाता है, उसको आधुनिक शिल्पीयो प्रासादपुत्र कहते हैं। उसका नाम कपिली अथवा कोली है।

प्रचिता, कुञ्चिता, दस्था, मध्यस्था, भ्रमा और सभ्रमा ये छह प्रकार के कोली के नाम हैं। प्रासाद के विस्तार का दस भाग करके, उनमें से दो भाग की कोली बनावे, उसका नाम प्रचिता, तीन भाग वाली कोली का नाम कुञ्चिता और चार भाग वाली कोली का नाम दस्था है। तथा प्रासाद के विस्तार मान के चौथे भाग की कोली बनावे, उसका नाम मध्यस्था, तीसरे भाग वाली कोली का नाम भ्रमा और आधे भाग वाली कोली का नाम सभ्रमा है।

प्रासाद के अण्डक और आभूषण—

शृङ्गोरुशृङ्गप्रत्यङ्ग गणयेदण्डकानि[1] च।
तवङ्ग तिलकं कर्णं कुर्यात् प्रासादभूषणम् ॥३०॥

शिखर, उरुशृङ्ग, प्रत्यग और शृङ्ग, ये प्रासाद के अण्डक माने जाते हैं, ऐसा विद्वान् लोग मानते है। तथा तवग, तिलक और सिंहकर्ण ये प्रासाद के आभूषण माने जाते हैं ॥३०॥

शिखर के नमन का विभाग—

दशांशे शिखरे मूले अग्रेतननवांशके।
सार्द्धांशकौ रथौ कर्णौ द्वौ शेषं भद्रमिष्यते ॥३१॥

शिखर के मूल मे दस भाग और ऊपर स्कध के नव भाग करे, उनमे से डेढ २ भाग के दो प्रतिरथ और दो दो भाग के दोनों कोने बनावे। बाकी जो तीन भाग नीचे और दो भाग ऊपर बचे हैं, उस मानका भद्र बनावे ॥३१॥

आमलसार का मान—

रथयोरुभयोर्मध्ये वृत्तमामलसारकम्।
उच्छ्रयो विस्तरार्धेन चतुर्भागैर्विभाजयेत् ॥३२॥
ग्रीवा चामलसारश्च पादोना च सपादकः।
चन्द्रिका भागमानेन भागेनामलसारिका[1] ॥३३॥

दोनो प्रतिरथ के मध्य विस्तार के मान का गोल आमलसार बनाना चाहिये। इसकी ऊचाई विस्तार से आधी रखे। ऊचाई का चार भाग करे। उनमे से पौने भाग की ग्रीवा (गला), सवा भाग का आमलसार, एक भाग की चन्द्रिका और एक भाग की आमलसारिका बनावे ॥३२-३३॥

(१) 'अण्डकान् गणयेत् सुधी'।

प्रकारान्तर से आमलसार का मान--

"स्कन्ध' षड्भागको ज्ञेय सप्ताशामलसारक ।
क्षेत्रमष्टविंशभागै-रुच्छ्रये च तदर्धत ॥
ग्रीवा भागत्रय कार्या अण्डक पञ्चभागक ।
त्रिभागा चन्द्रिका चैव तथैवामलसारिका ॥
निर्गमे षट्सार्धभागो भवेदामलसारिका ।
चन्द्रिका द्विसार्धभागा अण्डक पञ्च एव च ॥ " ज्ञान प्र० दी० अ० ६
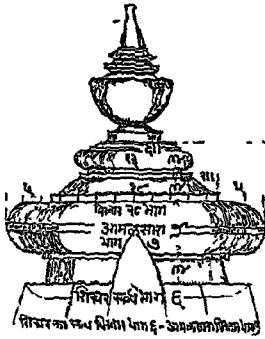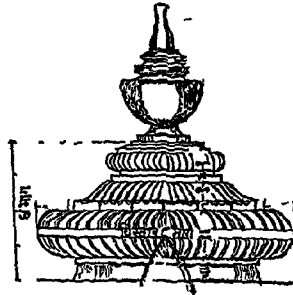
क्षीरार्णवमते आमलकारक मान स्वमते आमलसारका मान

स्कध का विस्तार छह भाग और आमलसार का विस्तार सात भाग रक्खे। आमलसार के विस्तार का अठाईस भाग और ऊचाई का चौदह भाग करे। उदय मे तीन भाग का गला, पाच भाग का अडक, तीन भाग की चन्द्रिका और तीन भाग की आमलसारिका रक्खे। आमलसार के मध्य गर्भ से विस्तार में साढे छह भाग निकलती आमलसारिका, इससे ढाई भाग निकलती चद्रिका और इससे पाच भाग निकलता अडक (आमलसार) रखना चाहिये।

आमलसारके नीचे शिखरके कोणरूप--

"शिवे तु चेश्वर रूप ध्यानमग्न विचक्षण ।।
शिखरकर्णे दातव्य जिने कुर्याज्जिनेश्वर ॥" क्षीरार्णवे।

शिखर के आमलसार के नीचे और स्कध के कोने के ऊपर शिवालय हो तो ध्यान मे मग्न ऐसे शिव के रूप तथा जिनालय हो तो जिनदेव के रूप रखे जाते हैं।

शयन चापि निर्दिष्ट पद्म वै दक्षिणे करे ।
त्रिताक करे वामे कारयेद्धृदि सस्थितम् ॥"

यह सुवर्णपुरुष देवालय का जीवस्थान है, इसलिये उसको देवालय मे स्थापना करने का स्थान कहता हूँ—यह छज्जा के प्रवेश मे, शिखर के मध्य भाग मे अथवा उसके ऊपर, शुकनास के अन्तिम स्थान मे, वेदी के ऊपर और दो माल के मध्य गर्भ मे स्थापन करना चाहिये। यह हृदयवर्णक (जीव) विधि है। इसको तावे के पलग के ऊपर रेशम की शय्या बिछा कर, उसके ऊपर शयन कराना चाहिये। उसके दाहिने हाथ मे कमल और बाये हाथ मे ध्वजा रखकर वह हाथ छाती के ऊपर रखना चाहिये।

प्रमाण तस्य वक्ष्यामि प्रासादादौ समस्तके ।
यावच्छतार्धं हस्तादे कल्पयेच्च यथाक्रमम् ॥
वृद्धिरर्धाङ्गुलाद्धस्ते यावन्मेरु प्रकल्पयेत् ।
एवविध प्रकर्त्तव्य सर्वकामफलप्रदम् ॥
हेमज तारज वापि ताम्रज वापि भागश ।
कलशे चाम्बुपूर्णे तु सौवर्ण पुरुष न्यसेत् ॥
पर्यङ्कस्य चतु पत्सु कुम्भाश्चत्वार एव च ।
हिरण्यनिधिसयुक्ता आत्ममुद्राभिरङ्किता ॥
एवमारोपयेद् देव यथोक्त वास्तुशासने ।
तस्य नैव भवेद् दुख यावदाभूत सम्प्लवम् ॥"

अब सुवर्ण पुरुष का प्रमाण कहता हूँ—एक हाथ से पचास हाथ तक के प्रासाद के लिये प्रत्येक हाथ आधा २ अगुल बढा करके बनावे। यह सोना, चादी अथवा ताबा का बनाकर जलपूर्ण कलश मे स्थापन करे। पीछे उसको पलग के ऊपर रक्खे। इसके पश्चात् अपने नाम वाली सुवर्णमुद्रा से भरे हुए चार कलश पलग के चारो पायो के पास रक्खे। इस प्रकार सुवर्णपुरुष को स्थापित करने से जब तक जगत विद्यमान रहे, तब तक किसी प्रकार का दुख देवालय बधाने वाले को नही होता है।

कलश की उत्पत्ति और स्थापना—

क्षीरार्णवे समुत्पन्नं प्रासादस्याग्रजातकम् ।
माङ्गल्येषु च सर्वेषु कलशं स्थापयेद् बुधः ॥३६॥

जब देवो ने क्षीरसमुद्र का मथन किया, तब उसमे से चौदह रत्न प्राप्त हुए थे। इन चौदह रत्नो मे एक काम कुम्भ नाम का श्रेष्ठ कलश भी प्राप्त हुआ था। यह प्रासाद के अग्र

सुवर्णपुरुष (प्रासाद पुरुष) का स्थापनक्रम—

घृतपात्रं न्यसेन्मध्ये ताम्रतारं सुवर्णजम् ।
सौवर्णपुरुषं तत्र तुलीपर्यङ्कशायिनम् ॥३४॥

आमलसार के गर्भ में घी से भरा हुआ सोना, चांदी अथवा तांबे का कलश सुवर्णपुरुष के पास रखना चाहिये।* तथा चाँदी अथवा चंदन का पलंग रक्खे, उसके ऊपर रेशम की शय्या बिछा करके, उस पर सुवर्णपुरुष को शयन करावे। यह विधि शुभ दिन में वास्तु पूजन करके करनी चाहिये। क्योंकि यह प्रासाद का मर्मस्थान (जीवस्थान) है ॥३४॥

सुवर्ण पुरुष का मान और उसकी रचना—

प्रमाणं पुरुषस्यार्धा-ङ्गुलं कुर्यात् करं प्रति ।
त्रिपताकं करे वामे हृदिस्थं दक्षिणाम्बुजम्[1] ॥३५॥

प्रासाद पुरुष का प्रमाण प्रासाद के विस्तार के अनुसार प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढ़ा करके बनावे। अर्थात् एक हाथ के प्रासाद में आधा अंगुल, दो हाथ के प्रासाद में एक अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद में डेढ अंगुल और चार हाथ के प्रासाद में दो अंगुल, इस प्रकार प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढ़ा करके बनावे। इस सुवर्णपुरुष के बायें हाथ में ध्वजा रखकर के यह छाती पर और दाहिना हाथ कमलयुक्त रक्खे ॥३५॥

अपराजितपृच्छासूत्र १५३ में कहा है कि—

"अथात: सम्प्रवक्ष्यामि पुरुषस्य प्रवेशनम् ।
न्यसेद् देवालयेष्वेव जीवस्थानफलं भवेत् ॥
छादनोपप्रवेशेषु शृङ्गमध्येऽथवोपरि ।
शुकनासावसानेषु वेद्यूर्ध्वे भूमिकान्तरे ॥
मध्यगर्भे विधातव्यो हृदयवर्णको विधिः ।
हंसतुली ततो कुर्यात् ताम्रपर्यङ्कसंस्थिताम् ॥

* कुछ शिल्पियों का मत है कि—घी से भरा हुआ सोना, चांदी अथवा तांबा के कलश में सुवर्ण पुरुष को रखकर के, वह कलश पलंग पर रक्खें।

(१) 'दक्षिणं करम्'।

शयन चापि निर्दिष्ट पद्म वै दक्षिणे करे ।
त्रिपताक करे वामे कारयेद्धृदि सस्थितम् ॥"

यह सुवर्णपुरुष देवालय का जीवस्थान है, इसलिये उसको देवालय मे स्थापना करने का स्थान कहता हूँ—यह छज्जा के प्रवेश मे, शिखर के मध्य भाग मे अथवा उसके ऊपर, शुकनास के अन्तिम स्थान मे, वेदी के ऊपर और दो माल के मध्य गर्भ मे स्थापन करना चाहिये। यह हृदयवर्णक (जीव) विधि है। इसका तावे के पलग के ऊपर रेशम की शय्या बिछा कर, उसके ऊपर शयन कराना चाहिये। उसके दाहिने हाथ मे कमल और वाये हाथ मे ध्वजा रखकर वह हाथ छाती के ऊपर रखना चाहिये।

प्रमाण तस्य वक्ष्यामि प्रासादादौ समस्तके ।
यावच्छतार्धं हस्तादे कल्पयेच्च यथाक्रमम् ॥
वृद्धिरर्धाङ्गुलाद्धस्ते यावन्मेरु प्रकल्पयेत् ।
एवविध प्रकर्त्तव्य सर्वकामफलप्रदम् ॥
हेमज तारज वापि ताम्रज वापि भागश ।
कलशे चाम्बुपूर्णे तु सौवर्ण पुरुष न्यसेत् ॥
पर्यङ्कस्य चतु पत्सु कुम्भाश्चत्वार एव च ।
हिरण्यनिधिसयुक्ता आत्ममुद्राभिरङ्किता ॥
एवमारोपयेद् देव यथोक्त वास्तुशासने ।
तस्य नैव भवेद् दुख यावदाभूत सम्प्लवम् ॥"

अब सुवर्ण पुरुष का प्रमाण कहता हूँ—एक हाथ से पचास हाथ तक के प्रासाद के लिये प्रत्येक हाथ आधा २ अगुल बढा करके बनावे। यह सोना, चादी अथवा तावा का बनाकर जलपूर्ण कलश मे स्थापन करे। पीछे उसको पलग के ऊपर रक्खे। इसके पश्चात् अपने नाम वाली सुवर्णमुद्रा से भरे हुए चार कलश पलग के चारो पायो के पास रक्खे। इस प्रकार सुवर्णपुरुष को स्थापित करने से जब तक जगत विद्यमान रहे, तब तक किसी प्रकार का दु ख देवालय बधाने वाले को नही होता है।

कलश की उत्पत्ति और स्थापना—

क्षीरार्णवे समुत्पन्नं प्रासादस्याग्रजातकम् ।
माङ्गल्येषु च सर्वेषु कलशं स्थापयेद् बुधः ॥३६॥

जब देवो ने क्षीरसमुद्र का मथन किया, तब उसमे से चौदह रत्न प्राप्त हुए थे। इन चौदह रत्नो मे एक काम कुम्भ नाम का श्रेष्ठ कलश भी प्राप्त हुआ था। यह प्रासाद के अग्र

भाग (शिखर) पर और सब मांगलिक स्थानो में विद्वान् लोग स्थापित करते हैं ।।३६।।

कलश का उदयमान—

पूर्वोक्तमानतो ज्येष्ठः षोडशांशाधिको भवेत् ।
द्वात्रिंशदंशतो[1] मध्यो नवांशोऽभ्युदयं भवेत् ।।३७।।
ग्रीवापीठं भवेद् भागं त्रिभागेनाण्डकं तथा ।
कर्णिके भागतुल्ये च त्रिभागं बीजपूरकम् ।।३८।।
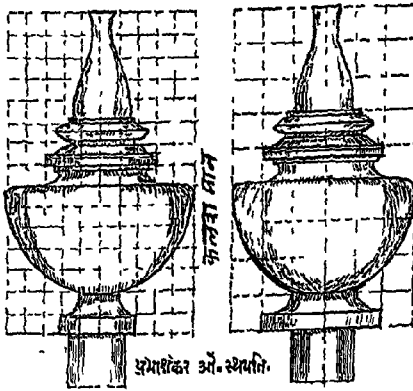
पूर्वोक्त श्लोक २५ में कलश का जो मान लिखा है, उसका मान मे उसका सोलहवा भाग बढावे तो ज्येष्ठ मान का और बत्तीसवा भाग बढावे तो मध्यम मान के कलश का उदय होता है। जो उदय आवे उसका नव भाग करे, उन मे से एक भाग की ग्रीवा और पीठ, तीन भाग का अडक (कलश का पेट), दोनो कर्णिका (एक छज्जी और एक कणी) एक २ भाग और तीन भाग का बीजोरा उदय मे रक्खे ।।३७-३८।।

कलश का विस्तार मान—

एकांशमग्रे द्वौ मूले वह्निवेदांशकर्णिके ।
ग्रीवा द्वौ पीठमर्द्ध[2] द्वौ षड्भाग विस्तराण्डकम् ।।३९।।

इति कलश ।

बीजोरा के अग्र भाग का विस्तार एक भाग और मूल भाग का विस्तार दो भाग, ऊपर की कणी का विस्तार तीन भाग, नीचे की कणी (छाजली) का विस्तार चार भाग, गला का विस्तार दो भाग, आधी पीठ का विस्तार दो भाग (पूरी पीठ का विस्तार चार भाग) और कलश के पेटका विस्तार छह भाग हैं ।।३९।।

१ 'तावदशीन. कनीयो'

ध्वजादंड रखने का स्थान—

प्रासादपृष्ठदेशे तु दक्षिणे तु प्रतिरथे ।
ध्वजाधारस्तु कर्त्तव्य ईशाने नैऋतेऽथवा ॥४०॥

इति प्रासादस्योर्ध्वलक्षणम् ।

प्रासाद के शिखर के पिछले भाग मे दाहिने प्रतिरथ मे ध्वजादड रखने का छिद्रवाला स्थान ध्वजाधार (कलाबा) बनावे। यह पूर्वाभिमुख प्रासाद के ईशान कौने मे और पश्चिमाभिमुख प्रासाद के नैर्ऋत्य कोने मे बनावे ॥४०॥

ध्वजाधार (स्तंभवेध) का स्थान--

"रेखाया पष्ठमे भागे तदशे पादवर्जिते ।
ध्वजाधारस्तु कर्त्तव्य प्रतिरथे च दक्षिणे ॥"

ज्ञान प्र० दी० अ० ६

शिखर की रेखा के उदय का छह भाग करे। उनमे ऊपर के छठे भाग का फिर चार भाग करे, इनमे से नीचे का एक भाग छोड कर, इसके ऊपर के भाग मे दाहिने प्रतिरथ मे ध्वजाधार बनावे अर्थात् रेखा का चौबीस भाग करके ऊपर के बाईसवे भाग मे ध्वजाधार बनावे।

अपराजित के मत से स्तंभवेध का स्थान—

"रेखाध (र्धश्च?) त्रिभागोर्ध्वं सूत्रांशे (तदशे) पादवर्जिते ।
ध्वजोन्नतिस्तु कर्त्तव्या ईशाने नैर्ऋतेऽथवा ॥
प्रासादपृष्ठदेशे तु प्रतिरथे च दक्षिणे ।
स्तम्भवेधस्तु कर्त्तव्यो भित्तेरष्टमांश के (भित्याश्च पष्ठमांशके)॥" सूत्र १४४

शिखर की रेखा (कोण) के ऊपर के अर्ध भाग का तीन भाग करे। ऊपर के तीसरे भाग का फिर चार भाग करके नीचे से एक भाग छोड करके उसके ऊपर के भाग में स्तभवेध बनावे। यह ईशान अथवा नैर्ऋत कोण मे प्रासाद के पिछले भाग मे दाहिने प्रतिरथ मे दीवार के छट्ठे भाग के मान जितना मोटा बनावे।

ध्वजाधार की मोटाई और स्तंभिका—

"स्तम्भवेधस्तु कर्त्तव्यो भित्याश्च पष्ठमांशकः ।
घण्टोदयप्रमाणेन स्तम्भिकोदय कारयेत् ॥
धामहस्ताङ्गुलविस्तार-स्तस्योर्ध्वे कलशो भवेत् ॥" ज्ञान प्र० दी० अ० ६

दीवार के छठे भाग का मोटा स्तभवेध (ध्वजाधार) बनावे। ध्वजादड को मजबूत स्थिर रखने के लिये बगल मे एक स्तभिका रखी जाती है। उसका उदय स्तभवेध से आमलसार का उदय तक रखे। उसकी मोटाई प्रासाद के मान से हस्तागुल (जितने हाथ हो उतने अगुल) रक्खे और उसके ऊपर कलश रक्खें। ध्वजादड और स्तभिका इन दोनो का अच्छी तरह वज्रबध करे।
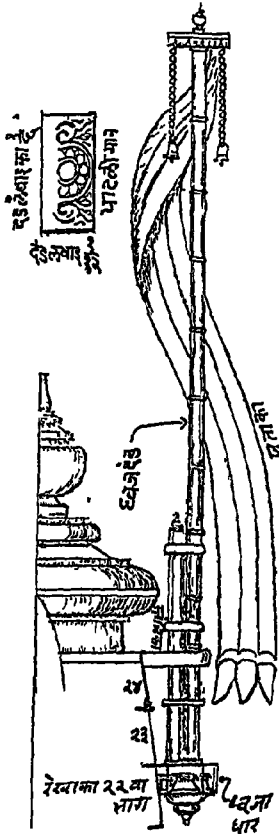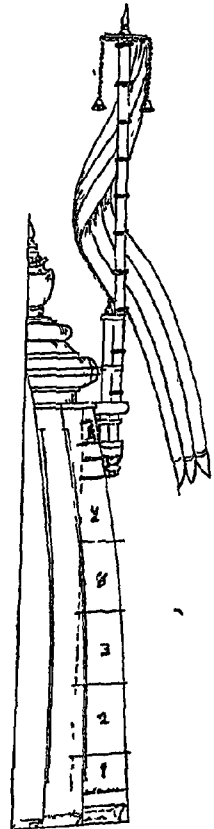
ध्वजादड का उदयमान—

दण्डः कार्यस्तृतीयांशः शिलातः[1] कलशान्तकम् ।
मध्योऽष्टांशेन हीनोऽसौ ज्येष्ठपादोनः कन्यसः ॥४१॥

१. 'शिलान्त,'

प्रासाद की खरशिला से लेकर कलश के अग्रभाग तक के उदय का तीन भाग करके, इनमे से एक भाग के मान का लबा ध्वजादड बनावे। यह ज्येष्ठमान का है। इनमे से आठवा भाग कम करने से मध्यम मान का और चौथा भाग कम करने से कनिष्ठ मान का ध्वजादड होता है ॥४१॥

ध्वजादंड का दूसरा उदयमान—

प्रासादव्यासमानेन[2] दण्डो ज्येष्ठः प्रकीत्तितः ।
मध्यो हीनो दशांशेन पञ्चमांशेन कन्यसः ॥४२॥

प्रासाद के विस्तार के बराबर ध्वजादड की लबाई रक्खे, यह ज्येष्ठ मान का ध्वजादड है *। इसमे से दसवा भाग कम करे तो मध्यम मान का और पाचवा भाग कम करे तो कनिष्ठ मान का ध्वजादड होता है ॥४२॥*

ध्वजादंड का तीसरा उदयमान—

"मूलरेखाप्रमाणेन ज्येष्ठ स्याद् दण्डसम्भव ।
मध्यमो द्वादशाशोन षडशोन कनिष्ठक ॥" अप० सू० १४४

मूलरेखा (गर्भगृह अथवा शिखर के नीचे के पायचा के विस्तार जितना) के विस्तार मान का लबा ध्वजादड बनावे, यह ज्येष्ठ मान का है। उसमे से बारहवा भाग कम करे तो मध्यम और छठा भाग कम करेतो कनिष्ठ मान का ध्वजादड होता है।
विवेक विलास के प्रथम सर्ग के श्लोक १७९ मे स्पष्ट लिखा है कि—

"दण्ड प्रकाशे प्रासादे प्रासादकरसख्यया ।
सान्धकारे पुन कार्यो मध्यप्रासादमानत ॥"

प्रकाश वाले (विना परिक्रमा वाले) प्रासाद का ध्वजादड प्रासाद के मान का बनावे, अर्थात् प्रासाद का जितना विस्तार हो उतना लबा ध्वजादड बनावे। अधकार वाले (परिक्रमा वाले) प्रासाद का ध्वजादड मध्य प्रासाद के मान का बनावे। अर्थात् परिक्रमा और उसकी दीवार को छोडकर के गभारे के दोनो दीवार तक के मान का बनावे।

ध्वजादंड का विस्तारमान—

एकहस्ते तु प्रासादे दण्डः पादोनमङ्गुलम् ।
कुर्यादर्धाङ्गुला वृद्धि–र्यावत्पञ्चाशद्धस्तकम् ॥४३॥

२ 'पृथु'। *यह मत प्रचार में अधिक है।

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद के ध्वजादंड का विस्तार पौन अंगुल का रक्खे। पीछे पचास हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढा करके रक्खें ॥४३॥

ध्वजादंड की रचना—

सुवृत्तः सारदारुश्च ग्रन्थिकोटरवर्जितः ।
पर्वभिर्विषमैः कार्यः समग्रन्थिः सुखावहः ॥४४॥

ध्वजादंड बहुत अच्छा और किसी प्रकार की गांठ या पोलाण आदि दोषों से रहित, तथा मजबूत काष्ठ का सुन्दर एवं गोलाकार बनावे। दंड में पर्व (विभाग) विषम संख्या में और ग्रन्थी (चूडी) समसंख्या में रखना सुखदायक है ॥४४॥

विषमपर्व वाले ध्वजादंड के तेरह नाम—

"जयन्तस्त्वेकपर्वश्च त्रिपर्वःशत्रुमर्दनः ।
पिङ्गलः पञ्चपर्वश्च सप्तपर्वश्च सम्भवः ॥
श्रीमुखो नवपर्वश्च आनन्दो रुद्रपर्वकः ।
त्रिदेवो विश्वपर्वश्च तिथिभिर्दिव्यशेखरः ॥
मुनीन्दुभिः कालदण्डो महोत्कटो नवेन्दुतः ।
सूर्याख्यस्त्वेकविंशत्या कमलो वह्निनेत्रतः ॥
तत्त्वपर्वो विश्वकर्मा दण्डनामानि पर्वतः ।
शस्ताशस्तत्वमेतेषामभिधानगुणोद्भवम् ॥" अप० सू० १४४

एक पर्व वाला जयंत, तीन पर्ववाला शत्रुमर्दन, पांच पर्व का पिंगल, सात पर्व का संभव, नव पर्व का श्रीमुख, ग्यारह पर्व का आनंद, तेरह पर्व का त्रिदेव, पंद्रह पर्व का दिव्यशेखर, सत्रह पर्व का कालदंड, उन्नीस पर्व का महाउत्कट, इक्कीस पर्व का सूर्य, तेबीस पर्व का कमल और पच्चीस पर्व का विश्वकर्मा कहलाता है। वे तेरह प्रकार के दंड के नाम पर्व के अनुसार है और नाम के अनुसार शुभाशुभ फल देने वाले हैं।

ध्वजादण्ड की मर्कटी (पाटली)—

दण्डदीर्घषडंशेन मर्कट्यर्धेन विस्तृता ।
अर्द्धचन्द्राकृतिः पार्श्वे घण्टोर्ध्वे कलशस्तथा ॥४५॥

ध्वजादंड की लंबाई के छट्ठे भाग की मर्कटी (पाटली) की लंबाई रक्खे। लंबाई से आधी विस्तार में रक्खे। (विस्तार के तीसरे भाग की मोटाई रक्खे।) पाटली का सम्मुख

भाग अर्द्धचन्द्र के आकार वाला बनावे। इसके कोने मे घटडीया लगावे और ऊपर कलश रक्खे ॥४५॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १४४ में कहा है कि—

"मण्डूकी तस्य कर्त्तव्या अर्धचन्द्राकृतिस्तथा।
पृथुदण्डसप्तगुणा हस्तादिपञ्चकावधि ॥
षड्गुणा च द्वादशान्त शेषा पञ्चगुणास्तथा।
तथा त्रिभागविस्तारा कर्त्तव्या सर्वकामदा ॥
अर्धचन्द्राकृतिश्चैव पक्षे कुर्याद् गगारकम्।
वशोर्ध्वे कलश चैव पक्षे घण्टाप्रलम्बनम् ॥"

ध्वजादड की पाटली अर्धचद्र के आकार की बनावे। वह एक से पाच हाथ तक के लवे व जादड के विस्तार से सातगुणी, छह से बारह हाथ तक के लम्बे ध्वजादड के विस्तार से छगुणी और तेरह से पचास हाथ तक के ध्वजादड के विस्तार से पाचगुणी पाटली लम्बाई मे रक्खे। लम्बाई का तीसरा भाग विस्तार मे रक्खे। यह सब इच्छितफल को देनेवाली है। अर्धचद्राकृति के दोनो तरफ गगारक बनावे। दड के ऊपर कलश रक्खे और पाटली के दोनो बगल मे लम्बी घटडीया लगाना चाहिये।

ध्वजा का मान—

ध्वजा दण्डप्रमाणेन दैर्घ्येऽष्टांशेन विस्तरे।
नानावस्त्रैर्विचित्राद्यै-स्त्रिपञ्चाग्रशिखोत्तमा ॥४६॥

ध्वजादड के लबाई के मान की ध्वजा की लबाई रक्खे और लम्बाई से आठवे भाग की चौडाई रक्खे। यह अनेक वर्ण के वस्त्रो की बनावे और अग्रभाग मे तीन अथवा पाच शिखाये बनावे ॥४६॥

ध्वजा का महात्म्य—

पुरे च नगरे कोट्टे रथे राजगृहे तथा।
वापीकूपतडागेषु ध्वजाः कार्याः सुशोभनाः ॥४७॥

पुर, नगर, किला, रथ, राजमहल, वावडी, कूआँ और तालाव आदि स्थानो के ऊपर सुन्दर ध्वजा रखनी चाहिये ॥४७॥

निष्पन्नं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजहीने सुरालये।
असुरा वासमिच्छन्ति ध्वजहीनं न कारयेत् ॥४८॥

तैयार हुए प्रासाद के शिखर को ध्वजा रहित देखकर असुर (राक्षस) उसमे रहने की इच्छा करते है । इसलिये देवालय ध्वजा रहित नही रखना चाहिये ।।४८।।

ध्वजोच्छ्रायेण तुष्यन्ति देवाश्च पितरस्तथा ।
दशाश्वमेधिकं पुण्यं सर्वतीर्थधरादिकम् ।।४६।।

देवालय के ऊपर ध्वजा चढाने से देव और पितर सतुष्ट होते हैं। तथा दशाश्वमेध यज्ञ करने से और समस्त भूतल की तीर्थयात्रा करने से जो पुण्य होता है, वही पुण्य प्रासाद के ऊपर ध्वजा चढाने से होता है ।।४६।।

पञ्चाशत् पूर्वतः पश्चाद्-आत्मान च तथाधिकम् ।
शतमेकोत्तरं सोऽपि तारयेन्नरकार्णवात् ।।५०।।

इति ध्वजलक्षण पुण्याधिकार ।

इति श्री सूत्रधारमण्डनविरचिते प्रासादमण्डने वास्तुशास्त्रे प्रतिमा-
प्रमाणदृष्टिपदस्थानशिखरध्वजाकलशलक्षणाधिकारश्चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

ध्वजा चढानेवाले के वश की पहले की पचास और पीछे की पचास, तथा एक अपनी इस तरह कुल एकसौ एक पीढी के पूर्वजो को नरकरूपी समुद्र से यह ध्वजा तिरा देती है अर्थात् उद्धार करती है ।।५०।।

इति श्री पडित भगवानदास जैन विरचित प्रासादमण्डन ग्रन्थ के चौथा-
अध्ययन की सुबोधिनी नाम्नी भाषाटीका समाप्ता ।।४।।

अथ प्रासादमण्डने पञ्चमोऽध्यायः

मंगल—

नानाविधमिदं विश्वं विचित्रं येन सूत्रितम् ।
सूत्रधारः श्रेयसेऽस्तु[1] सर्वेषां पालनक्षमः ॥१॥

जिसने अनेक प्रकार का यह विचित्र जगत बनाया है, यही सूत्रधार (विश्वकर्मा) सबका पालन करने मे समर्थ है। और यही सबके कल्याण के लिये हो ॥१॥

ग्रंथ मान्यता की याचना—

न्यूनाधिकं प्रसिद्धं च यत् किञ्चिन्मण्डनोदितम् ।
विश्वकर्मप्रसादेन शिल्पिभिर्मान्यतां वचः ॥२॥

जगत मे जो कुछ मडन सूत्रधार का न्यूनाधिक रूप से कहा हुआ शिल्पशास्त्र प्रसिद्ध है, वह विश्वकर्मा की कृपा से शिल्पियो से मान्य हो ॥२॥

वैराज्यपासाद—

चतुर्भाग समारभ्य यावत्सूर्योत्तरं शतम् ।
भागसंख्येति विख्याता फालना कर्णबाह्यतः ॥३॥

चार भाग से लेकर एकसो बारह भाग तक के वैराज्यादि प्रासाद होते है। तथा उनकी फालनाएं कोने से बाहर निकलती होती है। ॥३॥

फालना के भेद—

अष्टोत्तरशतं भेदा अंशवृद्धया भवन्ति ते ।
समांशैर्विषमैः कार्या-नन्तभेदैश्च फालना ॥४॥

एक २ अशकी वृद्धि से फालना का एक सौ आठ भेद होते हैं। एव समाश और विषमाश के भेदो से फालना के अनन्त भेद भी होते है ॥४॥

एकस्यापि तलस्योर्ध्वे शिखराणि बहुन्यपि ।
नामानि जातयस्तेषा-मूर्ध्वमार्गानुसारतः ॥५॥

एक ही तल के ऊपर बहुत प्रकार के शिखर बनाये जाते हैं और उन शिखरो के निर्माण

---

१ 'स एव स्यात्' ।

से ही प्रासादो के नाम और उसकी जाति, ये दोनो उत्पन्न होते है ॥५॥

भ्रमणी (परिकमा)—

दशहस्तादधो न स्यात् प्रासादो भ्रमसंयुतः ।
नवाष्टदशभागेन भ्रमो भित्तिर्विधीयते ॥६॥

दस हाथ से न्यून प्रासाद को भ्रमणी (परिकमा) नही किया जाता, किन्तु दस हाथ से अधिक विस्तार वाले प्रासाद को भ्रमणी करना चाहिये। भ्रमणी और दीवार प्रासाद के आठ नव अथवा दसवे भाग की रखना चाहिये ॥६॥
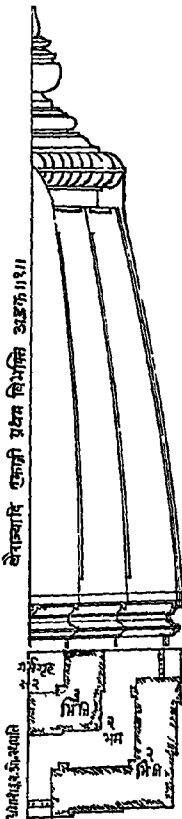
१-वैराज्य प्रासाद—

वैराज्यश्चतुरस्रः स्याच्चतुर्द्वारे चतुष्किका ।
प्रासादो ब्रह्मणः प्रोक्तो निर्मितो विश्वकर्मणा ॥७॥

प्रथम वैराज्य प्रासाद समचोरस और चार द्वार वाला है। प्रत्येक द्वार चौकी मंडप वाला बनावे। यह प्रासाद ब्रह्माजी ने कहा है और विश्वकर्मा ने निर्माण किया है ॥७॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १५५ में कहा है कि—

"चतुरस्रीकृते क्षेत्रे तथा षोडशभाजिते।
तस्य मध्ये चतुर्भागै-र्गर्भं सूत्रैश्च कारयेत् ॥
द्वादशस्वथ शेषेषु बाह्ये भित्ती प्रकल्पयेत् ॥"

वैराज्य प्रासाद की समचोरस भूमिका सोलह भाग कर के उन मे से चार भाग का मध्य गर्भगृह बनावे और बाकी बारह भाग मे दो २ भाग की दीवार और दो भागकी भ्रमणी बनावे।

सपाद शिखरं कार्यं घण्टाकलशभूषितम् ।
चतुर्भिः शुकनासैस्तु सिंहकर्णैर्विराजितम् ॥८॥

इसके शिखर का उदय विस्तार से सवाया बनावे। तथा आमलसार और कलश से सोभायमान करे। एव चारो ही दिशा मे शुकनाश तथा सिंहकर्ण आदि से शिखर को शोभायमान बनावे ॥८॥
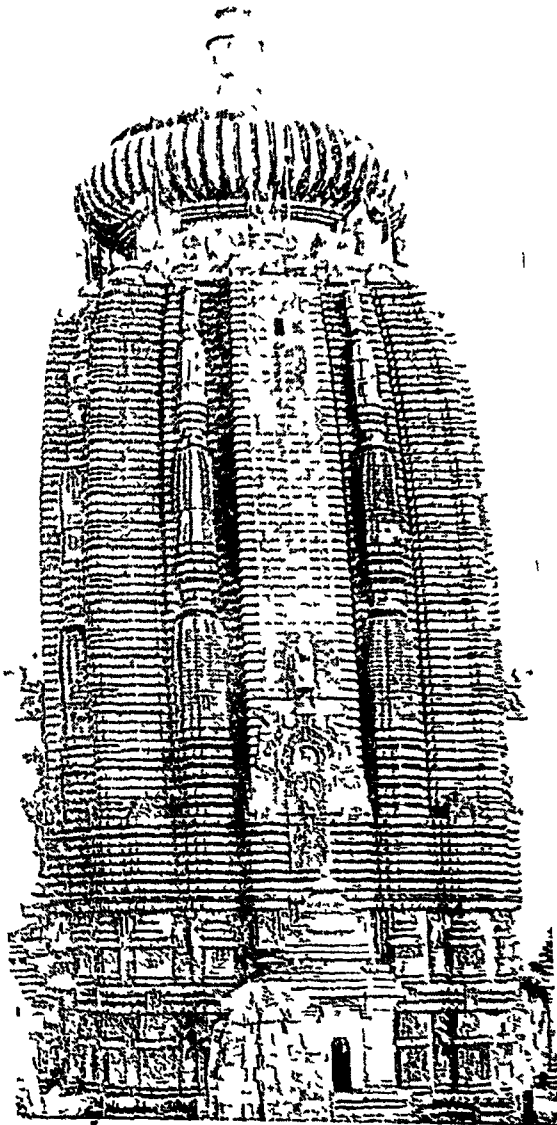
ओरीसा जगन्नाथपुरी का वैराज्यादि जाति का
एकाण्डिक शिखर
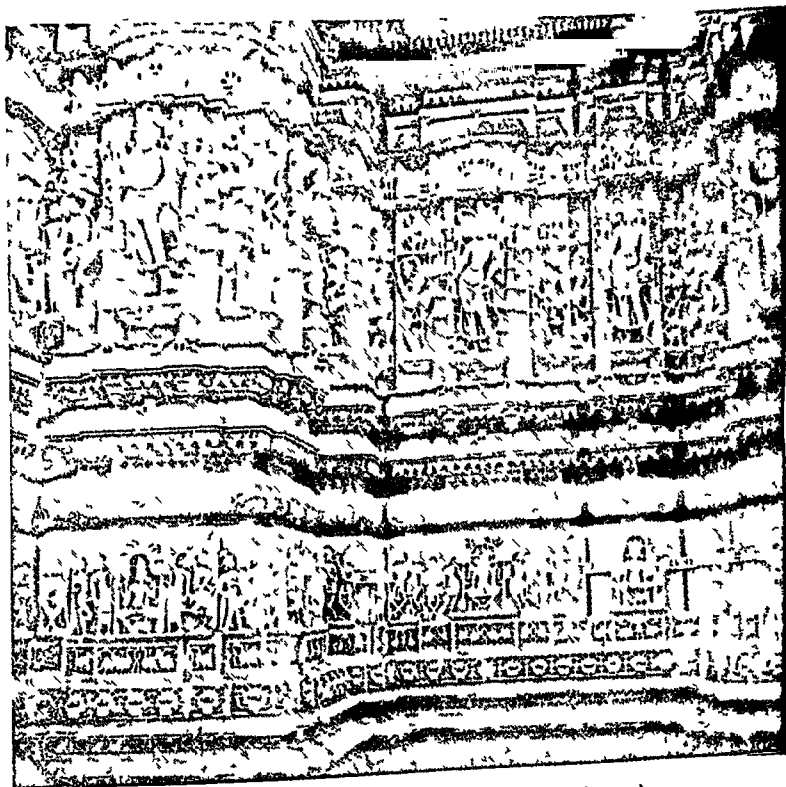
नागर जाति के पासाद का कलामय मडोवर (दोवार)

दिशा के द्वार का नियम—

एकद्वारं भवेत् पूर्वे द्विद्वारं पूर्वपश्चिमे ।
त्रिद्वार मध्यजं द्वारं दक्षिणास्यं विवर्जयेत् ॥९॥

प्रासाद का यदि एक द्वार रखना हो तो पूर्वदिशा मे ही रक्खे। दो द्वार रखना हो तो पूर्व पश्चिम दिशामे रक्खे। तीन द्वार रखना हो तो दो द्वार के बीच मे मुख्य द्वार रक्खे। परन्तु दक्षिणाभिमुख वाला मुख्य द्वार नही रखना चाहिये। ऐसा द्वार नही बनावें जिससे प्रवेश मे उत्तर मुख रहे ॥९॥

चतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु शिवब्रह्मजिनालये ।
होमशालायां [२]कर्त्तव्य क्वचिद् राजगृहे तथा ॥१०॥

शिव, ब्रह्मा और जिनदेव, इनके प्रासादो मे चारो ही दिशाओ मे द्वार रक्खे जाते है। एव यज्ञशाला और कभी राजमहल मे भी चारो दिशाओ मे द्वार रक्खे जाते है ॥१०॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १५७ मे त्रिद्वारके विषय मे विशेषरूप से लिखते है कि—

"पूर्वोत्तरयाम्ये चैव पूर्वापरोत्तरे तथा ।
याम्यापरोत्तरे शस्त त्रिद्वार त्रिविध स्मृतम् ॥"

पूर्व उत्तर और दक्षिण, पूर्व पश्चिम और उत्तर तथा दक्षिण पश्चिम और उत्तर, इस प्रकार तीन प्रकार के त्रिद्वार प्रशस्त हैं।

"पूर्वापरे स्याद् द्विद्वार दूषयेच्च याम्योत्तरे ।
एकद्वार च माहेन्द्र्या चतुर्द्वार चतुर्दिशम् ॥" अप० सू० १५७

प्रासाद मे दो द्वार बनाना हो तो पूर्व और पश्चिम दिशा मे बनावे। परन्तु उत्तर और दक्षिण दिशा मे नही बनावे, क्योकि यह दोप कर्त्ता है। यदि एक ही द्वार बनाना हो तो पूर्व दिशा मे ही बनावे और चार द्वार बनाना हो तो चारो दिशा मे बनावे।

"पूर्वे च भक्तिद द्वार मुक्तिद वरुणोद्भवम् ।
याम्योत्तरे शिवे द्वारे कृते दोषो महद्भयम् ॥" अप० सू० १५७

पूर्वदिशा का द्वार भक्ति देनेवाला है और पश्चिम दिशा का द्वार मुक्ति को देनेवाला है। शिव प्रासाद मे यदि उत्तर और दक्षिण दिशा मे द्वार किया जाय तो बडा दोप और भय करने वाला है।

२ 'होमशाला चतुर्द्वारा' पाठान्तरे ।

"एकद्वार च माहेन्द्र्या-मन्यथा दोषद भवेत् ।
भद्र सर्वत्र कल्याण चतुर्द्वार शिवालये ॥" अप० सू० १५७

शिवालय मे एक द्वार रखना हो तो पूर्व दिशा में ही रक्खे और अन्य दिशा मे रक्खें तो दोष देने वाला है। परन्तु चारो दिशा मे चार द्वार बनावे तो कल्याण कारक हैं।

'ब्रह्मविष्णुरवीणा च कुर्यात् पूर्वोक्तमेव हि ।
समोसरणे च जैनेन्द्रे दिशादोषो न विद्यते ॥" अप० सू० १५७

ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य, इन प्रासादो मे ऊपर कहे अनुसार द्वार बनावे। जिनदेव के समवसरण प्रासादो मे दिशा का दोष नही हैं। चाहे जिस दिशा में द्वार बना सकते हैं।

वैराज्यादिसमुत्पन्नाः प्रासादा ब्रह्मणोदिताः[1] ।
एक-त्रि-पञ्चसप्ताङ्क-संख्याङ्गैः पञ्चविंशतिः ॥११॥

इति वैराज्यप्रासाद ।

वैराज्यादि जो पचीस प्रासाद हैं, वे ब्रह्माजी ने बताये हैं। वे एक, तीन, पाच, सात और नव अगो के भेदवाले हैं।

जैसे-वैराज्यप्रासाद एक अग फक्त कोना वाला है। नदन, सिह और श्रीनन्दन, ये तीन प्रासाद तीन अग (दो कोना और भद्र) वाले है। मदर, मलय, विमान, सुविशाल और त्रैलोक्यभूषण, ये पाच प्रासाद पाच अंग (दो कर्ण, दो प्रतिरथ और भद्र) वाले हैं। माहेन्द्र, रत्नशीर्ष, शतशृंग, भूधर, भुवनमडन त्रैलोक्यविजय और पृथ्वीवल्लभ, ये सात प्रासाद सात अग (दो कर्ण, दो प्रतिरथ, दो रथ और भद्र) वाले हैं। महीधर, कैलाश, नवमगल, गधमादन, सर्वाङ्गसुन्दर, विजयानन्द, सर्वाङ्गतिलक, महाभोग और मेरु, ये नव प्रासाद नव अग (दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दोरथ, दो उपरथ और भद्र) वाले हैं। ऐसा अपराजित पृच्छा सूत्र १५६ मे कहा है ॥११॥

२-नन्दन प्रासाद—

चतुर्भक्ते भवेत् कोणो भागो भद्रं द्विभागिकम् ।
भागार्धं निर्गमं भद्रे प्रकुर्यान्मुखभद्रकम् ॥१२॥
शृङ्गमेकं भवेत् कोणे[2] द्वे द्वे भद्रे च नन्दनः ।

इति नदन ।

प्रासाद के तल का चार भाग करे। उनमे से एक २ भाग का कोना और दो भाग का भद्र बनावें। भद्र का निर्गम आधा भाग का रक्खे। भद्र मे मुखभद्र भी बनावें। कोने के ऊपर

१ ब्रह्मणार्चिता,' २. 'कर्णे'।

एक २ शृंग और भद्र के ऊपर दो २ उरुशृंग रक्खे। ऐसा नदन नाम का प्रासाद है ।।१२।।

शृंगसंख्या १३। कोणे ४ भद्रे ८ और एक शिखर।

३–सिंहप्रासाद—
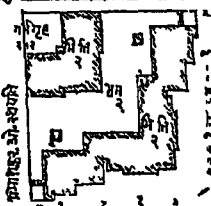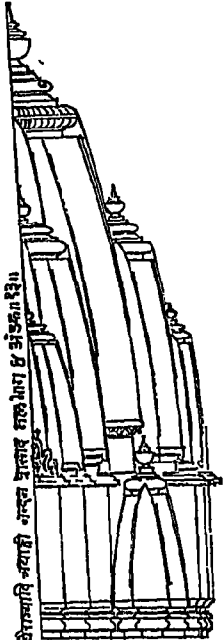
नदन प्रासाद

मुखभद्रे प्रतिभद्र-मुद्गमो रथिकोपरि ।।१३।।
कर्णभृङ्गे सिंहकर्णः सिंहनामा स उच्यते।
देवतासु[2] प्रकर्त्तव्यः सिंहस्तत्रैव शाश्वतः ।।१४।।
तुष्यति गिरिजा तस्य सौभाग्यधनपुत्रदा।
रथिका सिंहकर्णश्च भद्रे भृङ्गे च सिंहकः ।।१५।।

इति सिंह ।

तल विभक्ति नन्दन प्रासाद की तरह ही करे। मुखभद्र मे प्रतिभद्र बनावे। तथा भद्र के गवाक्ष के ऊपर उद्गम बनावें। कोने के शृंगो के ऊपर सिंह रक्खे। ऐसा सिंह नाम का प्रासाद है। यह देवता (देवीओ) के लिये बनावे। इसमे सिंह शाश्वत रहता है, इसलिये पार्वती देवी खुश होती है और सौभाग्य धन और पुत्र देती है। भद्र की रथिका के ऊपर सिंहकर्ण और शृंगो के ऊपर भी सिंहकर्ण रखने से सिंह नाम का प्रासाद है ।।१३ से १५।।

४–श्रीनन्दन प्रासाद—

कर्णे भृङ्गं तु पञ्चाण्डं स श्रीनन्दन उच्यते।

इति नन्दन' इतित्र्यङ्गप्रासादा ।

नन्दन प्रासाद के कोने ऊपर पाच अडक वाला केसरी शृंग चढावे तो यह श्रीनन्दन नाम का प्रासाद होता हैं।

शृङ्ग संख्या २६। कोणे केसरी क्रम २०, भद्रे ८, एक शिखर।

५–मंदिर और ६–मलय प्रासाद—

त्र्यङ्गा इत्यर्थः षड्भागै-श्चतुरस्रं विभाजयेत् ।।१६।।
कर्णं प्रतिरथं कुर्याद् भद्रार्धं भागभागिकम्।
समं निर्गममंशैश्च[3] भद्रं भागार्द्ध निर्गमम् ।।१७।।

२ 'देवाना तु'। ३ 'निर्गममस्माच्च'।

द्वे द्वे कर्णे तथा भद्रे शृङ्गमेकं प्रतिरथे।
मन्दिरस्तृतीयं भद्रे मलयो भद्रजं त्यजेत् ॥१८॥

मंदिर प्रसाद

ऊपर तीन अगवाले प्रासादो का वर्णन कहा गया है। अब पाच अगवाले प्रासादो का वर्णन करते हैं—समचोरस प्रासाद के तलका छह भाग करे। इनमे कर्ण, प्रतिकर्ण और भद्रार्ध, ये प्रत्येक एक २ भाग का रक्खे। कर्ण और प्रतिकर्ण का निर्गम समदल रक्खे और भद्र का निर्गम आधा भाग रखना चाहिये। कर्ण और भद्र के ऊपर दो दो और प्रतिकर्ण के ऊपर एक २ शृङ्ग चढावे। ऐसा मदिर नाम का प्रासाद है। इस प्रासाद के भद्र के ऊपर तीसरा एक उरुशृ ग चढावे तो मलय नाम का प्रासाद होता है ॥१६ से १८॥

शृ ग सख्या २५। कोणे ८, भद्रे ८, प्ररथे ८, एक शिखर।

७–विमान, ८–विशाल और ९ त्रैलोक्यभूषण प्रासाद—

प्रत्यङ्गं तिलकं कुर्यात् प्रतिरथे विमानकः।
भद्रोरुशृङ्गवैशालः प्रतिरथे सुभूषणः ॥१९॥

इति पञ्चागा पचप्रासादा।

ऊपर श्लोक १८ के अत मे 'भद्रज त्यजेत्' शब्द का यहा अर्थ करे। मलय नाम के प्रासाद के भद्र के ऊपर से एक उरुशृ ग हटा करके कर्ण के दोनो तरफ एक २ प्रत्यग चढावे और प्रतिरथ के ऊपर एक २ तिलक चढावे, तो इसे विमान नाम का प्रासाद कहा जाता है। विमान प्रासाद के भद्र के ऊपर एक २ ऊरुशृंग अधिक चढावे, तो विशाल नाम का प्रासाद कहा जाता है, और प्रतिरथ के ऊपर एक २ शृ ग अधिक चढावे तो उसे त्रैलोक्यभूषण नामक प्रासाद कहा है ॥१९॥

विमान शृ गसख्या–कोणे ८, प्ररथे ८, भद्रे ८, प्रत्यग ८ एक शिखर एव कुल ३३ शृ ग। तिलक सख्या—प्ररथे १–१ कुल ८। त्रैलोक्यभूषण शृ गसख्या—कोणे ८ प्रतिरथे १६ भद्रे ८, प्रत्यग ८, एक शिखर एव ४१ शृ ग और तिलक ८। विशाल शृ गसख्या—भद्रे १२ बाकी पूर्ववत् कुल ३७। तिलक ८ प्ररथे।

१०-माहेन्द्रप्रासाद--

चतुरस्रेऽष्टभिर्भक्ते कर्णं प्रतिरथं रथम् ।
भद्रार्धं भागभागं च भागार्धेन विनिर्गमम् ॥२०॥
वारिमार्गान्तरयुक्ता रथाश्च तुल्यनिर्गमाः ।
शृङ्गयुग्मं च तिलकं कर्णे द्वेतु प्रतिरथे ॥२१॥
एकं चोपरथे भद्रे त्रीणि त्रीणि चतुर्दिशि ।
शिखरं पञ्चविस्तारं माहेन्द्रो राज्यदो नृणाम् ॥२२॥

इति माहेन्द्र ।

समचोरस तल का आठ भाग करे। इनमें कर्ण, प्रतिरथ, उपरथ और भद्रार्ध, ये प्रत्येक

एक २ भाग का रक्खे। भद्रका निर्गम आधा भाग का रक्खे ये सब अग वारिमार्ग वाले बनावें। कर्ण, प्रतिरथ और उपरथ का निर्गम एक २ भाग रक्खे। कर्णके ऊपर दो २ शृ ग और एक तिलक चढावे, प्रतिरथ के ऊपर दो २ शृ ग, उपरथ के ऊपर एक २ शृ ग और भद्र के ऊपर तीन २ उरुशृ ग चढावे। मूल शिखर का विस्तार पाच भाग रक्खे। ऐसा माहेन्द्र नाम का प्रासाद मनुष्यो को राज्य देनेवाला है ॥२० से २२॥

मान्हेद्र प्रासाद

शृ गसख्या-कोणे ८, प्ररथे १६ उपरथे ८, भद्रे १२ एक शिखर एव कुल ४५, तिलक, ४ कोणे ।

११-रत्नशीर्ष प्रासाद---

कर्णे शृङ्गत्रयं शेषं पूर्ववद् रत्नशीर्षकः ।

इति रत्नशीर्ष ।

माहेन्द्र प्रासाद के कर्णके ऊपर यदि तीन शृंग चढाया जाय तो उस प्रासाद का नाम रत्नशीर्ष होता है ।

शृ ग सख्या—कोणे १२, प्ररथे १६, उपरथे ८ भद्रे १२ एक शिखर, कुल ४९ ।

१२-सितशृंग प्रासाद—

त्यक्त्वैकशृङ्गं भद्रस्य मत्तालम्बं च कारयेत् ॥२३॥
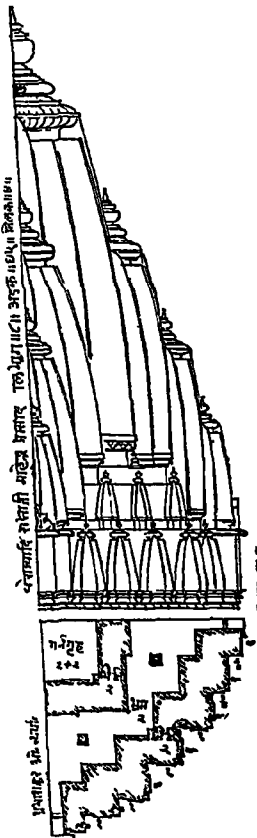
मस्तके तस्य छाद्यस्य शृङ्गयुग्मं प्रदापयेत् ।
सितशृङ्गस्तदा नाम ईश्वरस्य सदा प्रियः ॥२४॥

रत्नशीर्ष प्रासाद के भद्र के तीन उरुशृंगो मे से एक कम करके उस स्थान पर मत्तालम्ब (गवाक्ष) बनावे और उसके छाद्य के ऊपर दो शृंग चढावे। ऐसा सितशृंग नाम का प्रसाद ईश्वर को हमेशा प्रिय है ॥२४॥

शृंग सख्या—कोणे १२, प्ररथे १६, उपरथे ८ भद्रे १६ एक शिखर, कुल ५३

१३–भूधर और १४–भुवनमडन प्रासाद—

तिलकं यद्युपरथे भूधरो नाम नामतः ।
छाद्यशृङ्गे तु तिलकं नाम्ना भुवनमण्डनः ॥२५॥

सितशृंग प्रासाद के उपरथ ऊपर एक २ तिलक चढावे, तो भूधर नाम का प्रासाद होता है और छाद्य के दोनो शृङ्गो के ऊपर एक २ तिलक चढावे तो भुवनमडन नाम का प्रासाद होता है ॥२५॥

१५–त्रैलोक्यविजय और १६–क्षितिवल्लभ प्रासाद—

शृङ्गद्वयं चोपरथे तिलकं कारयेत् सुधीः ।
त्रैलोक्यविजयो भद्रं शृङ्गेण क्षितिवल्लभः ॥२६॥

इति सप्ताङ्गा सप्तप्रासादा ।

यदि उपरथ के ऊपर दो शृंग और एक तिलक किया जाय तो त्रैलोक्यविजय नामका प्रासाद होता है और भद्र के ऊपर एक शृंग अधिक चढाया जाय तो क्षितिवल्लभ नाम का प्रासाद होता है ॥२६॥

शृंगसंख्या—कोणे १२, प्ररथे १६ उपरथे १६ भद्रे १२ एक शिखर कुल ५७, तिलक ८

१७–महीधर प्रासाद—

दशभागकृते क्षेत्रे भद्रार्धं भागमानतः ।
त्रयः प्रतिरथाः कर्णो भागभागाः समो भवेत् ॥२७॥

कर्णे प्रतिरथे भद्रे द्वे द्वे शृङ्गे प्रकारयेत् ।
रथोपरथे तिलकं प्रत्यङ्गं च रथोपरि ॥२८॥

मत्तालम्बयुतं भद्रं प्रासादोऽयं महीधरः ।

समचोरस प्रासाद के तलका दस भाग करे। उनमे भद्रार्ध, कर्ण प्रतिकर्ण, रथ और उपरथ ये प्रत्येक एक २ भाग का बनावे और इनका निर्गम भी एक २ भाग का रक्खे। भद्र का निर्गम आधे भाग का रक्खे। कोना, प्रतिरथ और भद्र के ऊपर दो २ शृंग तथा रथ और उपरथ के ऊपर एक २ तिलक चढावे। एवं रथ के ऊपर प्रत्यग चढावे। भद्र मत्तालब (गवाक्ष) वाला बनावे। ऐसा महीधर नाम का प्रासाद है ॥२७-२८॥

शृंगसख्या—कोणे ८, प्ररथे १६, भद्रे ८, प्रत्यग ८, एक शिखर कुल ४१। तिलक-रथे ८, उपरथे ८

१८-कैलास प्रासादः—
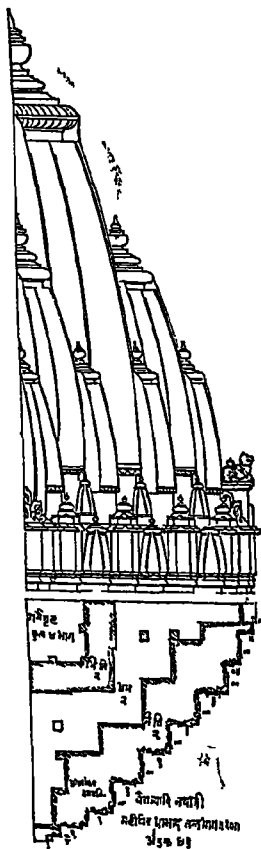
भद्रे शृङ्गं तृतीयं च कैलासः [१] शङ्करप्रियः ॥२९॥

महीधर प्रासाद के भद्र के ऊपर तीसरा एक शृंग अधिक चढावे तो कैलाश नाम का प्रासाद होता है। यह शकर को प्रिय है ॥२९॥

शृंगसख्या-कोणे ८, प्ररथे १६, भद्रे १२, प्रत्यग ८ एक शिखर कुल ४५। तिलक-रथे ८ उपरथे ८

१९-नव मंगल और २०-गंधमादन प्रासाद—

भद्रे त्यक्त्वा रथे शृङ्गं नवमङ्गल उच्यते।
तथा भद्रे पुनर्दद्यात् तदासौ गन्धमादनः ॥३०॥

कैलाश प्रासाद के भद्र के ऊपर से एक उरुशृंग कम करके रथ के ऊपर एक २ शृंग चढावे तो नवमगल नामका प्रासाद होता है। यह नवमगल प्रासाद के भद्र के ऊपर एक ऊरुशृंग अधिक चढावे तो गधमादन नाम का प्रासाद होता है ॥३०॥

शृंगसख्या—४९। कोणे ८, प्ररथे १६, भद्रे ८, रथे ८, प्रत्यग ८, एक शिखर। तिलक ८ उपरथे

२१- सर्वाङ्गसुन्दर और २२- विजयानन्द प्रासाद—

भद्रे त्यक्त्वा चोपरथे शृङ्गं सर्वाङ्गसुन्दरः।
भद्रे दद्यात् पुनः शृङ्गं विजयानन्द उच्यते ॥३१॥

१. 'नाम नामत.'।

गंधमादन प्रासाद के भद्र के ऊपर से एक उरःश्रृंग कम करके उपरथ के ऊपर एक २ श्रृंग चढावे, तो सर्वांगसुन्दर नाम का प्रासाद होता हैं। इसके भद्रके ऊपर एक २ उरःश्रृंग फिर चढावे तो विजयानन्द नामका प्रासाद होता है ॥३१॥

श्रृंगसंख्या—कोणे ८, प्ररथे १६, रथे ८, भद्रे ८ उपरथे ८, प्रत्यंग ८, एक शिखर कुल ५७

२३—सर्वांगतिलक प्रासाद—

मत्तालंबयुतं भद्र- श्रृङ्गं परित्यजेत् ।
श्रृङ्गद्वयं च छाद्योर्ध्वे सर्वांगतिल था ॥३२॥

विजयानंद प्रासाद के भद्र के ऊपर से एक २ उरुश्रृंग कम कर के मत्तालंब (गवाक्ष) बनावे और इस गवाक्ष के छाद्य के ऊपर दो श्रृंग रक्खे, तो सर्वांग तिलक नाम का प्रासाद होजाता है ॥३२॥

श्रृंगसंख्या—कोणे ८, प्ररथे १६ रथे ८ उपरथे ८, प्रत्यंग ८, भद्रे और गवाक्षे १६, एक शिखर कुल ६५ श्रृंग

२४—महाभोग प्रासाद—

उरुश्रृङ्गं ततो दद्या-न्मत्तालम्बसमन्वितम् ।
महाभोगस्तदा नाम सर्वकामफलप्रद: ॥३३॥

सर्वांग तिलक प्रासाद के गवाक्ष वाले भद्र के ऊपर एक २ उरुश्रृंग अधिक चढाने से महाभोग नाम का प्रासाद होता है। यह सब कार्य के फल को देने वाला है ॥३३॥

२५—मेरुप्रासाद—

कर्णे रथे प्रतिरथे श्रृङ्गमुपरथे तथा ।
मेरुरेव समाख्यातः सर्वदेवेषु पूजितः ॥३४

इति नवाङ्गा नवप्रासादा ।

कर्ण, रथ, प्रतिरथ और उपरथ इन सबके ऊपर एक २ श्रृंग अधिक चढावे तो मेरु नामक प्रासाद होता है, यह सब देवो मे पूजनीय है ॥३४॥

प्रासादप्रदक्षिणा का फल—

[1]प्रदक्षिणात्रयं कार्यं मेरुप्रदक्षिणायतम् ।
फलं स्याच्छैलराज्यस्य मेरोः प्रदक्षिणाकृते ॥३५॥

---

१ 'प्रदक्षिणात्रये स्वर्णमेरौ पुसा च यत्फलम् ।
इष्टकाशैलजे मेरौ तत्फल प्रदक्षिणाकृते ॥' इति पाठान्तरे ।

सुवर्ण के मेरु पर्वत की तीन प्रदक्षिणा करने से जो फल होता है, उतना फल इस पाषाण के बने हुये मेरुप्रासाद की तीन प्रदक्षिणा करने से होता है ॥३५॥

वैराज्यप्रमुखास्तत्र नागरा णोदिताः ।
वल्लभाः सर्वदेवानां शिवस्यापि विशेषतः ॥३६॥

इति श्री सूत्रधार मण्डनविरचिते प्रासादमण्डने वास्तुशास्त्रे वैराज्यादिप्रासाद-
पञ्चविंशत्यधिकारनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥*

वैराज्यादि यह पचीस प्रासाद नागर जाति के हैं। ये स्वय ब्रह्माजी के कहे हुए है। इसलिए ये प्रासाद सब देवो के लिये प्रिय हैं। उनमे भी महादेवजी तो विशेष प्रिय है ॥३६॥

इति श्री पडित भगवानदास जैन विरचित प्रासाद मण्डनके वैराज्यादी प्रासाद
नामके पाचवे अध्यायकी सुबोधिनी नाम्नी भाषाटीका समाप्ता।

---

*विशेष जानने के लिये देखें अपराजितपृच्छा सूत्र—१५७

अथ प्रासादमण्डने षष्ठोऽध्यायः

केसरी आदि पचीस प्रासादो के नाम—

केसरी सर्वतोभद्रो नन्दनो [1]नन्दशालिकः ।
नन्दीशो [2]मन्दरश्चैव [3]श्रीवृक्षश्चामृतोद्भवः ॥१॥
हिमवान् हेमकूटश्च कैलासः पृथिवीजयः ।
इन्द्रनीलो महानीलो भूधरो रत्नकूटकः ॥२॥
वैडूर्यः पद्मरागश्च वज्रको मुकुटोज्ज्वलः ।
ऐरावतो राजहंसो गरुडो वृषभध्वजः ॥३॥
मेरुः प्रासादराजः स्याद् देवानामालयो हि सः ।
विष्णुशिवार्काणा—मन्येषां न कदाचन ॥४॥

केसरी १, सर्वतोभद्र २, नन्दन ३, नन्दशालिक ४, नन्दीश ५, मन्दर ६, श्रीवृक्ष ७, अमृतोद्भव ८, हिमवान ९, हेमकूट १०, कैलाश ११, पृथिवीजय १२, इन्द्रनील १३, महानील १४, भूधर १५, रत्नकूटक १६, वैडूर्य १७, पद्मराग १८, वज्रक १९, मुकुटोज्ज्वल २०, ऐरावत २१, राजहस २२, गरुड २३, वृषभध्वज २४, और मेरु २५, ये प्रासादो के पच्चीस नाम है। मेरु प्रासाद सब प्रासादो का राजा है और उसमे देवोका निवास भी है, इसलिए यह मेरु प्रासाद ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य, इन देवो के लिए बनाना चाहिये, परन्तु दूसरे देवो के लिऐ यह नही बनाना चाहिये ॥१ से ४॥

पचीस प्रासादो की शृंग संख्या—

आद्यः पञ्चाण्डको ज्ञेयः केसरीनाम नामतः ।
[4]तावदन्तं चतुर्वृद्धि-र्यावदेकोत्तरं शतम् ॥५॥

प्रथम केसरी नामका प्रासाद पाच शृंगवाला है। (चार कोने पर चार और एक मुख्य शिखर इस प्रकार पाच)। अतिम प्रासाद तक प्रत्येक प्रासाद के ऊपर अनुक्रमसे चार २ शृंग बढानेसे पच्चीसवे मेरुप्रासादके ऊपर एक सौ एक शृंग होते हैं ॥५॥

---

१ 'नन्दिशालक.'। २ 'मन्दिर'। ३. 'श्रीवत्स'। ४ 'चतुर्णां क्रमतो वृद्धि'।

अष्टविभागीय तलमान—

क्षेत्रेऽष्टांशैर्विभक्ते तु कर्णो भागद्वयं भवेत् ।
भद्रार्धं कर्णतुल्यं तु भागेनैकेन निर्गमः ॥६॥

समचोरस प्रासाद के तलका आठ भाग करे, उनमें से दो भाग का कौना और दो भाग का भद्रार्ध बनावें। इन अगो का निर्गम एक २ भाग का रक्खे ॥६॥

दश और बारह विभागीय तलमान—

दशांशे सार्धभागं च भद्रार्धं च प्रतिरथः ।
कर्णो द्विभागः सूर्यांशे भद्रार्धं च प्रतिरथः ॥७॥

समचोरस तलका दस भाग करे। उनमे से दो भाग का कोना, डेढ भाग का प्रतिरथ और डेढ भाग का भद्रार्ध बनावे। यदि बारह भाग करना हो तो दो भाग का कर्ण, दो भाग का प्रतिकर्ण और दो भाग का भद्रार्ध बनावे ॥७॥

चौदह विभागीय तलमान—

चतुर्दशविभक्ते तु कर्णाद्यं द्वादशांशवत् ।
भद्रपार्श्वद्वये कार्या भागभागेन नन्दिका ॥८॥

समचोरस तलका चौदह भाग करे। उनमें से कर्ण आदिका मान बारह विभागीय तलमान के अनुसार रक्खे। अर्थात् कर्ण दो भाग, प्रतिकर्ण दो भाग, और भद्रार्ध दो भाग, ऐसे बारह भाग और भद्र के दोनो तरफ एक २ भाग की नन्दिका (कोणी) बनावे। ऐसे कुल चौदह भाग होते है ॥८॥

सोलह विभागीय तलमान—

षोडशांशे प्रकर्त्तव्या कर्णप्रतिरथान्तरे ।
कोणिका भागतुल्या च शेषं चतुर्दशांशवत् ॥९॥

समचोरस तलका सोलह भाग करे। उनमे से कर्ण और प्रतिरथ के बीचमे एक २ भाग की कोणिका बनावे। बाकी सब अगो का मान चौदह विभागीय तलमान के बराबर समझे। अर्थात् कर्ण दो भाग, कोणी एक भाग, प्रतिरथ दो भाग, नदी एक भाग और भद्रार्ध दो भाग, इस प्रकार सोलह विभागीय तलमान होता है ॥९॥

अठारह विभागीय तलमान—

अष्टादशांशे भद्रस्य पार्श्वे द्वे द्वे च नन्दिके ।
कर्त्तव्ये भागभागेन शेषं स्यात् षोडशांशवत् ॥१०॥

समचोरस तलका अठारह भाग करे। उनमे से भद्र के दोनो तरफ दो २ नन्दी एक २ भाग की बनावे। बाकी सब सोलह विभागीय तलमान के बराबर जाने। जैसे—कर्ण दो भाग, कोणी एक भाग, प्रतिरथ दो भाग, नन्दी एक भाग, दूसरी नदी एक भाग और भद्रार्ध दो भाग, ऐसे अठारह भागीय तलमान जाने ॥१०॥

बीस विभागीय तलमान—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे त्रिंशत्यंशविभाजिते ।
कर्णो द्विभागो नन्दिका सार्धांशा पृथुविस्तरे ॥११॥
द्विभागस्तु प्रतिरथो नन्दिका सार्धभागिका ।
भद्रनन्दी भवेद् भागा भद्रार्धं युग्मभागिकम् ॥१२॥

समचोरस क्षेत्र के बीस भाग करे। उनमे से दो भाग का कर्ण, डेढ भाग की कोणी, दो भाग का प्रतिरथ, डेढ भाग की नदिका, एक भाग की भद्रनदी और दो भाग का भद्रार्ध, इस प्रकार बीस भागीय तलमान बनावे ॥११-१२॥

बाईस विभागीय तलमान—

द्वाविंशतिकृते[1] क्षेत्रे नन्द्ये का भद्रपार्श्वयोः ।
त्रयः प्रतिरथाः कर्णो भद्रार्धं च द्वि भागिकम् ॥१३॥

समचोरस क्षेत्र के बाईस भाग करे। उनमे से भद्र के दोनो तरफ की नन्दी एक २ भाग की बनावे। बाकी तीन प्रतिरथ (रथ, उपरथ और प्रतिरथ) कर्ण और भद्रार्ध, ये प्रत्येक दो २ भाग का रखे। इस प्रकार बाईस विभागीय तलमान होता है ॥१३॥

तलोके क्रमसे प्रासाद संख्या—

एकद्वित्रिकं त्रीणि वेदाश्चत्वारि पञ्च च ।
तलेषु क्रमतोऽष्टासु केऽप्याहुः शिखराणि हि ॥१४॥

१. 'द्वाविंशत्यंशके नन्दी भागैका'।

केसरी आदि प्रासादो की तल विभक्ति आठ हैं। उनमे क्रमश' एक, दो, तीन, तीन, तीन, चार, चार और पाच प्रासाद है। अर्थात् आठ तल वाला प्रथम एक प्रासाद, दस तल का दूसरा और तीसरा ये दो, बारह तल का चौथा, पाचवा और छट्ठा ये तीन प्रासाद, चौदह तल का सातवा, आठवा और नवा ये तीन प्रासाद, सोलह तलका दसवा, ग्यारहवा और बारहवा ये तीन प्रासाद, अठारह तलका तेरहवा, चौदहवा, पन्द्रहवा और सोलहवा ये चार प्रासाद, बीस तलका सत्रहवा, अठारहवा, उन्नीसवा और बीसवा ये चार प्रासाद और बाईस तलका इक्कीस से पच्चीस तक के पाच प्रासाद है। ऐसा किसी (क्षीरार्णव) का मत है ॥१४॥

शिखरं त्वेकवेदैकं षट्त्रिवेदयुगद्वयम् ।
तलेषु क्रमतः प्रोक्तो मूलसूत्रेऽपराजिते ॥१५॥

केसरी प्रासादो मे प्रथम आठ तलका, दोसे पाच ये चार प्रासाद दस तलका, छट्ठा एक प्रासाद बारह तलका, सात से बारह ये छ प्रासाद चौदह तलका, १३ से १५ ये तीन प्रासाद सोलह तलका, १६ से १९ ये चार प्रासाद अठारह तलका, २० से २३ ये चार प्रासाद बीस तलका और चौबीसवा और पच्चीसवा ये दो प्रासाद बाईस तलका होता है। यह मूलसूत्र अपराजितपृच्छा का मत है ॥१५॥

तलेष्वष्टासु विहिताः प्रासादाः पञ्चविंशति ।
त्रयस्त्रयः क्रमेणैव चत्वारस्त्वष्टमे तले ॥१६॥

केसरी आदि पच्चीस प्रासादो की जो आठ तल विभक्ति है, उनमे प्रत्येक तल के तीन २ प्रासाद हैं और आठवा बाईस विभागीय तल के चार प्रासाद है ॥१६॥

त्रीणि त्रीणि स्वकीयानि द्वे द्वे परः परस्य च ।
शिखराणि विधेयानि विश्वकर्मवचो यथा ॥१७॥

ऊपर १६ वे श्लोक मे तलो के तीन २ प्रासाद बनाने की जो बात कही गई है। यह मेरा स्वय (मडन) का मत है और नीचे के श्लोक १८ वे मे दो दो आदि प्रासाद लिखा है, यह दूसरे का मत है। ये पच्चीस प्रासाद विश्वकर्मा के वचन के अनुसार बनाये है ॥१७॥

[1]द्विद्वयेकषट्त्रयोऽष्टादि-तलेषु पञ्चसु क्रमात् ।
सप्तैव सप्तमे षष्ठे शिरांसि त्रीणि चाष्टमे ॥१८॥

१ 'द्वित्र्येक'

आठ तल विभक्तिओं मे से पहले पाच तल विभक्ति के अनुक्रम से दो, दो, एक, छह और तीन प्रासाद हैं। छट्ठी तल विभक्ति का एक प्रासाद, सातवी तल विभक्ति के सात और आठवी तल विभक्ति के तीन प्रासाद है ।।१८।।

भेदाः पञ्चाशदेकैकं प्रोक्ताः श्रीविश्वकर्मणा ।
तेनैकस्मिंस्तलेऽपि स्युः शिखराणि बहून्यपि ।।१९।।

केसरी आदि प्रत्येक प्रासाद के पचास २ भेद श्री विश्वकर्माजी ने किये हैं। एकही प्रासाद तल के ऊपर अनेक प्रकार के शिखर बनाये जाते हैं ।।१९।।

रथिकां सिहकर्णं च भद्रे कुर्याद् गवाक्षकान् ।
प्रत्यङ्गैस्तिलकाद्यैश्च शोभितं सुरमन्दिरम् ।।२०।।

रथिका, सिहकर्ण, भद्र मे गवाक्ष, प्रत्यग और तिलक आदि आभूषणो से देवालय को सुशोभित बनावे ।।२०।।

प्रासादाः केसरीमुख्याः सर्वदेवेषु पूजिताः ।
पुरराज्ञः प्रजादीनां कर्त्तुः कल्याणकारिकाः ।।२१।।

इति केसर्यादिप्रासादा पञ्चविंशति ।

केसरी आदि जो पच्चीस प्रासाद हैं, वे सब देवो के लिये पूजित हैं। इसलिये बनानेवाले तथा नगर के राजा और प्रजा का कल्याण करने वाले हैं ।।२१।।

निरंधार प्रासाद—

षट्त्रिंशत्करतोऽधस्ताद्　　　यावद्धस्तचतुष्टयम् ।
विना भ्रमैर्निरन्धाराः कर्त्तव्याः शान्तिमिच्छता ।।२२।।

छत्तीस हाथ से न्यून चार हाथ तक, अर्थात् चार हाथ से लेकर छत्तीस हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद शान्ति को चाहने वाले शिल्पी भ्रम (परिक्रमा) बिनाके निरधार (प्रकाश वाले) भी बना सकता है। निरधार प्रासादको परिकमा नही बनावे ।।२२।।

प्रासादतलाकृतिः—

वास्तोः पञ्चविधं क्षेत्रं चतुरस्रं तथायतम् ।
वृत्तं वृत्तायतं चैवाष्टास्रं[1] देवालयादिषु ।।२३।।

---

१. अष्टास्र देवस्यालयम् ।

चोरस, लब चोरस, गोल, लंबगोल और आठ कोना वाला, इस प्रकार पाच आकार के देवालय आदि के वास्तुक्षेत्र हैं ॥२३॥

लम्बचोरस प्रासाद—

विस्तारे तु चतुर्भाग-मायामे पञ्चभागिकम् ।
ऊर्ध्वं त्रिकलशान् कुर्यात् पृष्ठाग्रे सिंहकर्णकम् ॥२४॥

लब चोरस प्रासाद के विस्तार मे चार भाग और लबाई मे पाच भाग करना चाहिये और उसके छाद्य के ऊपर तीन गुम्वद (कलश) रखना चाहिये। तथा आगे और पीछे के चारो कोने पर सिंह रखना चाहिये।

गोल, लंबगोल और अष्टास्र प्रासाद—

वृत्तायतं च कर्त्तव्यं व्यासार्धं वामदक्षिणे ।
कर्णान्तं च भ्रामयेद् वृत्तं [२]भद्राणि चाष्टकोणिका ॥२५॥
प्रासादो वर्तुलोऽष्टास्रः प्रायेणैकाण्डकः शुभः ।
कर्णे वा श्रेणयोऽण्डानां मण्डपं तत्स्वरूपकम् ॥२६॥

इति पंचक्षेत्राणि ।

गोल प्रासाद के विस्तार का आधा भाग गोल के दोनो तरफ बढावे तो लबगोल प्रासाद होता है। तलके मध्यबिंदु से कोने तक व्यासार्ध मान करके एक गोल खीचा जाय तो गोल-प्रासादतल होता है। चोरस प्रासाद के चार भद्रो मे कोना बनाया जाय तो अष्टास्र प्रासाद होता है। गोल और अष्टास्र प्रासाद प्राय करके एक शिखर वाला बनाना शुभ है। अथवा शिखर के कोने मे शृ गो की पक्ति रखनी चाहिये। इन प्रासादो का मडप भी इसी स्वरूप का बनाना चाहिये ॥२५-२६॥

नागर प्रासाद—

विविधै रूपसङ्घाटै-र्भद्रैर्गवाक्षभूषितैः ।
वितानफालनाश्रृङ्गै-रनेकैर्नागरा मताः ॥२७॥

अनेक प्रकार के तलाकृति वाले रूपो से, गवाक्ष वाले भद्रो से तथा अनेक प्रकार के गुम्वदो से और अनेक शृ गयुक्त फालनाओ से शोभायमान नागर जाति का प्रासाद बनाया जाता है ॥२७॥

---

२ वृत्तं भद्राणि चाष्ट हि ।

द्राविड प्रासाद—

पीठोपरि भवेद् वेदी पीठानि त्रीणि पञ्च वा ।
पीठतो द्राविडे रेखा लताशृङ्गादिसंयुता ॥२८॥

द्राविड प्रासाद को पादबन्धनादि तीन अथवा पाच पीठ है, इस पीठ के ऊपर वेदी होती है। तथा उसकी रेखा (कोना) लता और शृंगो वाली होती है ॥२८॥

भूमिजप्रासाद—

भूमिकोपरिभूमिश्च [1]ह्रस्वा ह्रस्वा नवान्तकम् ।
विभक्तदलसंयुक्ता मूर्ध्नि शृङ्गेण भूमिजाः ॥२९॥

भूमिज जाति के प्रासाद एक के ऊपर एक ऐसे नव भूमि (माल) तक बनाया जाता है। उसमे नीचे के मालसे ऊपर का माल छोटा २ किया जाता है। पदविभक्ति वाला और ऊपर शृंग वाला भूमिज प्रासाद है ॥२९॥

लतिन श्रीवत्स और नागर जातिके प्रासाद—

शृङ्गेणैकेन लतिनाः श्रीवत्सा[2] वारिसंयुताः ।
नागरा भ्रमसंयुक्ताः सान्धारास्ते प्रकीर्तिताः ॥३०॥

इति प्रासादजातय।

लतिन जाति के प्रासाद एक शृंग वाले हैं, श्रीवत्स प्रासाद वारि मार्ग वाले हैं। नागर प्रासाद भ्रम (परिक्रमा) वाले हैं, उसको साधार प्रासाद कहते है ॥३०॥

मेरुप्रासाद—

पञ्चहस्तो भवेन्मेरु-रेकोत्तरशताण्डकः ।
भेदाः पञ्चोनपञ्चाशत् करवृद्धया भवन्ति ते ॥३१॥
हस्ते हस्ते भवेद् वृद्धि-स्त्वण्डकानां च विंशतिः ।
एकोत्तरसहस्रं स्या-च्छृङ्गाणां च शतार्द्धके ॥३२॥

मेरु प्रासाद पाच हाथ से न्यून नही बनाया जाता। पाच हाथ के विस्तार वाले मेरु प्रासाद के ऊपर एकसौ एक शृंग चढाये जाते हैं। यह पाच हाथ से एक २ हाथ पचास हाथ तक बढाने से पैंतालीस भेद होते हैं। बढाये हुए प्रत्येक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद के ऊपर

---

१ 'ह्रस्वावकनवान्तकम्' इति पाठान्तरे। २ 'श्रीवत्साम्बुपथान्विता।'

३ यहा पञ्चाडी नवाडी आदि चार२ क्रम समझने का है।
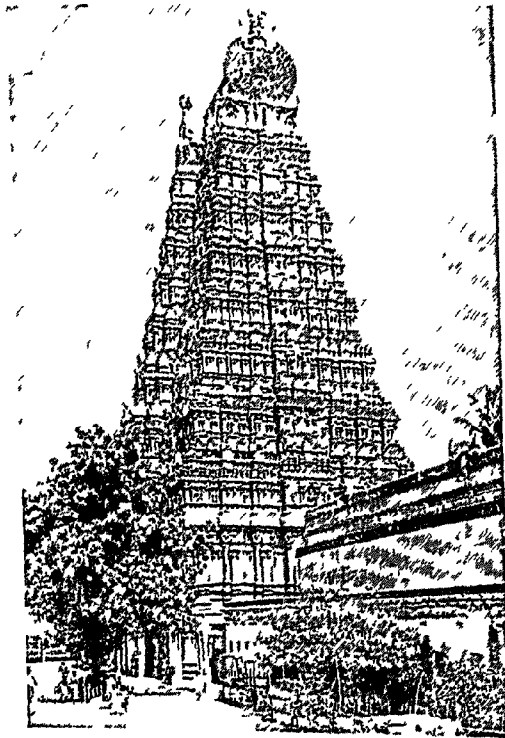
मीनाक्षीजी देवी के मंदिर की जगती के द्वार ऊपर का
गोपुर मंडप - मदुरा (दक्षिण)
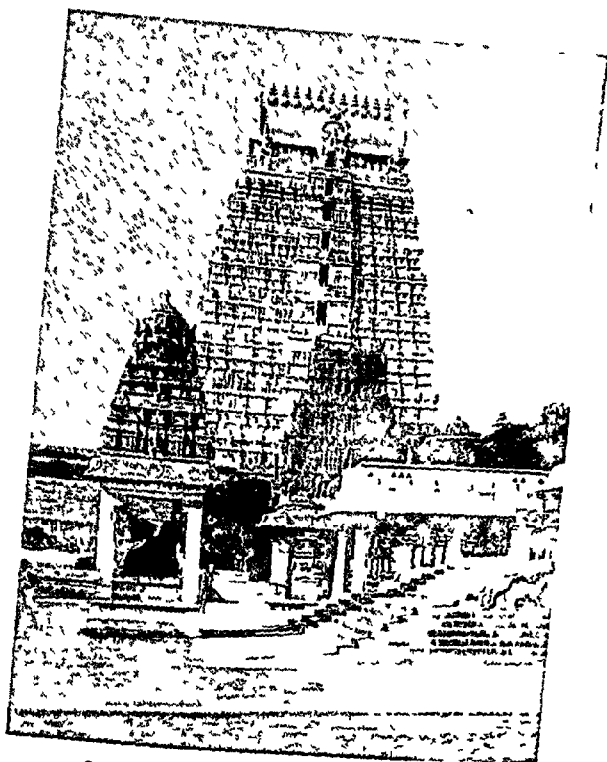
तिरुवण्णाम् (दक्षिण) के मंदिर का एक गोपुर मंडप

क्रमश बीस २ शृंग अधिक चढाये जाते है। जैसे—पाच हाथ के विस्तार वाले मेरु प्रासाद के ऊपर एक सौ एक, छह हाथ के प्रासाद के ऊपर एकसौ इक्कीस, सात हाथ के प्रासाद के ऊपर एकसौ इकतालीस, इस प्रकार बीस २ शृंग बढाते हुए पचास हाथ के मेरु प्रासाद के ऊपर एक हजार एक शृंग हो जाते है ।।३१-३२।।

विमान नागर प्रासाद—

केसरिप्रमुखाः कर्णे विमानमुरुशृंगकम् ।
तथैव मूलशिखरं पञ्चभूमिविमानकम् ।।३३।।
विमाननागरा जाति-स्तदा प्राज्ञैरुदाहृता ।
एवं शृङ्गोरुशृङ्गाणि सम्भवन्ति बहून्यपि ।।३४।।

जिस प्रासाद के कोने के ऊपर केसरी आदि के अनेक शृंग हो, और भद्र के ऊपर उरुशृंग हो, तथा मूल शिखर पाच भूमि (माल) वाला विमानाकार हो, इसको विद्वानो ने विमाननागर जाति का प्रासाद कहा है । इसके ऊपर अनेक शृंग और उरुशृंग होते हैं ।।३३-३४।।

*१-श्रीमेरुप्रासाद और २-हेमशीर्ष मेरुप्रासाद—

श्रीमेरुरष्टभागः स्या-देकोत्तरशताण्डकः ।
हेमशीर्षो दशांशश्च युतः सार्धशताण्डकैः ।।३५।।

पहला श्रीमेरुप्रासाद आठ तलविभक्ति वाला और एकसौ एक शृंग वाला है। दूसरा हेमशीर्ष मेरुप्रासाद दश तल विभक्तिवाला और डेढसौ शृंगवाला है ।।३५।।

३-सुरवल्लभ मेरुप्रासाद—

भागैर्द्वादशभिर्युक्तः सार्धद्विशतसंयुतः ।
सुरवल्लभनामा तु प्रोक्तः श्रीविश्वकर्मणा ।।३६।।
कर्णो द्विभाग एकांशा कोणी सार्धः प्रतिरथः ।
अर्धांशा नन्दिका भद्र-मर्धं भागेन सम्मितम् ।।३७।।

तीसरा सुरवल्लभ नाम का मेरु प्रासाद बारह तल विभक्ति वाला और दोसौ पचास (ढाईसौ) शृंगवाला है । ऐसा श्री विश्वकर्माजी ने कहा है । कोना दो भाग, कोणी एक भाग,

* ये नव मेरु प्रासाद का स्वरूप सविस्तर जानने के लिए देखो अपराजित पृच्छा सूत्र १८०

प्रतिरथ डेढ भाग, कोणी आधा भाग और भद्रार्ध एक भाग, इस प्रकार बारह भाग की तल विभक्ति है ॥३६-३७॥

४-भुवनमण्डन मेरुप्रासाद—

त्रिशतं पञ्चसप्तत्या-धिकैर्यत्राण्डकैः सह ।
भक्तश्चतुर्दशांशैस्तु नाम्ना भुवनमण्डनः ॥३८॥
कोणः कोणी प्रतिरथो नन्दी भद्रार्धमेव च ।
द्व्येकद्व्यर्धांशसार्धांशै-श्चतुर्दशविभाजिते ॥३९॥

चौथा भुवनमण्डन नाम का मेरुप्रासाद तीनसौ पचहत्तर शृंगवाला है। इसके तलका चौदह विभाग करे। उनमे से कोण दो भाग, कोणी एक भाग, प्रतिरथ दो भाग, कोणी आधा भाग और भद्रार्ध डेढ भाग रक्खे ॥३८-३९॥

५-रत्नशीर्ष मेरुप्रासाद--

बाणैकवेदयुग्माशा वेदाः कर्णादिभागतः ।
रत्नशीर्षो भवेन्मेरुः पञ्चशतैकशृङ्गकैः ॥४०॥

पाचवा रत्नशीर्ष मेरु प्रासाद के तलका बत्तीस भाग करे। उनमे से पाच भाग का कोना, एक भाग की कोनी, चार भाग का प्रतिरथ, दो भाग की नन्दी और चार भाग का भद्रार्ध रक्खे। इस प्रासाद के ऊपर पाचसौ एक शृंग हैं ॥४०॥

६--किरणोद्भव मेरुप्रासाद—

गुणैकयुग्मचन्द्रद्वौ पुराणांशैर्विभाजिते ।
किरणोद्भवमेरुश्च सपादषट्शताण्डकः ॥४१॥

छट्ठा किरणोद्भव मेरु प्रासाद के तल का अठारह भाग करे। उनमे से तीन भाग का कोणा, एक भाग की कोणी, दो भाग का प्रतिरथ, एक भाग की नन्दी और दो भाग का भद्रार्ध रक्खे। इस प्रासाद के ऊपर छसौ पच्चीस शृंग है ॥४१॥

७--कमलहस मेरुप्रासाद—

रामचन्द्रद्वियुग्मांशै-र्नेत्रैर्विंशतिभाजिते ।
नाम्ना कमलहंसः स्यात् सार्धसप्तशताण्डकः ॥४२॥

सातवा कमलहस नामके मेरु प्रासाद के तलका बीस भाग करना चाहिये। उनमें से

तीन भाग का कोना, एक भाग की कोनी, दो भाग का प्रतिरथ, दो भाग की नदी और दो भाग का भद्रार्ध रक्खे। इस प्रासाद के ऊपर सातसौ पचास शृंग है ॥४२॥

८–स्वर्णकेतु मेरुप्रासाद—

भागैः कर्णादिगर्भान्तं [1]वेदार्धसार्धत्र्येकांशैः ।
द्वाभ्यां च स्वर्णकेतुः स्यात् पञ्चसप्ताष्टशृङ्गकैः ॥४३॥

आठवा स्वर्णकेतु नामके मेरु प्रासाद के तलका बाईस भाग करे। इनमे से चार भाग का कोना, आधे भाग की कोणी, साढे तीन भाग का प्रतिरथ, एक भाग की नदी और दो भाग का भद्रार्ध बनावे। इस प्रासाद के ऊपर आठसौ पच्चहत्तर शृंग है ॥४३॥

९–वृषभध्वज मेरुप्रासाद—

वेदैकरामयुग्मांशै–र्नेत्रैर्जिनविभाजिते ।
वृषभध्वजमेरुश्च सैकाण्डकसहस्रवान् ॥४४॥

नववा वृषभध्वज मेरु प्रासाद के तलका चौबीस भाग करे। इनमे से चार भाग का कोना, एक भाग की कोनी, तीन भाग का प्रतिरथ, दो भाग की नन्दी और दो भाग का भद्रार्ध रक्खे। यह प्रासाद एक हजार एक शृंग वाला है॥४४॥

सभ्रमो भ्रमहीनश्च महामेरुर्भ्रमद्वयम् ।
सान्धारेषु प्रकर्त्तव्यं भद्रे चन्द्रावलोकनम् ॥४५॥

उपरोक्त नव महामेरु प्रासाद भ्रम (परिकमा) वाले अथवा विना भ्रमवाले बनाये जाते हैं। एव दो भ्रमवाले भी बनाये जाते हैं। यदि दो भ्रमवाले सान्धार मेरु प्रासाद बनाया जाय तब उसके भद्र मे चद्रावलोकन करना चाहिये अर्थात् प्रकाश के लिये जाली या गवाक्ष बनाना चाहिये ॥४५॥

राज्ञः स्यात् प्रथमो मेरु-स्ततो हीनो [2]द्विजादिकः ।
विना राज्ञोऽन्यवर्णेन कृते मेरौ महद्भयम् ॥४६॥

इति नवमेरुलक्षणम्।

इति श्री सूत्रधार मण्डनविरचिते प्रासादमण्डने वास्तुशास्त्रे केसर्यादि प्रासादजातिलक्षणे पञ्चचत्वारिंशन्मेरुलक्षणे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

---

१ 'वेदाधाद्ध त्रिसार्द्धैकै ।' २. 'ऽन्यवर्णज ।'

मेरुप्रासाद राजालोग बनावे। धनिक लोग मेरुप्रासाद से न्यून प्रासाद बनावे, अर्थात् मेरुप्रासाद नही बनावे। यदि बनावे तो राजा के साथ बनावे। राजा के विना अकेले धनिक द्वारा बनाया हुआ मेरुप्रासाद बडा भयकारक माना है ॥४६॥

इति श्री पडित भगवानदास जैन द्वारा अनुवादित प्रासादमण्डन का केसर्यादि-
प्रासाद लक्षणनाम का छट्ठा अध्याय की सुबोधिनी नामकी
भाषाटीका समाप्त ॥६॥

———

अथ प्रासादमण्डने सप्तमोऽध्यायः

मंडप विधान—

रत्नगर्भाङ्कितं सूर्यचन्द्रताराविताानकम् ।
विचित्रं मण्डपं येन कृतं तस्मै नमः सदा ॥१॥

लगे हुए रत्नवाले तथा सूर्य चद्रमा और तारे जैसा तेजस्वी वितान (गुम्बद का पेटा भाग चादनी) वाले, ऐसे अनेक प्रकार के मण्डपो की जिसने रचना की है, उनको हमेशा नमस्कार है ॥१॥

गर्भाग्रमंडप—

कर्णगूढा त्रिलोक्याश्च एकत्रिद्वारसंयुताः ।
प्रासादाग्रे प्रकर्त्तव्याः सर्वदेवेषु मण्डपाः ॥२॥

गूढ कोना वाला अर्थात् दीवार वाला अथवा विना दीवार वाला खुला, तथा एक अथवा तीन द्वारवाला, ऐसा मडप सब देवो के प्रासाद के आगे किया जाता है ॥२॥

जिनप्रासाद के मंडप—

गूढस्त्रिकस्तथा नृत्यः क्रमेण मण्डपास्त्रयः ।
जिनस्याग्रे प्रकर्त्तव्याः सर्वेषां तु बलाणकम् ॥३॥

जिनदेव के गर्भगृह के आगे गूढ मण्डप, इसके आगे चौकी वाले त्रिकमडप और इसके आगे नृत्यमडप, इस प्रकार अनुक्रम से तीन मडप बनावे। बाकी सब देवो के गर्भगृह के आगे बलाणक बनावे ॥३॥

मंडपके पाच मान—

समं सपादं प्रासादात् सार्धं च पादोनद्वयम् ।
द्विगुणं वा प्रकर्त्तव्यं मण्डपं पञ्चधा मतम् ॥४॥

मडप का नाप प्रासाद के बराबर, सवाया, डेढा, पौने दुगना अथवा दुगना किया जाता है। ये मडप के पाच प्रकार के नाप हैं ॥४॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १८५ मे सवा दो गुणा और ढाई गुणा ये दो प्रकार का अधिक नाप मिलाकर सात प्रकार के मडप के नाप लिखे है।

प्रासाद और मंडपों का तलदर्शन

(प्रासाद मडन अ ७)
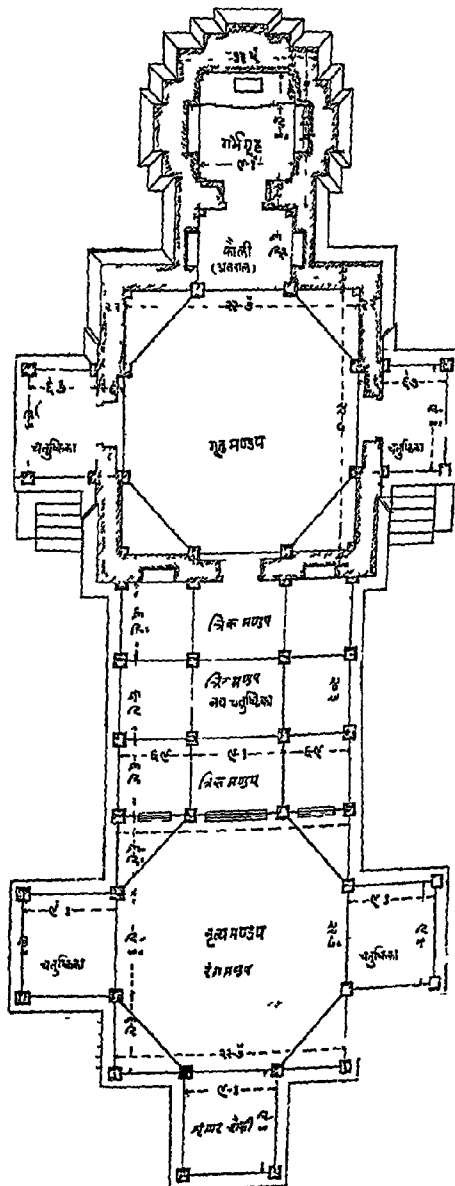
प्रासादमान से मंडप का नाप—

समं सपादं पञ्चाशत्पर्यन्तं दशहस्तकात् (तः) ।
दशान्तं पञ्चतः सार्धं द्विपादोनं चतुष्करे ॥५॥

त्रिहस्ते द्विगुण द्व्येक-हस्ते कुर्याच्चतुष्किकाम् ।
प्रायेण मण्डपं सार्धं द्विगुणं प्रत्यलिन्दकैः ॥६॥

दश हाथ से पचास हाथ तक के प्रासाद को समान अथवा सवाया, पाच हाथ से दश हाथ तक के प्रासाद को डेढा, चार हाथ के प्रासाद को पौने दो गुना और तीन हाथ के विस्तार वाले प्रासाद को दुगुना मडप बनाना चाहिये। दो और एक हाथ के प्रासाद को सिर्फ चौकी बनावे। प्राय करके मण्डप का प्रमाण डेढा या दुगना अलिन्द के अनुसार जानना चाहिये ॥५-६॥

गूमट के घंटा कलश और शुकनास का मान—

मण्डपे स्तम्भपट्टादि-मध्यपट्टानुसारतः ।
शुकनाससमा घण्टा न्यूना श्रेष्ठा न चाधिका ॥७॥

मण्डप में स्तभ और पाट आदि सब गर्भगृह के पट्ट आदि के अनुसार रखना चाहिये। मण्डप के गूमट के घटा कलश की ऊचाई शुकनास के बराबर रखना चाहिये। कम या अधिक नही रखनी चाहिये ॥७॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १८५ श्लोक १० मे लिखा है कि—'शुकनाससमा घण्टा न न्यूना न ततोऽधिका।' अर्थात् गूमट के आमलसार कलश की ऊचाई शुकनास के बराबर रक्खे। न न्यून न अधिक रक्खे।

मडप के समविषम तल—

मुखमण्डपसङ्घाटो यदा भित्त्यन्तरे भवेत् ।
न दोषः स्तम्भपट्टाद्यैः समं च विषमं तलम् ॥८॥

गर्भगृह और मुखमडप के बीच मे यदि भित्त (दीवार) का अतर हो तो मडप मे स्तभ, पट्ट और तल ये समविषम किया जाय, तो दोष नही है। अर्थात् ऊपर के श्लोक मे कहा है कि- गर्भगृह के पट्ट स्तभ के अनुसार बराबर मे मडप के पट्ट स्तभ आदि रखा जाता है। परन्तु इन दोनो के बीच मे दीवार का अतर हो तो सम विषम रखा जाय तो दोष नही माना जाता ॥८॥

*मु ंडप—

नवाष्टदशभागेषु त्रिभिश्चन्द्रावलोकनम् ।
हस्तैकं त्र्यङ्गुलोनं वा तदूर्ध्वं मत्तवारणम् ॥६॥

गर्भगृह के आगे मुखमडप है, उसके उदयका साढे तेरह, साढे चौदह अथवा साढे पद्रह भाग करे। उनमे से आठ, नव अथवा दस भाग का चद्रावलोकन (खुला भाग) रखे। तथा आसनपट के ऊपर एक हाथ का अथवा इक्कीस अगुल का मत्तवारण (कठहरा) बनावे ॥६॥
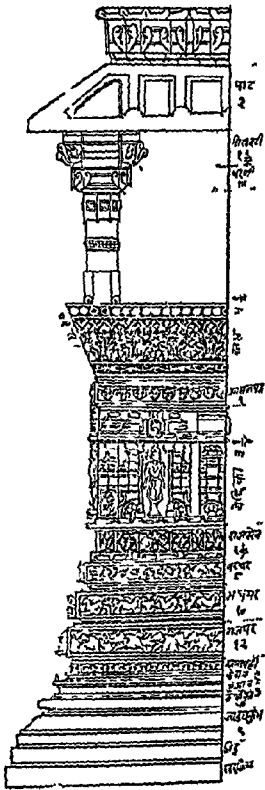
मुखमडप

सार्धपञ्चांशकैर्भक्तैः सपादं राजसेनकम् ।
सपादत्र्यंशका वेदी भागेनासनपट्टकम् ॥१०॥

खुले भाग के नीचे से मडप के तल तक साढे पाच भाग करे। उनमे से सवा भाग का राजसेन, सवातीन भाग की वेदी और एक भाग का आसनपट्ट बनावे ॥१०॥

तदूर्ध्वं सार्धसप्तांशा यावत्पट्टस्य पेटकम् ।
सार्धपञ्चांशकः स्तम्भः पादोनं भरणं भवेत् ॥११॥
भागार्धं भरणं वापि सपादं सार्धतः शिरः ।

आसनपट्ट के ऊपरसे पाटके तलभाग तक साढे सात भाग करे। उनमे से साढे पाच भाग का स्तम्भ रखे। उसके ऊपर पौन अथवा आधे भाग की भरणी और इसके ऊपर सवा या डेढ भागकी शिरावटी रक्खें ॥११॥

पट्टो द्विभागस्तस्योर्ध्वे कर्त्तव्यश्छाद्यकोदयः ॥१२॥
त्रिभागः ललितं छाद्यं यावत्[1] पट्टस्य पेटकम् ।
अर्धांशोर्ध्वा कपोतालि-द्विभागः पट्टविस्तरः ॥१३॥

शिरावटी के ऊपर दो भागका पाट रक्खें। उसके ऊपर तीन भाग निकलता और पाटके पेटा भाग तक नमा हुआ सुन्दर छज्जा बनावे। उसके ऊपर आधे भाग की केवाल बनावे , पाटका विस्तार दो भाग रक्खे ॥१२-१३॥

* विशेष जानकारी के लिए देखो अपराजितपृच्छा सूत्र १८४ श्लोक ५ से १३ तक

१ तत्पेट पट्टपेटकम् ।
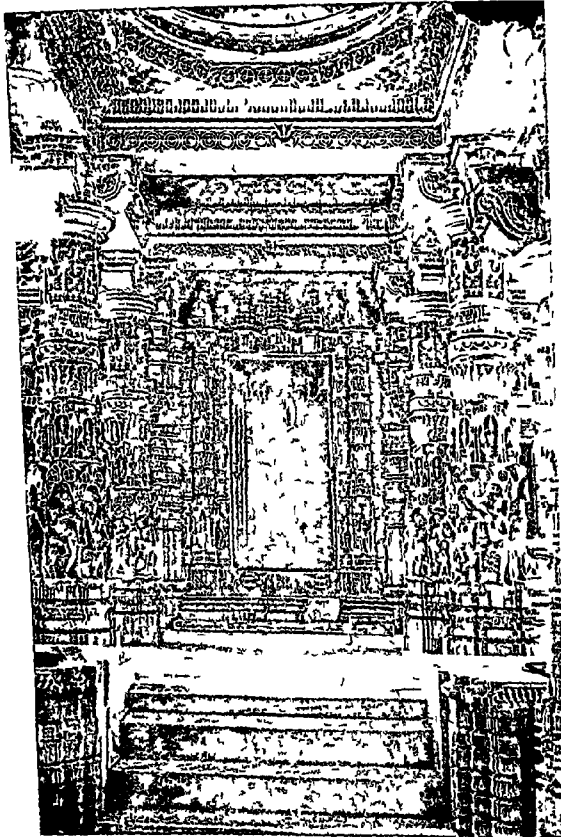
लूणवसही जैन मदिर आबू के मडप का दृश्य
अनुपम कोतरणी वाला स्तभ
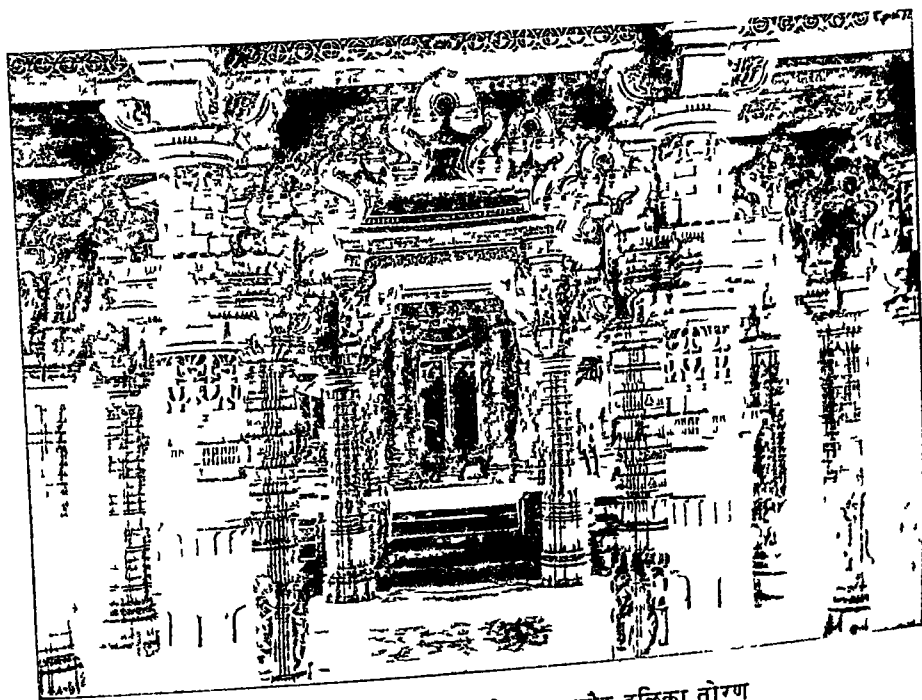
आबू जैन मंदिर के मंडप के स्तंभ और तलिका तोरण

स्तंभ का विस्तारमान और भेद—

प्रासादाद् दशरुद्रार्क-भागेन स्तम्भविस्तरः ।
वेदाष्टरविविंशत्यः कर्णा वृत्तस्तु पञ्चधा ॥१४॥

प्रासाद के दसवा, ग्यारहवा अथवा बारहवा भागके बराबर स्तभ का विस्तार (मोटाई) रक्खे । तथा चार, आठ, बारह और वीस कोना वाला और गोल, ऐसे पाच प्रकार के स्तभ हैं ॥१४॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १८४ श्लोक ३५ मे तेरहवा और चौदहवा भाग के बराबर भी स्तभ का विस्तार रखना लिखा है ।

आकृति से स्तंभसंज्ञा—

"चतुरस्राश्च रुचका भद्रका भद्रसयुता ।
वर्द्धमाना प्रतिरथैस्तथाष्टाशैश्चाष्टास्रका ॥
आसनोर्ध्वे भवेद् भद्र-मष्टकर्णैस्तु स्वस्तिका ।
प्रकर्तव्या पञ्चविधा स्तम्भा प्रासादरूपिण ॥" अप० सू० १८४

चार कोना वाला चतुरस्र, भद्रवाला भद्रक, प्रतिरथवाला वर्द्धमान, आठ कोना वाला अष्टास्र और आसन के ऊपर से भद्र और आठ कोना वाला स्वस्तिक नाम का स्तभ कहा जाता है । ये पाच प्रकार के स्तभ प्रासाद के अनुसार बनाना चाहिये ।

क्षीरार्णग्रंथ के अनुसार स्तंभ का विस्तार मान—

"एकहस्ते तु प्रासादे स्तम्भ स्याच्चतुरङ्गुल ।
द्वौ हस्ते चाङ्गुल सप्त त्रिहस्ते च नवाङ्गुल ॥
तस्योर्ध्वं दशहस्ताना हस्ते हस्ते च द्वयङ्गुला ।
सपादाङ्गुला वृद्धि स्यात् त्रिंशद्धस्ते यदा भवेत् ॥
अङ्गुलैका ततो वृद्धि-श्चत्वारिंशश्च हस्तके ।
तस्योर्ध्वं च शतार्द्धं च पादोनमङ्गुल भवेत् ॥"

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद का स्तभ चार अगुल, दो हाथ के प्रासाद का स्तभ सात अगुल, तीन हाथ के प्रासाद का स्तभ नव अगुल, चार से दश हाथ के प्रासाद का स्तभ प्रत्येक हाथ दो दो अगुल, ग्यारह से त्रीस हाथ के प्रासाद का स्तभ प्रत्येक हाथ सवा सवा अगुल, इकतीस से चालीस हाथ के प्रासाद का स्तभ प्रत्येक हाथ एक एक अगुल और इकतालीस से

पच्चास हाथ के विस्तार वाले प्रासाद का स्तभ पौन पौन अगुल बढाकर स्तभ का विस्तार करना चाहिये।

स्तंभका अन्य विस्तार मान—

"एक हस्ते तु प्रासादे स्तम्भ स्याच्चतुरङ्गुल ।
सप्ताङ्गुलश्च द्विहस्ते त्रिहस्ते तु नवाङ्गुल ॥
द्वादशाङ्गुलविस्तार प्रासादे चतुर्हस्तके ।
चतुर्हस्तादित कृत्वा यावद् द्वादशहस्तकम् ॥
सार्धाङ्गुला भवेद् वृद्धि प्रतिहस्ते विवर्द्धयेत् ।
द्वादशहस्तस्योर्ध्वं तु यावत् त्रिंशद्धस्तकम् ॥
अङ्गुलैका ततो वृद्धि-र्हस्ते हस्ते प्रदापयेत् ।
अत उर्ध्वं तत कुर्याद् यावत्पञ्चाशद्धस्तकम् ॥
अर्धाङ्गुला भवेद् वृद्धि कर्त्तव्या शिल्पिभि सदा ।
उच्छ्रय चतुर्गुण प्रोक्त-मेतत्स्तम्भस्य लक्षणम् ॥"

इति ज्ञानप्रकाशदीपार्णवे ।

एक हाथ के प्रासाद मे स्तभ का विस्तार चार अगुल, दो हाथ के प्रासाद मे सात अगुल, तीन हाथ के प्रासाद मे नव अगुल और चार हाथ के प्रासाद मे बारह अगुल रक्खे। पीछे पाँच हाथ से बारह हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ डेढ डेढ अगुल, तेरह हाथ से तीस हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ एक एक अगुल और इकतीस से पचास हाथ तक के प्रासाद मे प्रत्येक हाथ आधा आधा अगुल बढा करके स्तभ का विस्तार रक्खे और विस्तार से चार गुणी स्तभ की ऊचाई रक्खे।

प्राग्ग्रीव मंडप—

द्वाराग्रे स्तम्भवेद्याद्या प्राग्गीवो मण्डपो भवेत् ।
द्विद्विस्तम्भविवृद्ध्या च षोडशैते प्रकीर्त्तिता ॥१५॥

प्रासाद के द्वारके आगे दो स्तभवाली प्रथम वेदी है, वह प्राग्ग्रीव मडप है। उनमें दो २ स्तभ बढाने से सोलह प्रकार का प्राग्ग्रीव मडप होता है ॥१५॥

विशेष जानने के लिये देखो अपराजितपृच्छा सूत्र १८८ श्लोक १ से ११

आठ जाति के गूढ मडप—

भित्तिः प्रासादवद् गूढे मण्डपेऽष्टविधेषु च ।
चतुरस्रः सुभद्रश्च तथा प्रतिरथान्वितः ॥१६॥
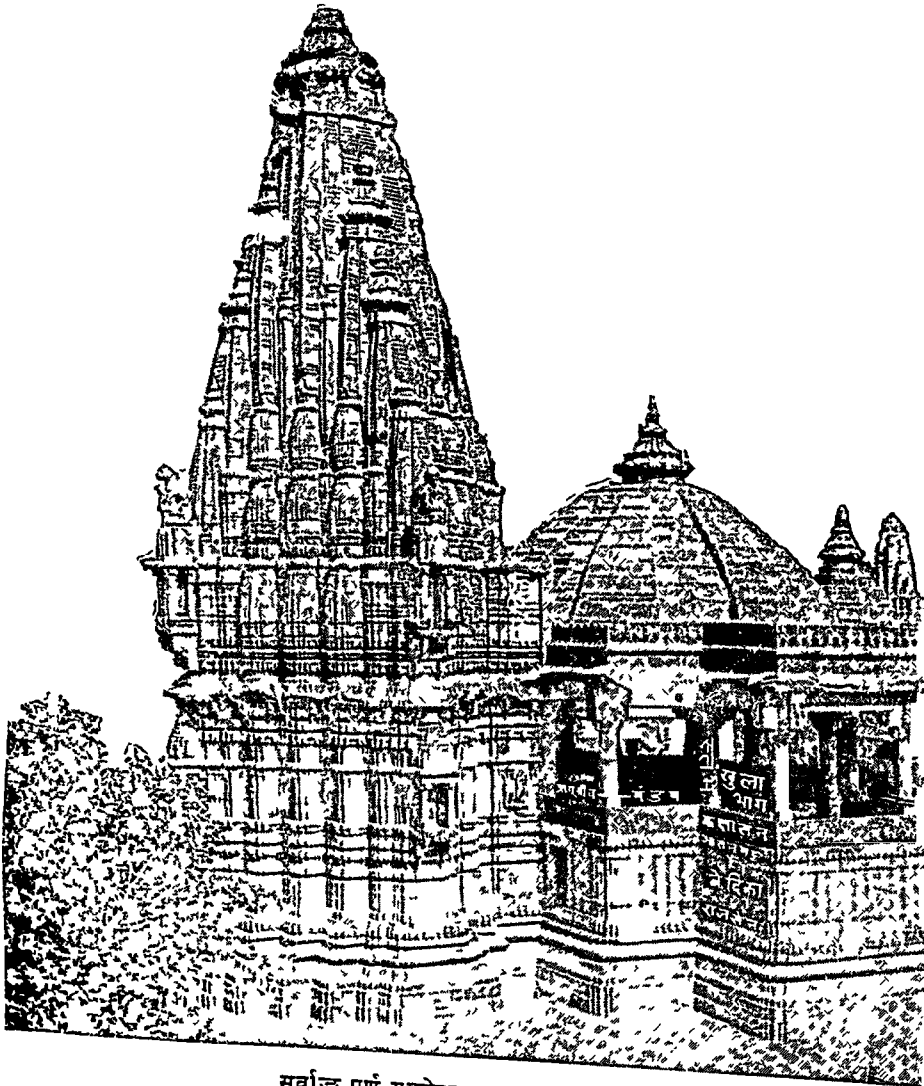
सर्वाङ्ग पूर्ण सांगोपांग वाला प्राचीन देवालय
आमेर-जयपुर (राजस्थान)
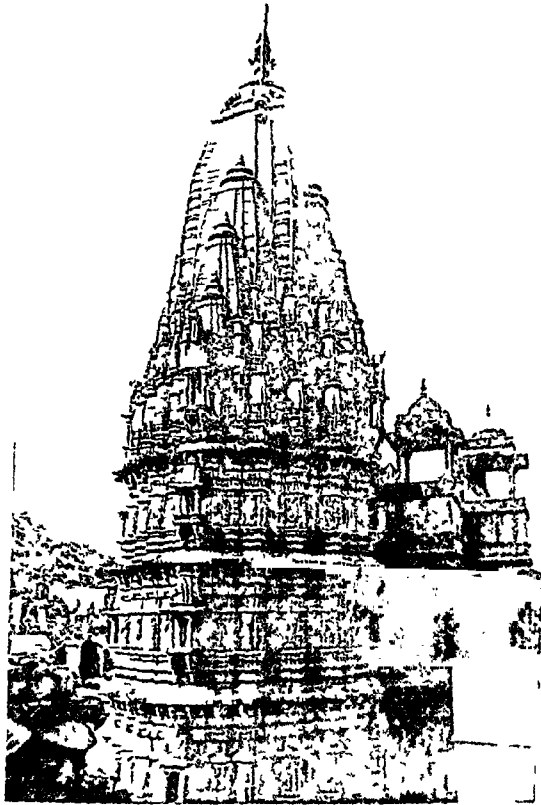
जगतशरणजी का प्राचीन मेरु मंडोवर वाला देवालय
आमेर-जयपुर (राजस्थान)
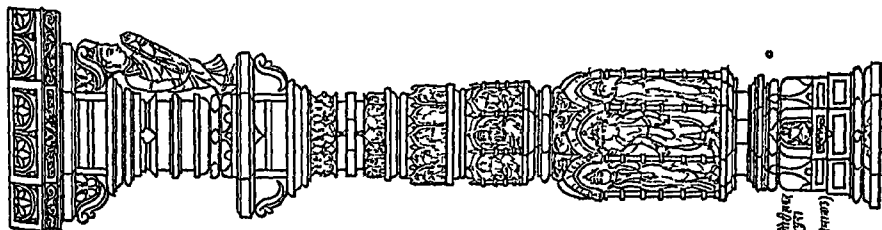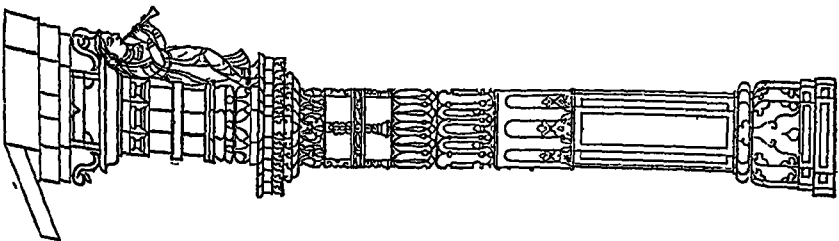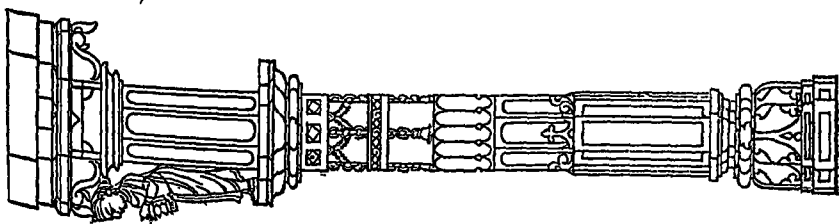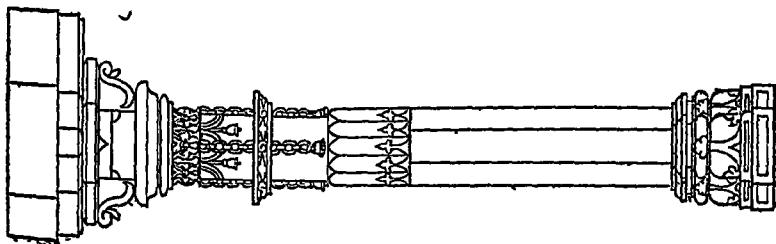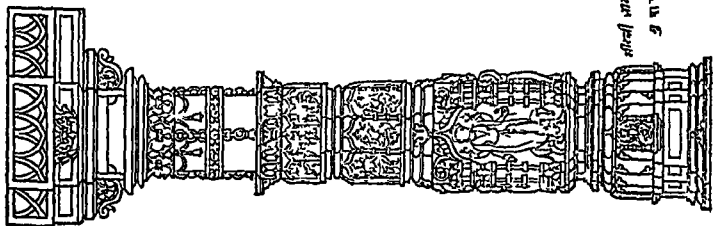
स्तंभो के नमूने

मुखभद्रयुतो वापि द्वित्रिप्रतिरथैर्युतः ।
कर्णोदकान्तरेणाथ भद्रोदकविभूषितः ॥१७॥

आठ प्रकार के गूढ मडपो की भी दीवार प्रासाद के दीवार जैसी बनावे अर्थात् प्रासाद की दीवार जितने थरवाली हो उतने थरवाली और रूपो की आकृति वाली हो तो रूपो की आकृति वाली गूढ मडप की दीवार बनानी चाहिये । वे समचोरस, सुभद्र और प्रतिरथ वाला, मुखभद्र और दो या तीन प्रतिरथ वाला, कर्ण जलान्तर वाला अथवा भद्र जलान्तर वाला, ऐसे आठ प्रकार के गूढ मडप है ॥१६-१७॥
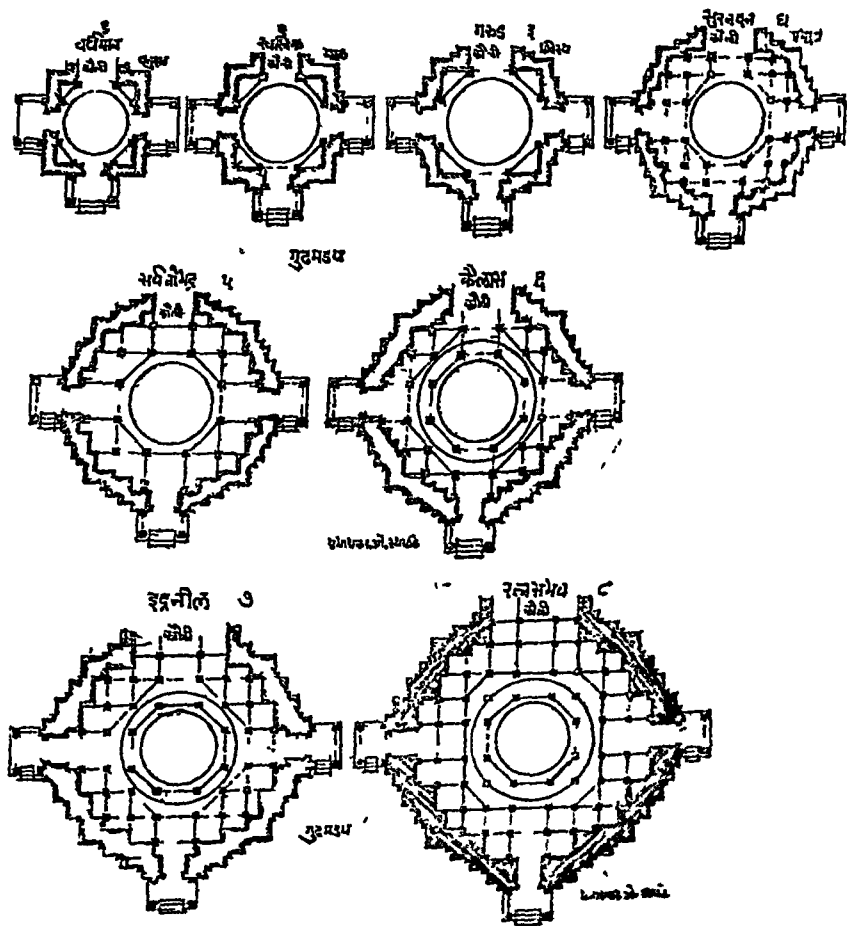
गूढमण्डप की फालना—

कर्णतो द्विगुणं भद्रं पादोनप्रतिकर्णकः ।
भद्रार्धं मुखभद्रं च शेषं षड्वसु भाजितम् ॥१८॥

कोने से दुगुणा भद्र और पौन भाग का प्रतिरथ रक्खे, भद्र से आधा मुखभद्र रक्खे। बाकी नदी आदि छट्ठ अथवा आठवे भाग की रक्खे ॥१८॥

दलेनार्धेन पादेन दलस्य निर्गमो भवेत् ।
मूलप्रासादवद् बाह्ये पीठजङ्घादिमेखला ॥१९॥

फालनाओ का निर्गम अपना चौथा अथवा आधा भाग का रक्खे तथा पीठ जघा आदि की मेखलाए मुख्य प्रासाद के जैसी बाहर निकलती हुई बनावे ॥१९॥

गवाक्षेणान्वितं भद्र-मथ जालकसंयुतम् ।
गूढोऽथ कर्णगूढो वा भद्रे चन्द्रावलोकनम् ॥२०॥

गूढ मडप के भद्र मे जाली अथवा गवाक्ष बनावे। कोने गुप्त (अधकार मय) रक्खें अर्थात् दीवार बनावे अथवा भद्र मे चद्रावलोकन (खुला भाग) रक्खे ॥२०॥

त्रिद्वारे चैकवक्त्रेऽथ मुखे कार्या चतुष्किका ।
गूढे आकाशके वृत्त-मर्धोदयं करोटकम् ॥२१॥

इत्यष्टगूढमण्डपाः ।

गूढ मडप में तीन अथवा एक द्वार बनावे और द्वारके आगे चौकी मडप बनावे। मडप को गोलाई के विस्तार मान से आधे मान का करोटक (गूमट) का उदय रक्खे ॥२१॥

विशेष जानने के लिये देखे अप० सू० १८७ वर्द्धमानादि अष्टमडप।

गूमट के उदयका तीन प्रकार—

"अर्धोदयश्च यत्प्रोक्तो वामन उदयो भवेत् ।
कृते चैव भवेच्छान्ति सर्वयज्ञफल लभेत् ॥
अर्धोदयश्च नवधा द्वौ भागौ परिवर्जयेत् ।
अनन्त उदयो नाम सर्वलोकसुखावह ॥
अर्धोदयश्च नवधा त्रयभागान् परित्यजेत् ।
वाराह उदयो नाम अनन्तफलदायक ॥" ज्ञानरत्नकोशे ।

गूमट का ऊदय विस्तार से आधे मानका रक्खे, यह वामन नाम का उदय कहा जाता है यह सब यज्ञो के फल को देने वाला है और शान्तिदायक है। उदय का नव भाग कर, उन में से दो भाग कम करके सात भाग का उदय रक्खे, उसको अनन्त नाम का उदय कहते हैं, यह सब लोगो के लिये सुख कारक है। नव भाग मे से तीन भाग कम करके छह भाग का उदय रक्खे, उसको वाराह नाम का उदय कहते हैं। यह अनन्त फल को देने वाला है।

गूमट का न्यूनाधिक उदय फल—

"उदयाश्च समाख्याता अनन्त फलदायका।
तत्र देशे भवेच्छान्ति-रारोग्य च प्रजायते॥
उदये हीनाश्च ये केचित् क्रियन्ते मण्डपा भुवि।
तत्र मारी महाव्याधी राष्ट्रभङ्गभय भवेत्॥
दुर्भिक्ष चातिरौद्र च राजा च म्रियते तथा।
धन निष्फलता याति शिल्पिनो म्रियन्ते ध्रुवम्॥" इति ज्ञानरत्नकोशे।

उदय का जो मान बतलाया है, उसी मान के अनुसार कार्य करने से वह अनन्त फल को देने वाला, देश मे शान्ति करने वाला और आरोग्यता को बढाने वाला है। यदि ये मडप कहे हुए उदय के मान से हीन कर तो देश मे महामारी, अनेक प्रकार की व्याधिया, देश भग का भय, भयकर दुर्भिक्ष, राजा की मृत्यु, धनकी निष्फलता और शिल्पियो की मृत्यु, इत्यादि उपद्रव होने का भय है।

बारह चौकी मंडप—

एकत्रिवेदपट्सप्ता-ङ्कचतुष्क्यस्त्रिकत्रये।
अग्रे भद्र विना पार्श्वे पार्श्वयोरग्रतस्तथा॥२२॥
अग्रतस्त्रिचतुष्क्यश्च तथा पार्श्वद्वयेऽपि च।
मुक्तकोणे चतुष्के चेदिति द्वादश मण्डपाः॥२३॥

गूढमडप के आगे एक, तीन, चार, छह, सात और नव चौकी वाले, ये छह प्रकार के मडप हुए, उनमे छट्ठा नव चौकी वाले मडप के आगे एक चौकी हो ७, अथवा आगे चौकी न हो परन्तु दोनो बगल मे एक एक चौकी हो ८, तथा दोनो बगल मे और आगे एक एक चौकी हो ९, अथवा आगे तीन चौकी हो, अर्थात तीन तीन चौकी वाली चार लाईन हो १०, इसके दोनो बगल मे एक २ चौकी हो ११ अथवा दोनो बगल में और आगे एक २ चौकी हो १२, ऐसे बारह प्रकार के चौकी मडप हैं॥२२-२३॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १८७ मे विशेषरूप से कहा है कि—

गूढमडप के आगे एक चौकी वाला सुभद्र १, तीन चौकी वाला किरीट२, तीन चौकी के आगे एक चौको, ऐसा चार चौकी वाला दुदुभी ३, तीन २ चौकी की दो लाईन, ऐसा छह चौकी वाला प्रान्त ४, छह चौकी के आगे एक चौकी ऐसा सात चौकी वाला मनोहर कामद ५,
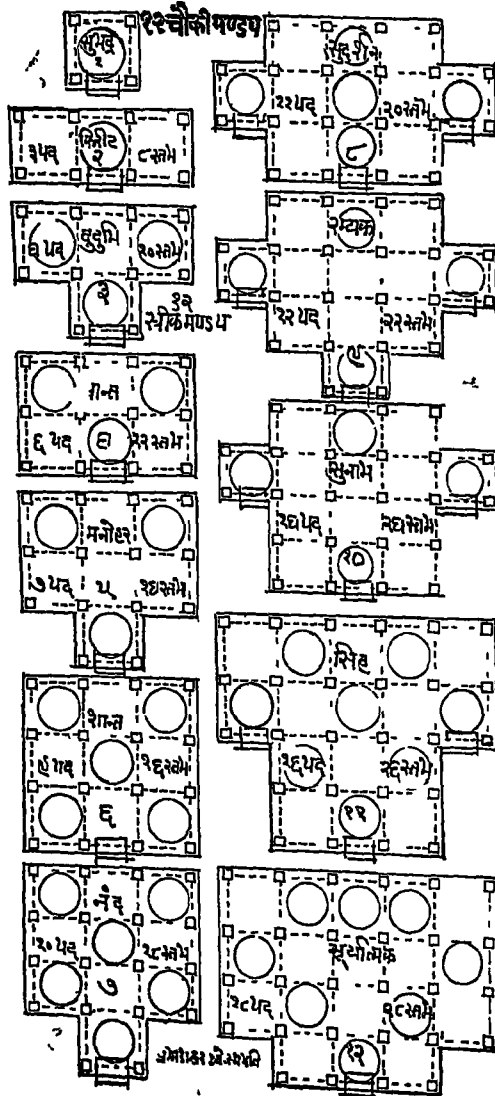
तीन २ चौकी की तीन लाईन ऐसा नव चौकी वाला शान्त नाम का मडप कहा जाता है ।।६।। शान्तमडप के आगे एक चौकी हो तो नद ७, शान्तमडप के आगे चौकी न हो, परन्तु दोनो बगल मे एक २ चौकी हो तो सुदर्शन ८, शान्तमडप के आगे और दोनो बगल में एक २ चौकी हो तो रम्यक ६, तीन २ चौकी वाली चार लाईन हो तो सुनाभ १०, सुनाभ मडप के दोनो बगल मे एक २ चौकी हो तो सिंह ११, और सिंह मडप के आगे एक चौकी हो तो सूर्यात्मक नामका मडप १२ कहा जाता है। इन मडपो के ऊपर गूमट अथवा सवरणा किया जाता है।

गूढस्याग्रे प्रकर्त्तव्या नानाचतुष्किकान्विताः ।
चतुरस्रादिभेदेन वितानैर्बहुभिर्युताः ।।२४।।

इति द्वादशत्रिकमडपा ।

पुष्पकादिमण्डपो
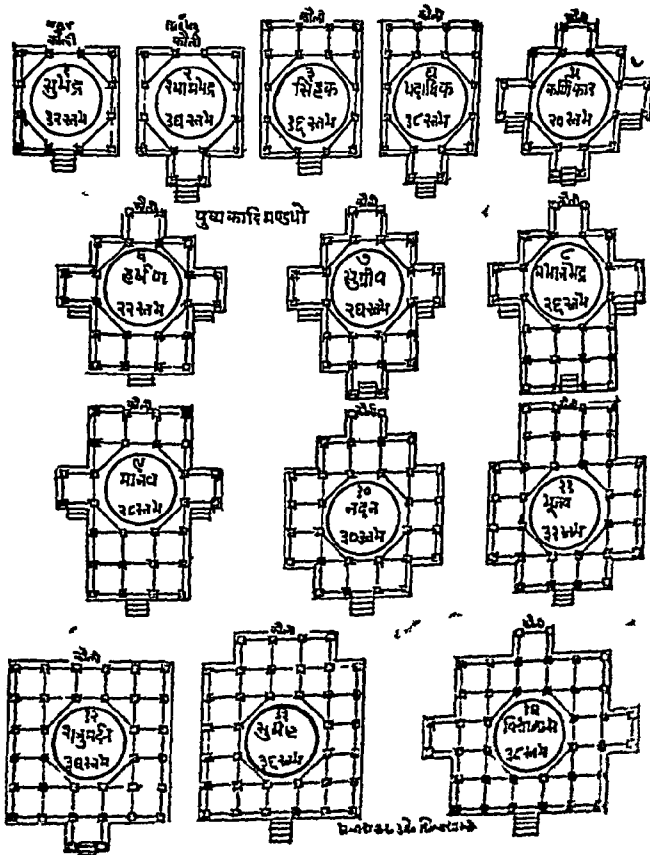
ऐसे ये बारह प्रकार के मंडप गूढ मंडप के आगे अनेक प्रकार के चौकी वाले किये जाते हैं। तथा ये मडप समचोरस आदि आकृति वाले और अनेक प्रकार के वितान (चदोवा) वाले होते हैं ॥२४॥

नृत्यमण्डप—

> त्रिकाग्रे रङ्गभूमिर्या तत्रैव नृत्यमण्डपः ।
> प्रासादाग्रेऽथ सर्वत्र प्रकुर्याच्च विधानतः ॥२५॥

चौकी मंडप के आगे जो रगभूमि है, उसी भूमि के ऊपर ही नृत्यमंडप किया जाता है। ऐसा सब प्रासादो के आगे बनाने का विधान है ॥२५॥
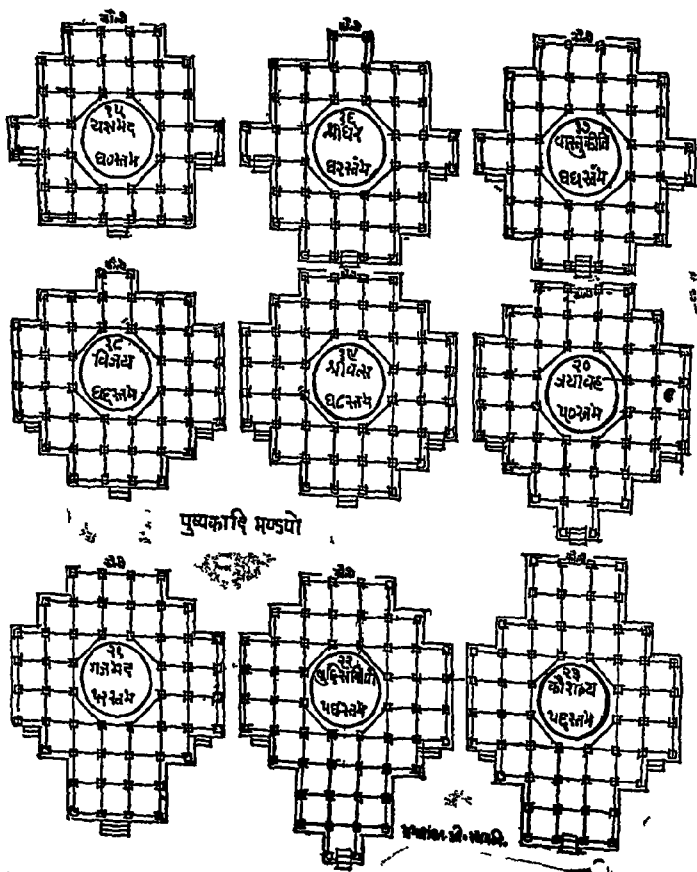
पुष्पकादि मण्डपो

सप्तविंशति मण्डप—

सप्तविंशतिरुक्ता ये मण्डपा विश्वकर्मणा ।
तलैस्तु विषमैस्तुल्यैः चणैः स्तम्भैः समैस्तथा ॥२६॥

प्रथमो द्वादशस्तम्भो द्विद्विस्तम्भविवर्द्धनात् ।
यावत् षष्टिश्चतुर्युक्ताः सप्तविंशतिमण्डपाः ॥२७॥

श्री विश्वकर्मा ने जो सत्ताईस प्रकार के मडप कहे हैं उनके तल सम अथवा विषम कर सकते हैं, परन्तु चण (खड ?) और स्तम ये सम सख्या मे ही रखना चाहिये। पहला मडप बारह स्तम का है। पीछे दो २ स्तभ की वृद्धि चौसठ स्तभ तक बढाने से सत्ताईस मडप होते हैं ॥२६-२७॥

विशेष जानने के लिये देखे समरागण सूत्रधार अध्याय ६७ और अपराजितपृच्छा सूत्र १८६ वा। इन दोनो मे प्रथम मडप चौसठ स्तभो का लिखा है, पीछे दो २ स्तभ घटाने से सत्ताईसवा मडप बारह स्तभ का बनाने को कहा है।

अष्टास्र और षोडशास्र--
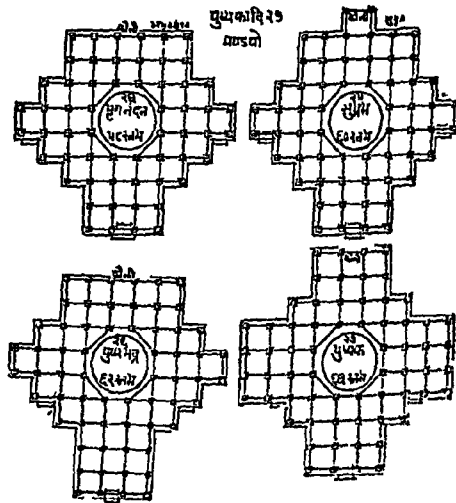
क्षेत्रार्धे स्वपडशोन-मेकास्रेऽष्टास्रमुच्यते ।
कलास्रः क्षेत्रपड्भागास्तत्पडशेन संयुतः ॥२८॥
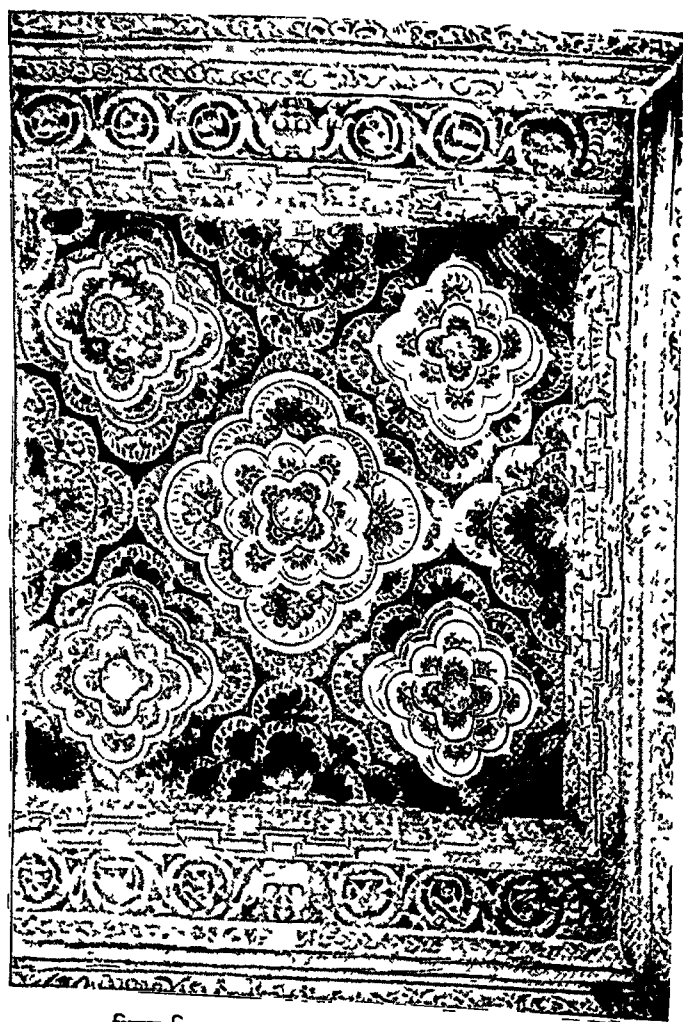
क्षिप्त वितान का दृश्य – जैन मंदिर-आबू

सभा मंडप के उत्क्षिप्त वितान का भीतरी कलामय दृश्य

जैन मंदिर-आबू

क्षेत्र के विस्तार के आधे का छह भाग करे, उनमे से एक भाग कम करके बाकी पाच भाग के मान की अष्टास्र की एक भुजा का मान जाने। यदि पोडशास्र बनाना हो तो क्षेत्र के विस्तार का छह भाग करे। उनमे से एक भाग का छट्ठा भाग विस्तार के छट्ठे भाग मे जोड देने से जो मान हो, यही मानकी षोडशास्र की एक भुजा का मान होता है ॥२८॥

वितान (चंदोवा-गूमट)—

अष्टास्रं पोडशास्रं च वृत्तं कुर्यात् तदूर्ध्वतः ।
उदयं विस्तरार्धेन पट् पञ्च सप्त वा भवेत् ॥२९॥

मडप के चदोवा का उदय बनाने की क्रिया इस प्रकार है। प्रथम पाट के ऊपर अष्टास्र बना कर उसके ऊपर पोडशास्र बनावे और पोडशास्र के ऊपर गोलाई बनावें। मडप के विस्तार से आधा वितान का उदय रखे। उदय मे पाच छह अथवा सात थर बनावे ॥२९॥

वितान (गूमट) के थर—

कर्णदर्दरिका सप्त-भागेन निर्गमोन्नता[1] ।
रूपकण्ठस्तु पञ्चांशो द्विभागेनात्र[2] निर्गमः ॥३०॥

१ "निगमोच्छ्रय.।" २ 'द्विभागोन्नत।'
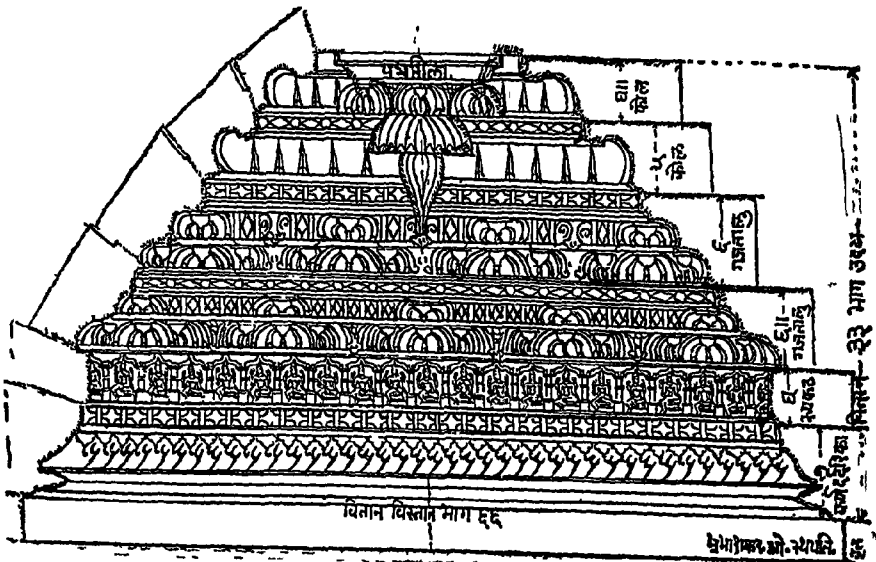
कर्णदर्दरिका का थर सात भाग के उदय मे और सात भाग निर्गम में रक्खे। रूपकंठ का उदय पाच भाग और निर्गम दो भाग रक्खे ॥३०॥

विद्याधरैः समायुक्तं षोडशाष्टदिवाकरैः ।
जिनसंख्यामितैर्वापि दन्ततुल्यैर्विराजितम् ॥३१॥

आठ, बारह, सोलह, चौबीस अथवा बत्तीस विद्याधरो से युक्त सुन्दर वितान बनावे ॥३१॥

विद्याधरः पृथुत्वेन सप्तांशो निर्गमो[1] दश ।
तदूर्ध्वे चित्ररूपाश्च नर्त्तक्यः [2]शालभञ्जिकाः ॥३२॥

विद्याधर का थर विस्तार मे सात भाग और निर्गम मे दस भाग रक्खे। उसके ऊपर अनेक प्रकार से नृत्य करती हुई, अनेक स्वरूप वाली देवागना रक्खे ॥३२॥

गजतालुस्तु षट्सार्धा प्रथमा द्वितीया तु षट् ।
तृतीया सार्धपञ्चांशा कोलानि त्रीणि पंच वा ॥३३॥

प्रथम गजतालु साढे छह भाग, दूसरा गजतालु छह भाग और तीसरा गजतालु साढे पाच भाग का रक्खे। तीन अथवा पाच कोल का थर बनावे ॥३३॥

मध्ये वितानं कर्त्तव्यं चित्रवर्णविराजितम् ।
नाटकादिकथारूपै-र्नानाकारैर्विराजितम् ॥३४॥

मडप के मध्य मे वितान (चदोवा) अनेक प्रकार के चित्रो से शोभायमान बनावे तथा सगीत और नृत्य करती हुई देवागनाओं से और पुराणादि के अनेक प्रकार के कथारूपों से सुशोभित बनावे ॥३४॥

वितान संख्या—

एकादशशतान्येव वितानाना त्रयोदश ।
शुद्धसङ्घाटमिश्राणि क्षिप्तोत्क्षिप्तानि यानि च ॥३५॥

ग्यारहसो तेरह प्रकार के वितान हैं। वे शुद्ध सघाट (समतल वाले), सघाटमिश्र सम विषम तल वाला, क्षिप्त (नीचे भाग मे लटकते थरो वाला) और उत्क्षिप्त (ऊपर उठी हुई गोलाई वाला) ये चार प्रकार के वितान हैं ॥३५॥

१ 'निर्गमोऽस्य ।' २ 'नृत्यशोभिता ।'
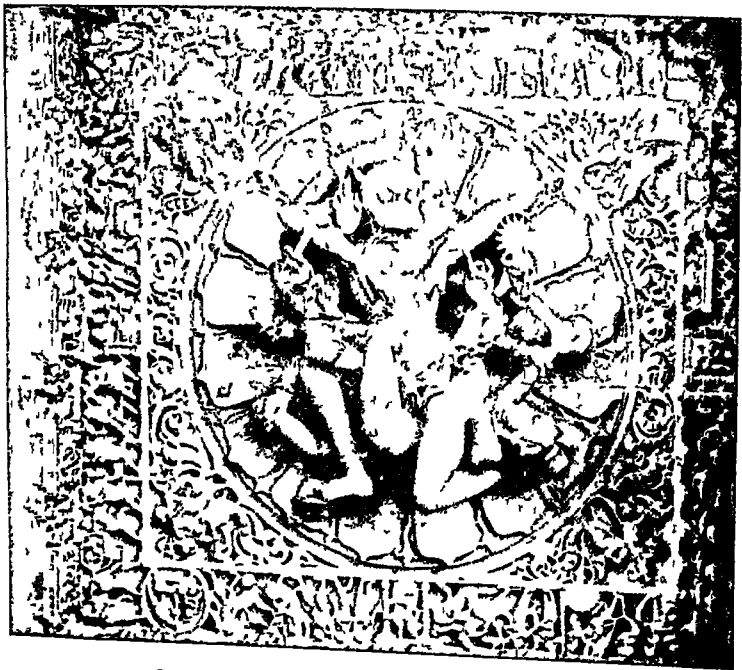
ममतल वितान मे कोतरी हुई कलामय नरसिहावतार की मूर्ति
जैन मदिर – ग्राबू

अपराजितपृच्छा सूत्र १८६ मे श्लोक ४ मे वितान के मुख्य तीन प्रकार लिखे हैं। देखो—

"वितानानि विचित्राणि क्षिप्तान्युत्क्षिप्तकानि च।
समतलानि ज्ञेयानि उदितानि त्रिधा क्रमत् ॥"

क्षिप्त, उत्क्षिप्त और समतल ये तीन प्रकार के वितान कहे है।

वर्ण और जाति के चार प्रकार के वितान—

"पद्मको नाभिच्छन्दश्च सभामार्गस्तृतीयक'।
मन्दारक इति प्रोक्तो वितानाश्च चतुर्विधा.॥" अप० सू० १८६ श्लो० ६

पद्मक, नाभिछद, सभामार्ग और मन्दारक ये चार प्रकार के वितान हैं।

"पद्मको विप्रजातिः स्यात् क्षत्रियो नाभिच्छन्दक.।
सभामार्गो भवेद् वैश्य शुद्रो मन्दारकस्तथा ॥" श्लो० ७

ब्राह्मण जाति का पद्मक, क्षत्रिय जातिका नाभिछद, वैश्यजातिका सभामार्ग और शूद्रजातिका मदारक नामका वितान हैं।

"पद्मक श्वेतवर्ण स्यात् क्षत्रियो रक्तवर्णक।
सभामार्गो भवेत् पीतो मन्दारः सर्ववर्णक.॥" श्लो० ८

सफेद वर्ण का पद्मक, लाल वर्ण का नाभिछद, पीले वर्ण का सभामार्ग और अनेक वर्ण का मदारक है।

फिर अपराजित पृच्छा सूत्र १९० मे भी चार प्रकारके वितान कहे हैं—

"वितानाश्च प्रवक्ष्यामि भेदैस्तच्च चतुर्विधम्।
पद्मक नाभिच्छन्द च सभा मन्दारक तथा॥ श्लो० १
शुद्धश्च छन्दसघाटो भिन्न उद्भिन्न एव च।
एतेषा सन्ति ये भेदा कथये तान् समासत ॥" श्लो० २

चार प्रकार के वितानो को कहता हू। पद्मक, नाभिच्छद, सभा और मन्दारक इन चार प्रकार के वितान के शुद्ध, सघाट, भिन्न और उद्भिन्न ये चार भेद है। उसको सक्षेप से कहता हूँ।

"एकत्वे च भवेच्छुद्ध सघाटश्च द्विमिश्रणात्।
त्रिमिश्राश्च तथा भिन्ना उद्भिन्नाश्चतुरन्विता ॥" श्लो० ३

एकही प्रकारकी आकृति वाले शुद्ध, दो प्रकार की मिश्र आकृति वाले सघाट, तीन प्रकार को आकृति वाले भिन्न और चार प्रकार की आकृति वाले उद्भिन्न नामके वितान है।

"पद्मनाभ सभापद्म सभामन्दारक तथा।
कमलोद्भवमाख्यात मिश्रकाणा चतुष्टयम् ॥" श्लो० ४

पद्मनाभ, सभापद्म, सभामन्दारक और कमलोद्भव ये चार मिश्र जाति के वितान हैं। 'किन्तु इसमे इसको आकृतियो का वर्णन नही लिखा है।"

वितानानि विचित्राणि वस्त्रचित्रादिभेदतः ।
शिल्पिलोके प्रवर्त्तन्ते तस्मादूह्यानि लोकतः ॥३६॥

जैसे अनेक प्रकार के चित्र आदि से विभिन्न प्रकार के वस्त्र हैं, वैसे ही शिल्पशास्त्र मे अनेक प्रकार के वितान है। वे अन्य शास्त्रो से विचार करके बनावे ॥३६॥

रगभूमि—

मण्डपेषु च सर्वेषु पीठान्ते रङ्गभूमिका ।
कुर्यादुत्तानपट्टेन चित्रपाषाणजेन च ॥३७॥

इति मण्डपा ।

समस्त मडपो की पीठ के नीचे की जो भूमि है, वह रग भूमि कही जाती है। वह बडे लबे चौडे पाषाणो से तथा अनेक प्रकार के चित्र विचित्र पाषाणो से बनाने चाहिए ॥३७॥

बलाणक का स्थान—

बलाणं देवगेहाग्रे राजद्वारे गृहे पुरे ।
जलाश्रयेऽथ कर्त्तव्य सर्वेषां मुखमण्डपम् ॥३८॥

देवालय के द्वार के आगे तथा प्रवेश द्वारके ऊपर, राजमहल, गृह, नगर और जलाश्रय बावडी, तालाब आदि) इन सब के द्वार के आगे मुखमडप (बलाणक) किया जाता है ॥३८॥

बलाणक का मान—

जगतीपादविस्तीर्णं पादपादेन वर्जितम् ।
शालालिन्देन गर्भेण प्रासादेन सम भवेत् ॥३९॥

बलाणक का विस्तार जगती का चौथा भाग का अथवा चौथे का चौथा भाग न्यून, शाला और अलिंद के मान से, प्रासाद के गर्भमान के अथवा प्रासाद के मान के बराबर बनावे ॥३९॥

प्रासाद मे बलाणक का स्थान—

उत्तमे कन्यस मध्ये मध्य ज्येष्ठं तु कन्यसे ।
एकद्वित्रिचतु.पञ्च–रसमप्तपदान्तरे ॥४०॥

ज्येष्ठमान के प्रासाद मे कनिष्ठ मान का, मध्यममान के प्रासाद मे मध्यम मान का और कनिष्ठमान के प्रासाद मे ज्येष्ठमान का बलाणक किया जाता है। यह प्रासाद से एक, दो तीन, चार, पाच, छह अथवा सात पद के अन्तर से (दूर) बनाया जाता है * ॥४०॥

मूलप्रासादवद् द्वारं मण्डपे च बलाणके ।
न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं दैर्घ्ये हस्ताङ्गुलाधिकम् ॥४१॥

मडप का द्वार और बलाणक का द्वार मुख्य प्रासाद के द्वार के बराबर रखना चाहिये । यदि बढाने की आवश्यकता हो तो द्वार की ऊचाई मे हस्तागुल (जितने हाथ का हो उतने अगुल) बढा सकते है। 'यह नीचे के भाग मे बढाना चाहिये, क्यो कि उत्तरग तो सब समसूत्र मे रखा जाता है ऐसा शास्त्रीय कथन है ॥४१॥

उत्तरंग का पेटा भाग—

पेटकं चोत्तरङ्गानां सर्वेषां समसूत्रतः ।
अङ्गणेन समं पेटं जगत्याश्चोत्तरङ्गजम् ॥४२॥

सब उत्तरग का पेटा भाग (उत्तरग के नीचे का भाग) समसूत्र मे रखना चाहिये और जगती के द्वार के उत्तरग का पेटा भाग प्रासाद के आगन जगती के मथला बराबर रखना चाहिये ॥४२॥

पाच प्रकार के बालाणक—

जगत्यग्रे चतुष्किका[1] वामन तद् बलाणकम् ।
वामे च दक्षिणे द्वारे वेदिकामत्तवारणम् ॥४३॥

जगती के आगे की चौकी के ऊपर जो बलाणक किया जाता है, वह वामन नामका बलाणक कहा जाता है। उसके बायी और दाहिनी ओर के द्वार पर वेदिका और मत्तवारण किया जाता है ॥४३॥

ऊर्ध्वा भूमिः प्रकर्त्तव्या नृत्यमण्डपसूत्रतः ।
मत्तवारणं वेदी च वितान तोरणैर्युता ॥४४॥

---

* अपराजित पृच्छा सूत्र १२२ श्लोक १० मे एक से आठ पद के अतरे भी बनाना लीखा है ।
१ 'चतुष्की या' ।

बलाणक को ऊर्ध्वभूमि नृत्यमंडप के समसूत्र मे रखनी चाहिये। तथा मत्तवारण, वेदी, वितान और तोरणों से शोभायमान बनानी चाहिए ॥४४॥

राजद्वारे बलाणे च पञ्च वा सप्तभूमिकाः।
तद्विमानं बुधैः प्रोक्तं पुष्करं वारिमध्यतः ॥४५॥

राजद्वार के ऊपर जो पाच अथवा सात भूमिवाला बलाणक किया जाता है, उसको विद्वान् शिल्पी विमान अथवा उत्तुंग नामका बलाणक कहते हैं। तथा जलाश्रय के बलाणक को पुष्कर नामका बलाणक कहते हैं ॥४५॥

हर्म्यशालो गृहे वापि कर्त्तव्यो गोपुराकृतिः।
एकभूम्यास्त्रिभूम्यन्तं गृहाग्रद्वारमस्तके ॥४६॥

इति पचबलाणकम्।

गृहद्वार के आगे एक, दो अथवा तीन भूमिवाला जो बलाणक किया जाय, उसका नाम हर्म्यशाल है। वह गोपुराकृति वाला बनाया जाता है। (किले के द्वार के ऊपर जो बलाणक किया जाता है, उसको गोपुर नाम का बलाणक कहते हैं)।

कौन २ देव के आगे बलाणक करना—

"शिवसूर्यौ ब्रह्मविष्णू चण्डिका जिन एव च।
एतेषा च सुराणा च कुर्यादग्रे बलाणकम् ॥" अप० सू० १२२

शिव, सूर्य, ब्रह्म, विष्णु, चडिका और जिन, इन देवो के आगे बलाणक बनाना चाहिए।

सवरणा—

सवरणा प्रकर्त्तव्या प्रथमा पञ्चघण्टिका।
चतुर्घण्टाभिवृद्ध्या च यावदेकोत्तर शतम् ॥४७॥

मडप आदि के ऊपर गुमटी के स्थान पर सवरणा की जाती है। प्रथम सवरणा पाच घटी की है। आगे प्रत्येक संवरण की चार चार घटी की वृद्धि मे एक सौ एक घटी तक बढ़ाया जाता है ॥४७॥

पञ्चविंशतिरित्युक्ताः प्रथमा वसुभागिका।
वेदोत्तरं शतं यावद् वेदांशा वृद्धिरिष्यते ॥४८॥

उपरोक्त घटिका की सख्यानुसार सवरणा पच्चीस प्रकार की हैं। उन मे प्रथम संवरणा की भूमि का आठ आठ भाग करे। पीछे प्रत्येक सवरणा मे चार चार भाग एक सौ चार भाग तक बढाने चाहिये ॥४८॥

भद्रार्धे रथिकार्धे च तवङ्गं वामदक्षिणे ।
अर्धोदयेन रथिका घण्टा कूटं तवङ्गकम् ॥४९॥

भद्राध की रथिकार्ध के मान का दोनो तरफ तवग बनावे । रथिका, घंटा, कूट और तवग, ये विस्तार से आधा उदय मे रक्खे ॥४९॥
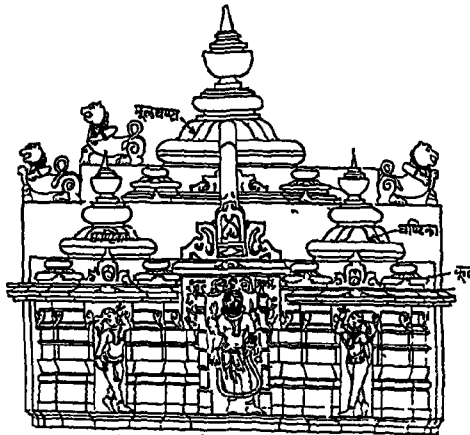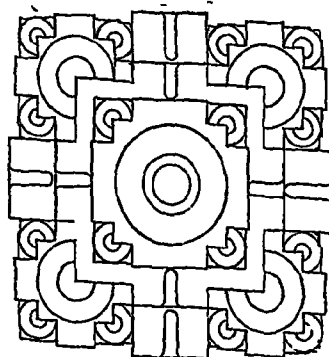
पुष्पिका नाम की प्रथम सवरणा

प्रथम सवरणा—

कलाकूटान्विता पूर्वा पञ्चभिः कलशैर्युता ।
भागतुल्यैस्तथा सिंहै-रेवमन्याश्च लक्षिताः ॥५०॥

इति मण्डपोर्ध्वसवरणा ।

इति श्री सूत्रधार मण्डनविरचिते प्रासादमण्डने मण्डपलाणक-
संवरणाधिकारे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

નંદિની નામ સંવર્ણા (૨) ભાગ ૧૨ ઘંટિકા ૯ કૂટ ૬૮, સિંહ ૧૨
પ્રભાશંકર ઓ. સોમપુરા
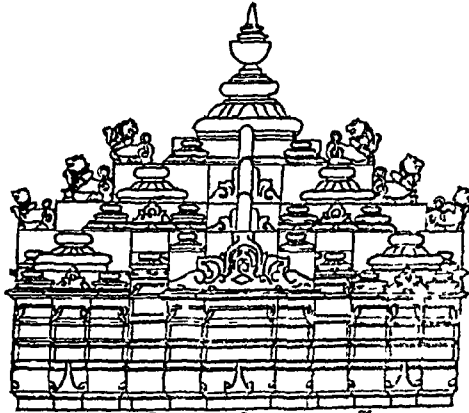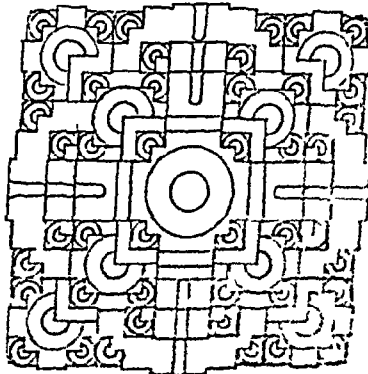
नन्दिनी नाम की दूसरी सवरणा

प्रथम सवरणा सोलह कूट और पाच घटाकलश वाली है। तथा कर्ण और उद्गम के के ऊपर तल भाग के तुल्य (आठ) सिंह रक्खे। इस प्रकार अन्य सवरणा बनायी जाती है ॥५०॥

पच्चीस रणा के नाम—

"पुष्पिका नन्दिनी चैव दशाक्षा देवसुन्दरी।
कुलतिलका रम्या च उद्भिन्ना च नारायणी॥
नलिका चम्पका चैव पद्माख्या च समुद्भवा।
त्रिदशा देवगाधारी रत्नगर्भा चूडामणि॥
हेमकूटा चित्रकूटा हिमाख्या गन्धमादिनी।
मन्दरा मालिनी ख्याता कैलासा रत्नसम्भवा॥
मेरु कूटोद्भवा ख्याता सख्यया पञ्चविंशति।"

अप० सूत्र १६३ श्लोक २ से ५

पुष्पिका, नन्दिनी, दशाक्षा, देवसुन्दरी, कुलतिलका, रम्या, उद्भिन्ना, नारायणी नलिका, चम्पका, पद्मा समुद्भवा, त्रिदशा, देवगान्धारी, रत्नगर्भा, चूडामणि हेमकूटा, चित्रकूटा, हिमाख्या, गन्धमादिनी, मन्दरा, मालिनी, कैलासा, रत्नसभवा और मेरुकूटा, ये ये पच्चीस सवरणा के नाम हैं।

ज्ञानरत्नकोश नाम के ग्रन्थ मे बत्तीस सवरणा लिखा हैं। उनके नाम भी अन्य प्रकार के हैं। घटिका की सख्या प्रासाद के मानानुसार लीखी है। जैसे—एक या दो हाथ के प्रासाद के ऊपर पाच घटिका वाली सवरणा, तीन हाथ के प्रासाद के ऊपर नव, चार हाथ के प्रासाद के ऊपर तेरह, इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद के ऊपर एकसौ उनतीस घटिका चढाना लीखा है। तथा घटिकाओ की सख्यानुसार बत्तीस सवरणा के नाम लीखे है। जैसे—पाच घटावालो पद्मिनी, नव घटावालो मेदिनी, तेरह घटावाली कलशा, इस प्रकार एकसौ उनतीस घटावालो राजवर्द्धनी है।

प्रथमा पुष्पिका संवरणा—

"चतुरस्रीकृते क्षेत्रे अष्टधा प्रतिभाजिते।
उच्छ्रय स्याच्चतुर्भागै सर्वासामर्धोदय॥
मूलकूटोद्भवा कर्णा द्विभागै पृथग् विस्तरा।
भागोदया विधातव्या कूटा वै सर्वकामदा.॥"

प्रथम संवरणा की समचोरस भूमिका आठ भाग करे, उसमें चार भाग सवरणा का उदय रक्खे। सब सवरणा विस्तार से आधी उदय मे रक्खे। कर्ण के ऊपर मूल घटा दो भाग विस्तार वाली और एक भाग का उदयवाली बनावे एव कूटा भी विस्तार से आधा उदय मे रक्खे।

"... . ... ।

छाद्योद्गमास्तदर्धे च कर्णे कर्णे च घण्टिका ॥
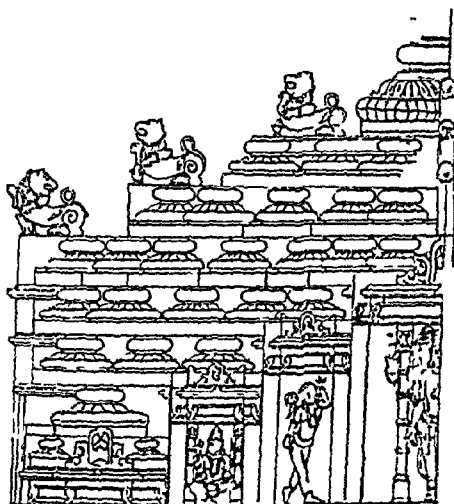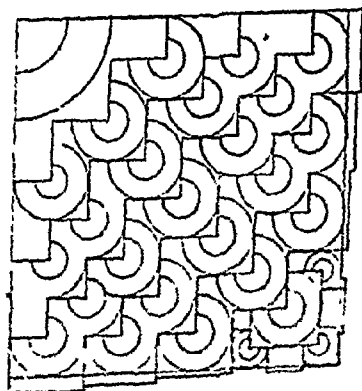
१८ वीं शताब्दि से आधुनिक समय की सवरणा शैली।
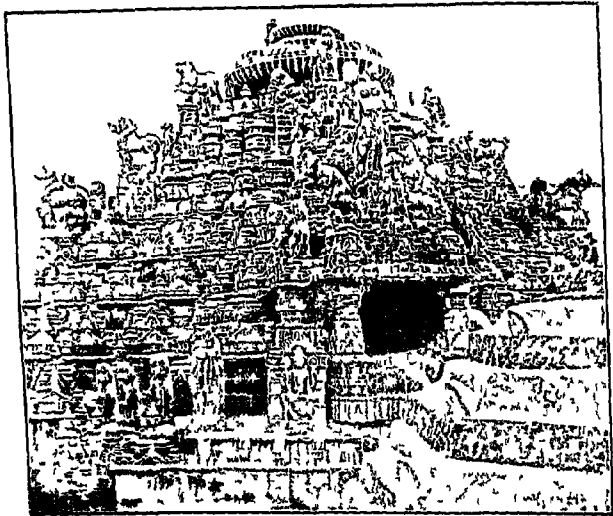
जेसलमेर जैन मंदिर के मंडप की संवरणा
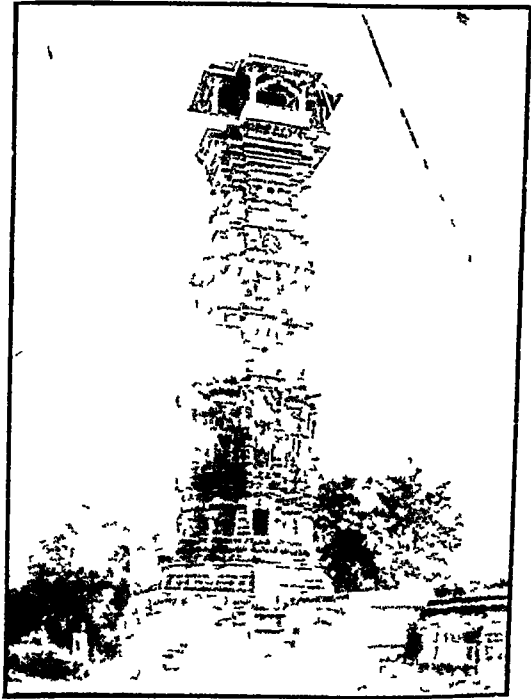
कीर्त्ति स्तम्भ – चित्तौड़गढ़

तद्रूपा भद्रकूटाश्च शृङ्गकूटास्तदर्धत ।
सिंहस्थाना कर्णघण्टी वृहद्घण्टी तदूर्ध्वत ॥
सवरणागर्भमूले रथिका द्वय शविस्तरा ।
भागैका चोदये कार्या भागा पक्षतवङ्गिका ॥
तदूर्ध्वे उद्गमो भाग-स्तवङ्गोर्ध्वे च कूटक. ।
सिंह वै उद्गमोर्ध्वे तु उरोर्घण्टा भागोपरि ॥
तदुपरि सिंहस्थान भागैकं च विनिर्गतम् ।
तस्योपरि मूलघण्टा द्विभागा च भागोच्छ्रया ॥
अष्टसिंहः पञ्चघण्टै कूटैरेव द्विरष्टभि. ।
चतुर्भिर्मूलकूटश्च पुष्पिका नाम नामत ॥"

छज्जा के उद्गम के अर्धमान का कोने कोने के ऊपर घटिका रक्खे। उसके जैसा भद्र का कूट बनावे व इससे आधे भाग का शृ गकूट रक्खे। कर्णघटी पर सिंह रक्खे । उसके ऊपर बीच में बडी घटी रक्खे। सवरणा के गर्भ के मूल मे दो भाग के विस्तार वाली रथिका बनावे और यह उदय में एक भाग की रक्खे। इसके दोनो तरफ तवगा एक एक भाग की रक्खें और रथिका के ऊपर एक भाग उदय वाला उद्गम बनावे। तवगा के ऊपर कूट रक्खें। उद्गम और बडी कर्णघटी के ऊपर सिंह रक्खे, उसका निर्गम एक भाग रक्खे । उसके ऊपर दो भाग के विस्तारवाली और एक भाग का उदय वाली मूलघटा रक्खे। आठसिंह (चार कर्ण और चार भद्र के उद्गम ऊपर) पाच बडी घटी, सोलह कूट और चार मूलकूट वाली प्रथम पुष्पिका नाम की सवरणा होती है।

दूसरी नन्दिनी नाम की सवरणा—

"तवङ्गकूटयोर्मध्ये तिलक द्वय शविस्तरम् ॥
भागोदय विधातव्य रूपसघाटभूषितम् ॥
तवङ्गरथिकाश्चैव द्विभागोदयिन स्मृता ।
अष्टचत्वारिंशत्कूटा मूले स्यु पूर्ववत्तथा ॥
नवघण्टा समायुक्ता स्याद्वै द्वादशसिंहत ।
नन्दिनी नामविख्याता कर्त्तव्या शान्तिमिच्छता ॥
कार्या तिलकवृद्धिश्च यावत्क्षेत्र वेदात्मकम् ।
मण्डपदलनिष्कासे-र्भक्तिभागैस्तु कल्पना ॥

बृहद्दलैर्भिन्नोद्भिन्ना मण्डपक्रमभागत ।
आसा युक्तिर्विधातव्या मेरुकूटान्तकल्पना ॥"

१३ बारमी शताब्दी की पुरानी संवर्णा पद्धती शैली
प्रभाशंकर ओ. [illegible]
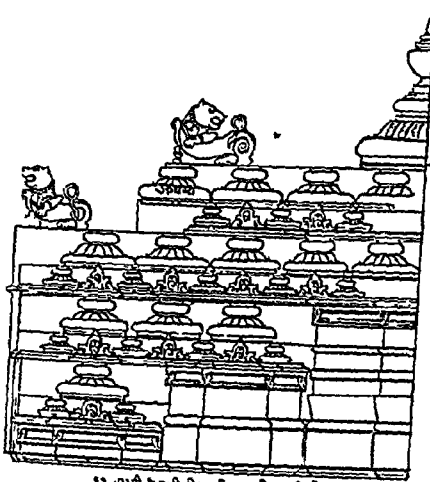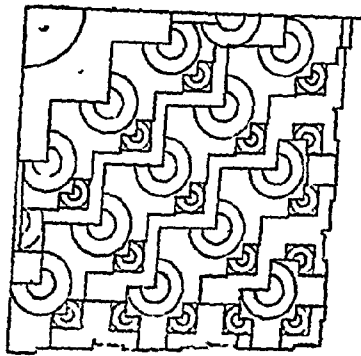
तवग और कूटके मध्य मे दो भाग के विस्तारवाला और एक भाग के उदय वाला तलके भूषणरूप तिलक बनावे तवगा और रथिका ये दोनो दो भाग के उदयवाले बनावे । अडतालीस कूटा, नवघण्टा और बारह सिंह वाली नन्दिनी नाम की सवरणा शांति की इच्छा रखने वाले बनावे । समचोरस क्षेत्र के भागो में तिलककी वृद्धि करनी चाहिये । मडप को विस्तार से आधा उदय म रक्खे । भूमि के बारह भाग की कल्पना करे । सवरणाये भिन्न और उद्भिन्न होती हैं । मण्डप के अनुक्रम भाग से पचीसवी मेरुकूटा नाम की सवरणा तक इस प्रकार युक्ति से अन्य सवरणायें बनावे ।

इति श्री मडनसूत्र धार विरचि। प्रासादमडन के मडप बलाणक सव- रणा लक्षणवाला सातवा अध्याय की पडित भगवानदास जैन ने सुबोधिनी नाम की भाषा टीका रची ॥७॥

☆

अथ प्रासादमण्डनेऽष्टमः साधारणोऽध्यायः

अथ साधारणोऽध्यायः सर्वलक्षणसंयुतः ।
विश्वकर्मप्रसादेन विशेषं प्रकथ्यते ॥१॥

श्री विश्वकर्मा के प्रसाद से सर्व लक्षणो वाला साधारण नाम का यह आठवा अध्याय कुछ विशेषरूप से कहा जाता है ॥१॥

शिवलिंग का न्यूनाधिक मान—

[1]मानं न्यूनाधिकं वापि स्वयंभूबाणरत्नजे ।
घटितेषु विधातव्य-मर्चालिङ्गेषु शास्त्रतः ॥२॥

स्वयभूलिंग, बाणलिंग और रत्नका लिंग, ये मान मे न्यूनाधिक हो तो दोप नही है। परन्तु घडा हुआ शिवलिंग और मूर्त्ति तो शास्त्र मे कहे हुए मानानुसार ही होना चाहिये ॥२॥

वास्तुदोष—

बहुलेपमल्पलेपं समसन्धिः शिरोगुरुः ।
सशल्यं पादहीनं तु तच्च वास्तु विनश्यति ॥३॥

अधिक लेपवाला, कम लेपवाला, साध के ऊपर साध वाला, ऊपरका हिस्सा मोटा और नीचे पतला, शल्यवाला और कम नीव वाला, ऐसे वास्तु का शीघ्र ही नाश हो जाता है ॥३॥

निषेधवास्तुद्रव्य—

अन्यवास्तुच्यूतं द्रव्य-मन्यवास्तुनि योजयेत् ।
प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे तु न वसेद् गृही ॥४॥

किसी मकान आदि का गिरा हुआ ईंट, चूना, पाषाण और लकडी आदि वास्तु द्रव्य, यदि मदिर में लगावे तो देव अपूजित रहे और घरमे लगावे तो मालिक का निवास न रहे, अर्थात् मदिर और गृह शून्य रहे ॥४॥

---

१ 'मान' के स्थान पर 'वृष' होना चाहिये। क्योकि अपराजित पृच्छा सूत्र० १०६ श्लो० ११ में लिखा है कि—'वृष न्यूनाधिक बाणे रत्नजे च स्वयम्भूवि' अर्थात् बाण, रत्न और स्वयभूलिंग के मदिर में नदी का मान न्यूनाधिक भी हो सकता है।

शिवा उत्थापनदोष—

स्वस्थाने संस्थितं यस्य विप्रवास्तुशिवालयम् ।
अचाल्यं सर्वदेशेषु चालिते राष्ट्रविभ्रमः ॥५॥

अपने स्थान मे यथास्थित रहा हुआ और ब्राह्मणो से वास्तु पूजन किया हुआ, ऐसे शिवालय को चलायमान नही किया जाता। क्योकि अचल (चलायमान न हो), को यदि चलायमान किया जाय तो राष्ट्रो मे परिवर्त्तन होता है ॥५॥

जीर्णोद्धार का पुण्य—

वापीकूपतडागानि प्रासादभवनानि च ।
जीर्णान्युद्धरते यस्तु पुण्यमष्टगुणं लभेत् ॥६॥

वावडी, कुआ, तालाव, प्रासाद (मदिर) और भवन, ये जीर्ण हो गये हो तो उनका उद्धार करना चाहिये। जीर्णोद्धार करने से आठ गुना फल होता है ॥६॥

जीर्णोद्धार का वास्तु स्वरूप—

तद्रूपं तत्प्रमाणं स्यात् पूर्वसूत्रं न चालयेत् ।
हीने तु जायते हानि-रधिके स्वजनक्षयः[1] ॥७॥

जीर्णोद्धार करते समय पहले का वास्तु जिस आकार और जिस मानका हो, उसी आकार और उसी मानका रखना चाहिये। अर्थात् पहले के मानसूत्र मे परिवर्त्तन नही करना चाहिये। प्रथम के मान से कम करे तो हानि होवे और अधिक करे तो स्वजन की हानि होवे ॥७॥

वास्तु द्रव्याधिकं कुर्यान्मृत्काष्ठे शैलजं दिशा ।
शैलजे धातुजं वापि धातुजे रत्नजं तथा ॥८॥

जीर्णोद्धार करते समय प्रथम का वास्तु अल्पद्रव्य का हो तो वह अधिक द्रव्यका बनाना चाहिये। जैसे—प्रथमका वास्तु मिट्टी का हो तो काष्ठ का, काष्ठ का हो तो पाषाण का, पाषाण का हो तो धातु का और धातु का हो तो रत्न का बनाना श्रेयस्कर है ॥८॥

दिङ्मूढ दोष—

पूर्वोत्तरदिशामूढं मूढं पश्चिमदक्षिणे ।
तत्र मूढममूढं वा यत्र तीर्थं समाहितम् ॥९॥

१. 'तु धनक्षयः ।'

पूर्वोत्तर दिशा (ईशान कोन) अथवा पश्चिम दक्षिण दिशा (नैऋत्य कोन) मे प्रासाद टेढा हो तो दिङ्मूढ दोष नही माना जाता। जैसे तीर्थ स्थान मे प्रासाद के मूढ और अमूढ का दोष नही माना जाता ॥९॥

"पूर्वपश्चिमदिङ्मूढ वास्तु स्त्रीनाशक स्मृतम् ।
दक्षिणोत्तरदिङ्मूढ सर्वनाशकर भवेत् ॥" अप० सू० ५२

पूर्व पश्चिम दिशा का वास्तु अग्नि और वायु कोनमे दिङ्मूढ हो तो स्त्री का विनाश कारक है। दक्षिणोत्तर दिशा का वास्तु भी अग्नि और वायुकोन मे दिङ्मूढ हो तो सर्व विनाश कारक है।

दिङ्मूढ का परिहार—

सिद्धायतनतीर्थेषु नदीनां सङ्गमेषु च ।
स्वयम्भूबाणलिङ्गेषु तत्र दोषो न विद्यते ॥१०॥

सिद्धायतन अर्थात् सिद्ध पुरुषो का निर्वाण, अग्नि सस्कार, जल सस्कार अथवा भूमि-सस्कार हुआ हो ऐसे पवित्र स्थानो मे, तथा च्यवन, जन्म, दीक्षा ज्ञान और मोक्ष सस्कार हुआ हो, ऐसे तीर्थस्थानो मे, नदी के सगम स्थान मे, बनाया हुआ प्रासाद तथा स्वयभू और बाण लिगो के प्रासाद, ये दिङ्मूढ हो तो दोष नही है ॥१०॥

अव्यक्त प्रासाद का चालन—

अव्यक्तं[1] मृण्मयं चाल्यं त्रिहस्तान्तं तु शैलजम् ।
दारुजं पुरुषार्द्धं हि अत ऊर्ध्वं न चालयेत् ॥११॥

यदि अव्यक्त जीर्ण प्रासाद मिट्टी का हो तो गिरा करके फिर बनावे, पाषाण का हो तो तीन हाथ तक और लकडी का हो तो आधे पुरुष के मान तक उचा रहा हो तो चलायमान करे। इससे अधिक ऊचाई मे रहा हो तो चलायमान न करे ॥११॥

महापुरुष स्थापित देव—

विषमस्थानमाश्रित्य भग्नं यत्स्थापितं पुरा ।
तत्र स्थाने स्थिता देवा भग्नाः पूजाफलप्रदाः ॥१२॥

प्राचीन महापुरुषोने जो देव स्थापित किये है, वे विषमासन वाले हो, अथवा खडित हो तो भी पूजनीय हैं। क्यो कि उस स्थान पर देवो का निवास है, इसलिये वे देवमूर्त्तिया पूजन को फल देनेवाली हैं ॥१२॥

---

१ 'व्यक्त तु' ऐसा अपराजितपृच्छा सूत्र ११० मे पाठ है।

यद्यथा स्थापितं वास्तु तत्तथैव हि कारयेत् ।
अव्यङ्गं चालितं वास्तु दारुणं कुरुते भयम् ॥१३॥

प्राचीन महापुरुषोने जो वास्तु स्थापित किया है, उसका यदि जीर्णोद्धार किया जाय तो जैसा पहले हो वैसा ही करना चाहिये । जीर्ण वास्तु यदि अंगहीन न हुआ हो तो ऐसे वास्तु को चलायमान करने से बडा भयंकर भय उत्पन्न होता है ॥१३॥

अथ तच्चालयेत् प्राज्ञै-जीर्णं व्यङ्गं च दूषितम् ।
आचार्यशिल्पिभिः प्राज्ञैः शास्त्रदृष्टया समुद्धरेत ॥१४॥

यदि प्राचीन वास्तु जीर्ण हो गया हो अथवा अंगहीन होकर दोषवाला हो गया हो तो उसका विद्वान् आचार्य और शिल्पियो की सलाह लेकर शास्त्रानुसार उद्धार करना चाहिये ॥१४॥

जीर्णवास्तु पातन विधि—

स्वर्णजं रौप्यजं वापि कुर्यान्नागमथो वृषम् ।
तस्य शृङ्गेण दन्तेन पतितं पातयेत् सुधीः ॥१५॥

इति जीर्णोद्धार विधि ।

जीर्णोद्धार के आरंभ के समय सोना अथवा चांदी का हाथी अथवा वृषभ बनावे । उस हाथी के दांत से अथवा वृषभ के शृंग से जीर्णवास्तु को गिरावे । उसके बाद बुद्धिमान शिल्पी सब गिरा देवे ॥१५॥

महादोष—

मण्डलं जालकं चैव कीलकं सुषिरं तथा ।
छिद्रं सन्धिश्च काराश्च महादोषा इति स्मृताः ॥१६॥

देवालय में चूना उतर जाने से मण्डलाकार लकीरें दीखती हों, मकडी के जाले लगे हों, कीले लगी हों, पोलाण हो गया हो, छिद्र पड गये हों, सांध दीख पडती हों और कारापन आ गया हो, तो ये महादोष माने गये हैं ॥१६॥

शिल्पिकृत महादोष—

"दिङ्मूढो नष्टछन्दश्च मायहीन शिरोगुरु ।
एते दोषास्तु चत्वारः प्रासादाः कर्मदारुणाः ॥" प्रा० पृ० ११०

यदि प्रासाद दिङ्मूढ हो गया हो, नष्टच्छद हो अर्थात् यथा स्थान प्रासाद के अगोपाग न हो, आय हीन हो और ऊपर का भाग भारी व नीचे का पतला हो तो उन्हे प्रासाद के चार भयकर महादोष शिल्पिकृत माना है।

भिन्न और अभिन्न दोष—

भिन्नदोषकरं यस्मात् प्रासादमठमन्दिरम् ।
मूषाभिर्जालकैर्द्वारै रश्मिवातैः प्रभेदितम् ॥१७॥

प्रासाद (देवालय), मठ (आश्रम) और मदिर (गृह), इनका गर्भगृह यदि मूषा (लबा अलिंद) से, जालियो से अथवा दरवाजे से आते हुए सूर्य की किरणो से वेधित होता हो तो भिन्न दोष माना जाता है ॥१७॥

अपराजितपृच्छा सूत्र ११० में कहा कि—

"मूषाभिर्जालकैर्द्वारै-र्गर्भो यत्र न भिद्यते ।
अभिन्नं कथ्यते तच्च प्रासादो वेश्म वा मठ ॥"

प्रासाद, गृह और मठ का गर्भगृह मूषा, जालि और द्वार से आते हुए सूर्य किरणो से भेदित न होता हो तो यह अभिन्न कहा जाता है ।

देवो के भिन्नदोष—

ब्रह्मविष्णुशिवार्काणां भिन्नं दोषकरं नहि ।
जिनगौरीगणेशानां गृहं भिन्नं विवर्जयेत् ॥१८॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य, इनके प्रासादो मे भिन्नदोष हो तो वे दोष कारक नही है । परतु जिनदेव, गौरी और गणेश के प्रासादो मे भिन्न दोष हो तो दोष कारक है, इस लिये इन्हे भिन्न दोष वाले प्रासाद नही बनावे ॥१८॥

अपराजितपृच्छा सूत्र ११० मे अन्य प्रकार से कहा है कि—

"ब्रह्मविष्णुरवीणा च शम्भो कार्या यदृच्छया ।
गिरिजाया जिनादीना मन्वन्तरभुवा तथा ॥
एतेषा च सुराणा च प्रासादा भिन्नवर्जिता ।
प्रासादमठवेश्मान्यभिन्नानि शुभदानि हि ॥"

ब्रह्म, विष्णु, सूर्य और शिव, इनके प्रासाद भिन्न अथवा अभिन्न अपनी इच्छानुसार बनावे । परन्तु गौरीदेवी, जिनदेव और मन्वतर मे होने वाले देव, इनके प्रासाद भिन्न दोष से रहित बनावे । प्रासाद, मठ और घर ये भिन्न दोप रहित बनाना शुभ है ।

व्यक्ताव्यक्त प्रासाद—

व्यक्ताव्यक्तं गृहं कुर्याद् भिन्नाभिन्नस्य मूर्त्तिकम् ।
यथा स्वामिशरीरं स्यात् प्रासादमपि तादृशम् ॥१९॥

इति भिन्नदोषा ।

उपरोक्त भिन्न और अभिन्न दोषवाली देवमूर्त्तियों के लिये व्यक्त और अव्यक्त प्रासाद बनावें । अर्थात् भिन्न दोष रहित देवों के लिये प्रकाश वाले और भिन्न दोषवाले देवों के लिये अंधकारमय प्रासाद बनावे । जैसे स्वामी अपने शरीर के अनुकूल गृह बनाता है, वैसे देवा के अनुकूल प्रासाद बनाना चाहिये ॥१९॥

अपराजित पृच्छा सूत्र ११० में कहा है कि—

"व्यक्ताव्यक्त लय कुर्यादभिन्नभिन्नमूर्त्तयो ।
मूर्त्तिलक्षणजं स्वामो प्रासाद तस्य तादृशम् ॥"

भिन्न दोषो से रहित शिव आदि की देव मूर्तियो के लिये व्यक्त (प्रकाशवाले) प्रासाद बनावें और भिन्न दोषवाली गौरी आदि की देव मूर्त्तियों के लिये अव्यक्त (अंधकारमय) प्रासाद बनावे ।

महामर्मदोष—

[1]भिन्नं चतुर्विधं ज्ञेय-मष्टधा मिश्रकं मतम् ।
मिश्रकं पूजितं तत्र भिन्न वै दोषकारकम् ॥२०॥
छन्दभेदो न कर्त्तव्यो जातिभेदोऽपि वा पुनः ।
उत्पद्यते महामर्म जातिभेदकृते सति ॥२१॥

भिन्नदोष चार प्रकार के और मिश्रदोष आठ प्रकार के है । उनमें मिश्रदोष पूजित (शुभ) है और भिन्नदोष दोषकारक हैं । छदभेद-जैसे छदा में गुरु लघु यथास्थान न होने से छद दूषित होता है, वैसे प्रासाद की अगविभक्ति नियमानुसार न होनेसे प्रासाद दूषित होता है। जातिभेद-प्रासाद की अनेक जातियों में से पीठ आदि एक जाति को और शिखर आदि दूसरी जाति का बनाया जाय तो जातिभेद होता है । ऐसा जातिभेद करने से बड़ा मर्मदोष उत्पन्न होता है ॥२०-२१॥

---

१ भिन्नदोष जानने के लिये देखो अपराजित पृच्छा सूत्र ११० और मिश्रदोष जानने के लिये देखो अप० सूत्र ११८ श्लो० १ से ९ ।

अन्यदोष फल—

द्वारहीने हनेच्चक्षु–र्नालीहीने धनक्षयः ।
अपदे स्थापिते स्तम्भे महारोगं विनिर्दिशेत् ॥२२॥

द्वार मान मे हीन हो तो नेत्र की हानि, नाली (जलमार्ग) हीन हो तो धन का क्षय और स्तभ अपदमे रखा जाय तो महारोग होता है ॥२२॥

स्तम्भव्यासोदये हीने कर्त्ता तत्र विनश्यति ।
प्रासादे पीठहीने तु नश्यन्ति गजवाजिनः ॥२३॥

स्तभ का मान विस्तार मे अथवा उदय में हीन हो तो कर्त्ता का विनाश होता है। प्रासाद की पीठ मानमे हीन हो तो हाथी घोडा आदि वाहनो की हानि होती है ॥२३॥

रथोपरथहीने तु प्रजापीडां विनिर्दिशेत् ।
कर्णहीने सुरागारे फलं क्वापि न लभ्यते ॥२४॥

प्रासाद के रथ और उपरथ आदि अग मानमे हीन हो तो प्रजा को पीडा होती है। यदि कोना मानमे हीन हो तो पूजन का फल कभी भी नही मिलता ॥२४॥

जङ्घाहीने हरेद् बन्धून् कर्तृकारापरादिकान् ।
शिखरे हीनमाने तु पुत्रपौत्रधनक्षयः ॥२५॥

प्रासाद की जघा प्रमाण से हीन हो तो करने कराने वाले और दूसरे की हानि होती है। जो शिखर प्रमाण से न्यून हो तो पुत्र, पौत्र और धनकी हानि होती है ॥२५॥

अतिदीर्घे कुलच्छेदो ह्रस्वे व्याधिर्विनिर्दिशेत् ।
तस्माच्छास्त्रोक्तमानेन सुखदं सर्वकामदम् ॥२६॥

शिखर यदि मान से अधिक लबा हो तो कुल की हानि होती है और मान से छोटा होवे तो रोग उत्पन्न होते है। इसलिये शास्त्र मे कहे हुए मानके अनुसार ही प्रासाद बनावे तो यह सर्व इच्छित फलको देनेवाला होता है ॥२६॥

जगत्यां रोपयेच्छालां शालायां चैव मण्डपम् ।
मण्डपेन च प्रासादो ग्रस्तो वै दोषकारकः ॥२७॥

इति दोषा ।

जगती मे शाला (चौकी मडप) बनाना, उस शाला मे मडप और मडप मे प्रासाद ग्रस्त हो तो दोपकारक है ॥२७॥

छाया भेद—

प्रासादोच्छ्रायविस्तारा-ज्जगती वामदक्षिणे ।
छायाभेदा न कर्त्तव्या यथा लिङ्गस्य पीठिका ॥२८॥

प्रासाद के उदय और विस्तार के अनुसार बायी और दाहिनी और जगती शास्त्रमान के अनुसार रखना चाहिये। ऐसा न करे तो छायादोष होता है, क्योंकि जैसे शिवलिंग की पीठिका रूप जगती है, वैसे प्रासाद रूप लिंग की जगतीरूप पीठिका है ॥२८॥

देवपुर, राजमहल और नगर का मान—

जगत्यां त्रिचतुःपञ्च-गुणं देवपुरं त्रिधा ।
एकद्विवेदसाहस्रै-र्हस्तैः स्याद् राजमन्दिरम् ॥२९॥
कलाष्टवेदसाहस्रै-र्हस्तै राजपुरं समम् ।
दैर्घ्ये तुल्यं सपादांशं सार्धांशेनाधिकं शुभम् ॥३०॥

जगती मे तीन, चार अथवा पाच गुणा देवपुर का मान है। एक, दो अथवा चार हजार हाथ का राजमहल का मान हैं और सोलह आठ अथवा चार हजार हाथ का राजपुर (राजधानी वाला नगर) का मान हैं। ये हरेक का तीन २ प्रकार का मान जाने। लंबाई मे विस्तार के बराबर अथवा सवाया तथा डेढा मान का रखना शुभ है ॥२९-३०॥

राजनगर में देवस्थान—

द्वादश त्रिपुराणि स्यु-र्देवस्थानानि चत्वरे ।
षट्त्रिंशत् षड्भिर्वृद्ध्या यावदष्टोत्तरं शतम् ॥३१॥
पुरं प्रासादगृहैः स्यात् सौधैर्जालगवाक्षकैः ।
कीर्त्तिस्तम्भैर्जलारामै-र्गर्दैर्मण्डपैश्च[1] शोभितम् ॥३२॥

[illegible]

राजनगर के चौरास्ते में बारह त्रिपुर (दर्शन) देवस्थान हैं। [illegible] बढाते हुए एकसौ आठ तक बढावे, उतने देवस्थान हैं। यह नगर देव प्रासादों, [illegible] गवाक्षवाले राजमहलों मे और घरों मे कीर्तिस्तम्भों, कुण्ड, वावडी आदि जलाशयों, [illegible] और मण्डपों से शोभित होता है ॥३१-३२॥

१ 'दे[illegible]।'

आश्रम और मठ—

प्रासादस्योत्तरे याम्ये तथाग्नौ पश्चिमेऽपि वा ।
यतीनामाश्रमं कुर्यान्मठं तद्द्वित्रिभूमिकम् ॥३३॥

प्रासाद के उत्तर अथवा दक्षिण दिशा मे, तथा अग्निकोन मे या पिछले भाग मे यतियो का आश्रम तथा ऋषियो का मठ, दो या तीन मजिल बनावे ॥३३॥

द्विशालमध्ये षड्दारुः पट्टशालाग्रे शोभिता ।
मत्तवारणमग्रे च तदूर्ध्वे पट्टभूमिका ॥३४॥

आश्रम के दोशाला के मध्य में षड्दारु (आमने सामने की दीवार मे दो दो स्तभ और उसके ऊपर एक २ एक २ पाट, ऐसा षड्दारु कहा जाता है) रक्खे । द्विशाला के आगे सुशोभित पट्टशाला (बरामदा) बनावे और उसके आगे कटहरा बनावे । उसके ऊपर पट्टभूमिका (चद्रशाला-खुली छत) रक्खे ॥३४॥

स्थान विभाग—

कोष्ठागारं च वायव्ये वह्निकोणे महानसम् ।
पुष्पगेहं तथेशाने नैऋर्त्ये पात्रमायुधम् ॥३५॥
सत्रागारं च पुरतो वारुण्यां च जलाश्रयम् ।
मठस्य[1] पुरतः कुर्याद् विद्याव्याख्यानमण्डपम् ॥३६॥

इति मठ ।

मठ के वायुकोने में धान्य का कोठार, अग्निकोने मे रसोडा, ईशान कोने मे पुष्पगृह (पूजोपगरण), नैऋर्त्य कोने में पात्र और आयुध, आगे के भाग मे यज्ञशाला और पश्चिम दिशामे जलस्थान बनावे । एवं मठ के आगे पाठशाला और व्याख्यान मडप बनावे ॥३५-३६॥

प्रतिष्ठा मुहूर्त्त—

पूर्वोक्ता सप्तपुण्याह-प्रतिष्ठा सर्वसिद्धिदा ।
रवौ[2] सौम्यायने कुर्याद् देवानां स्थापनादिकम् ॥३७॥

प्रथम अध्ययन के श्लोक ३६ मे जो सात पुण्य दिन कहे गये हैं । उनकी प्रतिष्ठा सर्वसिद्धि को देनेवाली है । जब सूर्य उत्तरायन मे हो तब देवो की प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्य करना चाहिये ॥३६॥

१ 'मठस्योपरित ।' २ 'रवे.' ।

प्रतिष्ठा के नक्षत्र—

> प्रतिष्ठा चोत्तरामूल आर्द्रायां च पुनर्वसौ ।
> पुष्ये हस्ते मृगे स्वातौ रोहिण्यां श्रुतिमैत्रभे ॥३८॥

तीन उत्तरा नक्षत्र, मूल, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मृगशीर्ष, स्वाति, रोहिणी, श्रवण और अनुराधा, ये नक्षत्र देव प्रतिष्ठा के कार्य में शुभ हैं ॥३८॥

प्रतिष्ठा में वर्जनीय तिथि—

> तिथिरिक्तां कुजं विष्ण्यं क्रूरविद्धं विधुं तथा ।
> दग्धातिथिं च गण्डान्तं चरभोपग्रहं त्यजेत् ॥३९॥

रिक्तातिथि, मंगलवार, क्रूरग्रह से वेधित अथवा युत नक्षत्र और चन्द्रमा, दग्धातिथि, नक्षत्र, मास, तिथि और लग्न आदिका गण्डान्तयोग, चर राशि और उपग्रह ये सब प्रतिष्ठा कार्य में वर्जनीय हैं ॥३९॥

> सुदिने शुभनक्षत्रे लग्ने सौम्ययुतेक्षिते ।
> अभिषेकः प्रतिष्ठा च प्रवेशादिकमिष्यते ॥४०॥

शुभदिनमें, शुभनक्षत्रमें, शुभलग्नमें, शुभग्रह लग्न में हो अथवा लग्न को देखता हो, ऐसे समय में राज्याभिषेक, देवप्रतिष्ठा और गृह प्रवेश आदि शुभकार्य करना चाहिये ॥४०॥

प्रतिष्ठा मण्डप—

> प्रासादाग्रे तथैशान्ये उत्तरे मण्डपं शुभम् ।
> त्रिपञ्चसप्तनन्देशा-दशभिस्करान्तरे ॥४१॥
> मण्डपः स्यात् करैरष्ट-दशाष्टकलामितैः ।
> षोडशहस्ततः कुण्ड-शादधिक उच्यते ॥४२॥
> स्तम्भैः षोडशभिर्युक्तं तोरणादिविराजितम् ।
> मण्डपे वेदिका मध्ये पञ्चाप्नवकुण्डकम् ॥४३॥

सोलह स्तभ वाला और तोरणो से शोभायमान बनावे। तथा मडप के मध्य मे वेदिका और पाच, आठ अथवा नव यज्ञ कुण्ड बनावे ।।४१ से ४३।।

यज्ञकुण्ड का मान—

हस्तमात्रं भवेत् कुण्डं मेखलायोनिसंयुतम् ।
आगमैर्वेदमन्त्रैश्च होमं कुर्याद् विधानतः ।।४४।।

तीन मेखला और योनि से युक्त ऐसा एक हाथ के मानका यज्ञकुण्ड बनावे। उसमे आगम और वेद के मत्रो से विधिपूर्वक होम करे ।।४४।।

आहुति संख्या से कुण्डमान—

अयुते हस्तमात्र स्याद् लक्षार्द्धे तु द्विहस्तकम् ।
त्रिहस्तं लक्षहोमे स्याद् दशलक्षे चतुष्करम् ।।४५।।
त्रिंशल्लक्षे पञ्चहस्तं कोट्यर्द्धे षट्करं मतम् ।
अशीतिलक्षेऽद्रिकरं कोटिहोमे कराष्टकम् ।।४६।।
ग्रहपूजाविधाने च कुण्डमेककरं भवेत् ।
मेखलात्रितय वेद-रामयुग्माङ्गुलैः क्रमात् ।।४७।।*

दस हजार आहुति के लिये एक हाथ का, पचास हजार आहुति के लिये दो हाथ का, एक लाख आहुति के लिये तीन हाथ का, दस लाख आहुति के लिये चार हाथ का, तीस लाख आहुति के लिये पाच हाथ का, पचास लाख आहुति के लिये छह हाथ का, अस्सी लाख आहुति के लिये सात हाथ का और एक करोड आहुति देना हो तो आठ हाथ का कुण्ड बनावे। ग्रहपूजा आदि के विधान मे एक हाथ के मान का कुण्ड बनावे। कुण्ड की तीन मेखला क्रमश चार, तीन और दो अगुल के मान की रखे ।।४५ से ४७।।

दिशानुसार कुण्डो की आकृति—

"प्राच्याश्चतुष्कोणभगेन्दुखण्ड-त्रिकोणवृत्ताङ्गभुजाम्बुजानि ।
अष्टास्त्रिशकेश्वरयोस्तु मध्ये, वेदास्त्रि वा वृत्तमुशन्ति कुण्डम् ।।" ३२।।

इति मडपकुडसिद्धौ

पूर्व दिशा में समचोरस, अग्निकोण में योन्याकार, दक्षिण दिशा में अर्द्धचन्द्र, नैर्ऋत्यकोण में त्रिकोण, पश्चिमदिशा मे गोल, वायुकोण मे छह कोण, उत्तर मे अष्टदल पद्माकार

* विशेष जानने के लिये देखो अपराजितपृच्छा सूत्र १४१ ।

और ईशानकोणमे अष्टकोण, ये आठ पूर्वदिशामे ईशानकोण तक आठ दिक्पालो के कुण्ड हैं। तथा पूर्व और ईशान के मध्य भाग मे नवा आचार्य कुण्ड गोल अथवा समचोरस बनावे।

'विशेष जानने के लिये देखे मण्डपकुण्डसिद्धि आदि ग्रंथ।'

मंडल—

एकद्वित्रिकरं कुर्याद् वेदिकोऽपरि मण्डलम्।
ब्रह्मविष्णुरवीणां च सर्वतोभद्रमिष्यते ॥४८॥

वेदिकाके ऊपर एक, दो अथवा तीन हाथ के मानका मंडल बनावें। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य की प्रतिष्ठा मे सर्वतोभद्र नामका मंडल बनावे ॥४८॥

भद्रं तु सर्वदेवानां नवनाभिस्तथा त्रयम्।
लिङ्गोद्भवं शिवस्यापि लतालिङ्गोद्भवं तथा ॥४९॥

सब देवो की प्रतिष्ठा मे भद्र नाम का मंडल, तथा नवनाभी अथवा तीन नाभि वाला लिंगोद्भव मंडल बनावे। शिव की प्रतिष्ठा मे लिंगोद्भव तथा लतालिंगोद्भव नाम का मंडल बनावे ॥४९॥

भद्रं च गौरीतिलकं देवीनां पूजने हितम्।
अर्धचन्द्रं तडागेषु चापाकारं तथैव च ॥५०॥

सब देवियो की पूजन प्रतिष्ठा मे भद्र और गौरीतिलक नाम का मंडल बनावें। तथा तालाब की प्रतिष्ठा मे अर्धचंद्र चापाकार मंडल बनावें ॥५०॥

पद्माभं स्वस्तिकं चैव वापीकूपेषु पूजयेत्।
पीठिकाजलपट्टेषु योन्याकारं तु कामदम् ॥५१॥

बावड़ी और कुओं की प्रतिष्ठा मे पद्माभ और स्वस्तिक नाम का पूजन करें। पीठिका और जलपट्ट की प्रतिष्ठा मे योनि के आकार का मंडल पूजने से सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥५१॥

गजदन्तं महादुर्गे प्रशस्तं मण्डलं यजेत्।
पद्माभं चतुरस्रं च गजदन्तं महाफलम् ॥५२॥

बड़े किले की प्रतिष्ठा मे गजदन्त नामका मंडल पूजन करना [illegible] का आकार होता है और गजदंत मंडल का आकार [illegible] है ॥५२॥

[illegible]
[illegible] ॥५३॥

सब मडलो मे सर्वतोभद्र नामका मडल प्रसिद्ध है, उसका तथा अन्य मडलो का स्वरूप अन्यशास्त्र (अपराजितपृच्छा सूत्र १४८) से जाने । यज्ञमडप मे पूर्वादि दिशाओ मे अनुक्रम से पीपला, गूलर, बरगद और पीपल के पत्तो का तोरण बाधे ॥५३॥

ऋत्विजसख्या—

द्वात्रिंशत् षोडशाष्टौ च ऋत्विजो वेदपारगान् ।
कुलीनानङ्गसम्पूर्णान् यज्ञार्थमभिमन्त्रयेत् ॥५४॥

यज्ञ करने वाले बत्तीस, सोलह अथवा आठ ऋत्विज आमन्त्रित होना चाहिये। ये सब वेदो के ज्ञाता हो, कुलवान् हो और अगहीन न हो ॥५४॥

देवस्नान विधि—

मण्डपस्य त्रिभागेन चोत्तरे स्नानमण्डपम् ।
स्थण्डिलं वालुकं कृत्वा शय्यायां स्नापयेत् सुरम् ॥५५॥
पञ्चगव्यैः कषायैश्च वल्कलैः क्षीरवृक्षजैः ।
स्नापयेत् पञ्चकलशैः शतवारं जलेन च ॥५६॥

मडप की चारो दिशा मे तीन ३ भाग करे, अर्थात् मडप का नव भाग करे। (आठ दिशा के आठ और एक मध्य वेदी का भाग जाने)। इनमे उत्तर दिशा के भाग मे स्नान मडप बनावे। उसमे रेतीका शुद्ध स्थडिल (भूमि) बनाकर उसके ऊपर शय्या मे देव की स्थापना करे। पीछे पचगव्य से, कषाय वर्ग की औषधियो से और क्षीरवृक्षो की छालो के चूर्ण से स्नात्र-जल तैयार करे, उससे पाच ५ कलश एकसौ बार भर करके देवको स्नान करावे ॥५५-५६॥

वेदमन्त्रैश्च वादित्रै-र्गीतमङ्गलनिःस्वनै ।
वस्त्रेणाच्छादयेद् देवं वेद्यन्ते मण्डपे न्यसेत् ॥५७॥

स्नान क्रिया के समय वेदमत्रो के उच्चारणो से, वाजीत्र की ध्वनियो से और मागलिक गीतो से आकाश ध्वनिमान करे। स्नान के बाद देवको वस्त्रसे आच्छादित करके, पीछे ईशानकोन की वेदी के ऊपर स्थापित करे ॥५७॥

देवशयन—

तल्पमारोपयेद् वेद्या-मुत्तराङ्गी न्यसेत् ततः ।
कलशं तु शिरोदेशे पादस्थाने कमण्डलुम् ॥५८॥

ईशानकोन की वेदी के ऊपर देवका शय्यासन रक्खे। उनके चरण उत्तर दिशा में रक्खे। सिर भाग के पास कलश और चरण के स्थान के पास कमंडलु रक्खे ॥५८॥

व्यजनं दक्षिणे देशे दर्पणं वामतः शुभम् ।
रत्नन्यासं ततः कुर्याद् दिक्पालादिकपूजनम् ॥५९॥

देवकी दाहिनी ओर पंखा और बांयी ओर दर्पण रखना शुभ है। पीछे आठ दिशाओं में रत्न को स्थापित करके दिक्पाल आदि की पूजा करे ॥५९॥

आग्नेय्यां गणेशं स्या-दीशाने ग्रहमण्डलम् ।
नैऋत्ये वास्तुपूजा च वायव्ये मातरः स्मृताः ॥६०॥

अग्निकोन में गणेश, ईशानकोन में नवग्रह मंडल, नैऋत्य कोन में वास्तुपूजा और वायव्यकोन में मातृदेवता की स्थापना करे ॥६०॥

रत्नन्यास—

वज्रं वैडूर्यकं मुक्ता-मिन्द्रनीलं सुनीलकम् ।
पुष्परागं च गोमेदं प्रवालं पूर्वतः क्रमात् ॥६१॥

वज्र (हीरा), वैडूर्य, मोती, इन्द्रनील, सुनील, पुष्पराग, गोमेद और प्रवाल, ये आठ रत्न पूर्वादि सृष्टिक्रम से रक्खें ॥६१॥

धातुन्यास—

सुवर्णं रजतं ताम्रं कांस्यं रीतिं च सीसकम् ।
वङ्गं लोहं च पूर्वादौ सृष्ट्या धातूनिह न्यसेत् ॥६२॥

सोना, चांदी, तांबा, कांसी, पीतल, सीसा, कलई और लोह, ये आठ धातु पूर्वादि सृष्टिक्रम से रक्खें ॥६२॥

औषधिन्यास—

*ब्राह्मी बलिः महदेवी विष्णुक्रान्तेन्द्रवारुणी ।
शङ्खिनी ज्योतिष्मती चैवेश्वरी तान् क्रमात् न्यसेत् ॥६३॥

प्रासाददेव न्यास—

प्रासादे देवतान्यासं स्थावरेषु पृथक् पृथक् ।
खरशिलायां वाराह पौल्यां नागकुलानि च ॥६९॥

प्रासाद के थरों और अंगोपांगो मे अलग २ देवो का न्यास करके पूजन करे। खरशिला मे वाराह देव और भीट के थर मे नागदेव का न्यास करे ॥६९॥

अकुम्भे जलदेवांश्च पुष्पके किन्नरांस्तथा ।
[1]नन्दिनं जाड्यकुम्भे च कर्णाल्या स्थापयेद्धरिम् ॥७०॥

कुम्भ के थर मे जलदेव, पुष्पकंठ के थर में किन्नरदेव, जाड्यकुम्भ में नदीदेव, और कणिका के थर मे हरिदेव का न्यास करे ॥७०॥

गणेशं गजपीठे स्या-दश्वपीठे तथाश्विनौ ।
नरपीठे नरांश्चैव क्ष्मां च खुरके यजेत् ॥७१॥

गजपीठ मे गणेश, अश्वपीठ मे दोनो अश्विनीकुमार, नरपीठ मे नरदेव और खुर के थर मे पृथ्वीदेवी का न्यास करके पूजन करे ॥७१॥

भद्रे संध्यात्रय [2]कुम्भे पार्वतीं कलशे स्थिताम् ।
कपोताल्यां च गान्धर्वान् मञ्चिकाया सरस्वतीम् ॥७२॥

भद्र के कुम्भ मे तीन संध्यादेवी, कलश के थर मे पार्वतीदेवी, केवाल के थर मे गांधर्व और माची के थर मे सरस्वती देवी का न्यास करे ॥७२॥

जङ्घायां च दिक्पाला-निन्द्रमुद्गमे सस्थितम् ।
सावित्रीं भरणीदेशे शिरावट्यां च देविकाम् ॥७३॥

जघा के थर मे दिक्पाल, उद्गम के थर मे इन्द्र, भरणी के थर म सावित्री और शिरावटी के थर मे भाराधार देवी का न्यास करे ॥७३॥

विद्याधरान् कपोताल्या-मन्तराले सुरांस्तथा ।
पर्जन्य कूटच्छाद्ये च ततो मध्ये प्रतिष्ठयेत् ॥७४॥

केवाल के थर मे विद्याधर, अंतराल के थर मे किन्नरादि सुर और छज्जा के थर में (मेरु) देव, इनका न्यास करे। मध्य भीतर के मध्य भाग मे देवों का न्यास करे ॥७४॥

---

१. 'नन्दिनी'। २ 'भद्रार कुम्भ' अ० पृ० १८० श्लो० ८।

शाखयोश्चन्द्रसूर्यौ च त्रिमूर्त्तिश्चोत्तरङ्गके ।
उदुम्बरे स्थितं यक्ष-मश्विनावर्द्धचन्द्रके ॥७५॥

द्वारशाखाओ मे चद्र और सूर्य, उत्तरग मे त्रिमूर्त्ति (ब्रह्मा, विष्णु और शिव), देहली मे यक्षो और अर्धचद्र (शखावटी) मे दोनो अश्विनीकुमारो का न्यास करें ॥७५॥

कौलिकायां धराधारं क्षिति चोत्तानपट्टके ।
स्तम्भेषु पर्वतांश्चैव-माकाशं च करोटके ॥७६॥

कोलिका मे घराधर, उत्तानपट्ट (बडा पाट) मे क्षिति, स्तभ मे पर्वत और गूबद मे आकाश, इन देवो का न्यास करे ॥७६॥

मध्ये प्रतिष्ठयेद् देवं मकरे जाह्नवीं तथा ।
शिखरस्योरुश्रृङ्गेषु पञ्च पञ्च प्रतिष्ठयेत् ॥७७॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्य ईश्वरी च सदाशिवः ।
शिखरे चेश्वरं देवं शिखायां च सुराधिपम् ॥७८॥

गर्भगृह मे स्वदेव, मगर मुखवाली नाली में गगाजी. शिखर के उरुश्रृगो मे ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, पार्वती और सदाशिव, इन पाच २ देवो का न्यास करके पूजन करे। शिखर मे ईश्वर देवका और शिखामे सुराधिप (इन्द्र) का न्यास करे ॥७७–७८॥

ग्रीवायामम्बरं देव-मण्डके च निशाकरम् ।
पद्माक्षं पद्मपत्रे च कलशे च सदाशिवम् ॥७९॥

शिखर की ग्रीवा में अबरदेव, श्रृगो में तथा आमलसार मे निशाकर (चद्रमा), पद्मात्र और पद्मशिला मे पद्माक्ष देव, और कलश मे सदाशिव, इन देवो का न्यास करे ॥७९॥

सद्यो वामस्तथाघोर-स्तत्पुरुष ईश एव च ।
कर्णादिगर्भपर्यन्तं पञ्चाङ्गे तान् प्रतिष्ठयेत् ॥८०॥

इति स्थावर प्रतिष्ठा।

सद्य, वामन, अघोर, तत्पुरुष और ईश, इन पाच देवो का कोने से लेकर गर्भपर्यन्त पाच अगो मे (कर्ण, प्रतिरथ, रथ, प्रतिभद्र और मुखभद्र मे) न्यास करे ॥८०॥

प्रतिष्ठितदेव का प्रथम दर्शन—

प्रथमं देवतादृष्टे-र्दर्शयेदन्नधान्यहितम् ।
विप्रकुमारिकां वास्तु-ततो लोकान् प्रदर्शयेत् ॥८१॥

प्रतिष्ठा के दिन रात्रि मे देवालय बंध होने के बाद प्रातःकाल खोलने के समय देवका प्रथम दर्शन ब्राह्मण कुमारी करे, बाद मे अन्य सब लोग दर्शन करें ॥८१॥

सूत्रधार पूजन—

[1]इत्येवं विविधं कुर्यात् सूत्रधारस्य पूजनम् ।
भूवित्तवस्त्रालङ्कारै-र्गोमहिष्यश्च वाहनैः ॥८२॥
अन्येषां शिल्पिना पूजा कर्त्तव्या कर्मकारिणाम् ।
स्वाधिकारानुसारेण वस्त्रैस्ताम्बूलभोजनैः ॥८३॥

अच्छी तरह विधि पूर्वक देव के प्रतिष्ठित होने के बाद भूमि, धन, वस्त्र और अलंकारों से तथा गाय, भैंस और घोडा आदि वाहनो से सूत्रधार की सम्मान पूर्वक पूजा करे। एवं काम करने वाले अन्य शिल्पिओ की भी उनके योग्यतानुसार वस्त्र, ताम्बूल और भोजन आदि से सम्मान पूर्वक पूजा करे ॥८२-८३॥

देवालयय निर्माण का फल—

काष्ठपाषाणनिर्माण-कारिणो यत्र मन्दिरे ।
भुंक्तेऽसौ च तत्र सौख्यं शङ्करत्रिदशैः सह ॥८४॥

काष्ठ अथवा पाषाण आदिका प्रासाद जो बनवाता है वह देवलोक में महादेव [illegible] अन्य देवों के साथ सुखको भोगता है ॥८४॥

सूत्रधार का आशिर्वाद—

पुण्यं प्रासादजं स्वामी प्रार्थयेत् सूत्रधारतः ।
सूत्रधारो वदेत् स्वामिन् ! अक्षयं भवतात् तव ॥८५॥

इति सूत्रधाराशीः ।

देवालय बनाने वाला स्वामी सूत्रधार से प्रासाद बनाने के पुण्य की याचना करे, तब सूत्रधार आशीर्वाद दे कि—'हे स्वामिन् ! प्रासाद बनाने का पुण्य अक्षय हो' ।८५।

आचार्य पूजन—

[illegible] ।
[illegible] ॥८६॥

---

१ '[illegible]' ।

सर्वेषां धनमाधारः प्राणीनां जीवनं परम् ।
वित्ते दत्ते प्रतुष्यन्ति मनुष्याः पितरः सुराः ॥८७ ॥८७॥

इति प्रतिष्ठाविधि ।

प्रतिष्ठाका कार्य समाप्त होने के बाद वस्त्र और सुवर्ण आदि धन से आचार्य की पूजा करे। पीछे ब्राह्मणो को तथा दीन, अध और दुर्बल मनुष्यो को दान देवे। क्योंकि सब प्राणियो का आधार धन है, और यही प्राणियो का श्रेष्ठ जीवन है। धन का दान देने से मनुष्य, पितृदेव और अन्य देव सतुष्ट होते है ॥८६–८७॥

जिनदेव प्रतिष्ठा—

प्रतिष्ठा वीतरागस्य जिनशासनमार्गतः ।
नवकारैः सूरिमंत्रैश्च सिद्धकेवलिभाषितैः ॥८८॥

वीतराग देव की प्रतिष्ठा जैन शासन मे बतलाई हुई विधि के अनुसार, सिद्ध हुए केवलज्ञानियो ने कहे हुए नवकारमत्र और सूरिमत्रो के उच्चारण पूर्वक करनी चाहिये ॥८८॥

ग्रहाः सर्वज्ञदेवस्य पादपीठे प्रतिष्ठिताः ।
येनानन्तविभेदेन मुक्तिमार्ग उदाहृताः ॥८९॥

जिनानां मातरो यक्षा यक्षिण्यो गौतमादयः ।
सिद्धाः कालत्रये जाताश्चतुर्विंशतिमूर्त्तयः ॥९०॥

सर्वज्ञदेव के पादपीठ (पबासन) मे नवग्रह स्थापित करे। ये जिनदेव अनन्त भेदो से मुक्ति मार्ग के अनुगामी कहे गये है। जिनदेव की माता, यक्ष, यक्षिणी और गौतम आदि गणधर आदि की मूर्त्तिया, तथा तीन काल मे सिद्ध होनेवाले चौवीस २ जिनदेव की मूर्त्तिया हैं ॥८९–९०॥

इति स्थाप्या जिनावासे त्रिप्राकारं गृहं तथा ।
सांवर्णं शिखरं [1]मन्दा-रकं त्वष्टापदादिकम् ॥९१॥

वे मूर्त्तिया जिनालय मे स्थापित करे। जिनालय समवसरण वाला, सवरणा वाला, शिखर वाला, गुम्बद वाला और अष्टापद वाला बनाया जाता है ॥९१॥

१ 'नन्दीश्वर।'

प्रासादो वीतरागस्य पुरमध्ये सुखावहः ।
नृणां कल्याणकारी स्याच्चतुर्दिक्षु प्रकल्पयेत् ॥६२॥

इति जिनप्रतिष्ठा ।

वीतरागदेव का प्रासाद नगर मे हो तो सुखकारक है, तथा मनुष्यो का कल्याण करने वाला है। इसलिये चारो दिशा मे ये बनाने चाहिये ॥६२॥

जलाश्रय प्रतिष्ठा—

माघादिपञ्चमासेषु वापीकूपादिसंस्कृतम् ।
तडागस्य चतुर्मास्यां कुर्यादाषाढमार्गयोः ॥६३॥
असंस्कृतं जलं देवाः पितरो न पिबन्ति तत् ।
संस्कृते तृप्तिमायाति तस्मात् संस्कारमाचरेत् ॥६४॥

बावडी और कुआ आदिकी प्रतिष्ठा मीन सक्राति का मास छोडकर माघ आदि पाच मास मे करे। तालाव की प्रतिष्ठा चौमासे के चार मास आषाढ और मार्गशीर्ष, ये छह मास मे करे। जलाश्रयो के जल का सस्कार न किया जाय तो उसका जल पितृदेव पीते नही हैं। सस्कार किये जल से ही पितृदेव तृप्त होते है। इसलिये जल का सस्कार अवश्य करना चाहिये ॥६३-६४॥

जलाश्रय बनवाने का पुण्य—

जीवनं वृक्षजन्तूनां करोति यो जलाश्रयम् ।
दत्ते वा स लभेत्सौख्य-मुर्व्यां स्वर्गे च मानवः ॥६५॥

जल, वृक्ष और सब जीवो का जीवन है। इसलिये जो मनुष्य जलाश्रय बनवाता है, वह मनुष्य जगत मे धनधान्य से पूर्ण ऐहिक सुखो को, तथा स्वर्ग के सुखो को प्राप्त करता है और मोक्ष पाता है ॥६५॥

वास्तुपुरुषोत्पत्ति—

पुरान्धकवधे रुद्र-ललाटात् पतितः क्षितौ ।
स्वेदस्तस्मात् समुद्भूतं भूतमत्यन्तं दुस्सहम् ॥६६॥
गृहीत्वा सहसा देवै-र्न्यस्तं भूमावधोमुखम् ।
जानुनी कोणयोः पादौ रक्षोदिशि शिवे शिरः ॥६७॥

प्राचीन समय मे जब महादेव ने अंधक नाम के दैत्य का विनाश किया, उस समय परिश्रम से महादेव के ललाट मे से पसीना की बिन्दु पृथ्वी के ऊपर पडी। इस बिन्दु से एक अत्यन्त भयकर भूत उत्पन्न हुआ। उसको देवो ने शीघ्र ही पकड करके पृथ्वी के ऊपर इस प्रकार से औधा गिरा दिया, कि उसकी दोनो जानु और हाथ की दोनो कोन्ही वायु और अग्नि कोने मे, चरण नैर्ऋत्य कोने मे और मस्तक ईशान कोने मे रहा ॥९६–९७॥

चत्वारिंशद्युताः पञ्च वास्तुदेहे स्थिताः सुराः ।
देव्योऽष्टौ बाह्यगास्तेषा वसनाद्वास्तुरुच्यते ॥९८॥

इस औधे पडे हुए वास्तुपुरुष के शरीर पर पैंतालीस देव स्थित हो गये और उसके चारो कोने पर आठ देविया भी स्थित हो गई। इस प्रकार तरेपन (५३) देव उस भूत के शरीर पर निवास करते है, इसलिये उसको वास्तु पुरुष कहते है ॥९८॥

अधोमुखेन विज्ञप्तौ त्रिदशान् विहितो बलिम् ।
तेनैव बलिना शान्तिं करोति हानिमन्यथा ॥९९॥
प्रासादभवनादीनां प्रारम्भे परिवर्त्तने ।
वास्तुकर्मसु सर्वेषु पूजितः सौख्यदो भवेत् ॥१००॥

अधोमुख करके रहा हुआ वास्तु पुरुष देवो को विनति करता है कि—जो मनुष्य मेरे ऊपर बैठे हुए देवो को विधिपूर्वक बलि देवेगा, तो उस बलिके प्रभाव से मैं उसको शान्ति प्रदान करूंगा और बलि नही देने पर तो हानि करूंगा। इसलिये प्रासाद और भवन आदि के सब वास्तु कर्म के प्रारम्भ से सम्पूर्ण होने तक सब वास्तु कर्म मे वास्तु पूजन करने से सुखशांति होवेगी ॥९९–१००॥

एकपदादितो वास्तु-र्यावत्पदसहस्रकम् ।
द्वात्रिंशन्मण्डलानि स्युः क्षेत्रतुल्याकृतीनि च ॥१०१॥

एक पदसे लेकर एक हजार पद तक का वास्तु बनाने का विधान है। वास्तुपूजन के बत्तीस मडल हैं, वे क्षेत्र की आकृति के अनुसार आकृति वाले हैं ॥१०१॥ A

एकाशीतिपदो वास्तु-श्चतुःषष्टिपदोऽथवा ।
सर्ववास्तुविभागेषु पूजयेन्मण्डलद्वयम् ॥१०२॥

A सविस्तार जानने के लिये देखें। अपराजित पृच्छा सूत्र ५७ और ५८ वा।

वास्तु पूजन के बत्तीस मडलो मे से इक्यासीपद का और चौसठ पद का, ये दो मडल पूजने चाहिये ॥१०२॥*

वास्तुपुरुष के ४५ देव—

ईशो मूर्धनि पर्जन्यो दक्षिणकर्णमाश्रितः ।
जयः स्कन्धे महेन्द्राद्याः पञ्च दक्षिणबाहुगाः ॥१०३॥
[1]महेन्द्रादित्यसत्याश्च भृश आकाशमेव च ।
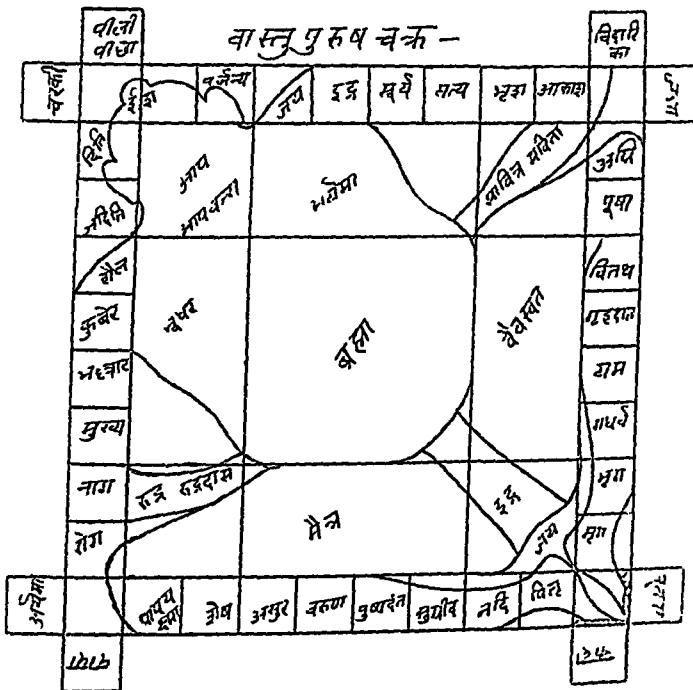
वास्तुपुरुष के मस्तक पर ईशदेव, दाहिने कान पर पर्जन्यदेव, दाहिने स्कध पर जयदेव और दाहिनी भुजा पर इन्द्र आदि पाच—इन्द्र, सूर्य, सत्य भृश और आकाश देव स्थित हैं ॥१०३॥

वह्निर्जानुनि पुषाद्याः सप्त पादनलीस्थिताः ॥१०४॥

*विशेष जानने के लिये देखें राजवल्लभ मंडन अध्याय २

१ 'महेन्द्र सूय सत्यश्च ।'

पुषाथ वितथश्चैव गृहक्षतो यमस्तथा ।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः सप्त सुरा इति ॥१०५॥

अग्निकोण मे जानुके ऊपर अग्नि देव और दाहिने पैर की नलीके ऊपर पुषा आदि सात देव—पुषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गान्धर्व, भृंगराज और मृग, ये सात देव स्थित है ॥१०४–१०५॥

पादयोः पितरस्तस्मात् सप्त पादनलीस्थिताः ।
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः ॥१०६॥
[1]असुरशोषयक्ष्माश्च रोगो जानुनि सस्थितः ।
नागो मुख्यश्च भल्लाटः सोमो गिरिश्च बाहुगाः ॥१०७॥

दोनो पैरके ऊपर पितृदेव, बाये पैरकी नली पर दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदत, जलाधिप (वरुण), असुर, शोप, और पापयक्ष्मा ये सात देव स्थित है। नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर और गिरि (शैल), ये पाच देव बाबी भुजा पर स्थित है ॥१०६–१०७॥

अदितिः स्कन्धदेशे च वामे कर्णे दिति स्थितः ।
द्वात्रिंशद्बाह्यगा देवा नाभिपृष्ठे स्थितो विधिः ॥१०८॥

बाये स्कध पर अदिति देव और बाये कान पर दितिदेव स्थित हैं। इस प्रकार बत्तीस देव वास्तुपुरुष के बाह्य अगो पर हैं। मध्य नाभि के पृष्ठ भाग मे ब्रह्मा स्थित है ॥१०८॥

अर्यमा दक्षिणे वामे स्तने तु पृथिवीधरः ।
विवस्वानऽथ मित्रश्च दक्षवामोरुगावुभौ ॥१०९॥

दाहिने स्तन पर अर्यमा और बाये स्तन पर पृथ्वीधर देव स्थित है। दाहनी ऊरु पर विवस्वान् और बायी ऊरु पर मित्रदेव स्थित है ॥१०९॥

आपस्तु गलके वास्तो-रापवत्सो हृदि स्थितः ।
[2]सावित्री सविता तद्वत् करं दक्षिणमाश्रितौ ॥११०॥

वास्तुपुरुप के गले पर आपदेव, हृदय के ऊपर आपवत्स देव स्थित है। दाहिने हाथ पर सावित्री और सविता ये दो देविया स्थित है ॥११०॥

इन्द्र इन्द्रजयो मेढ्रे रुद्रोऽसौ वामहस्तके ।
रुद्रदासोऽपि तत्रैव इति देवमयं वपुः ॥१११॥

१ 'शेप।' २ 'सावित्र'।

मेढ़् (लिंग) स्थान पर इन्द्र और इन्द्रजय देव स्थित हैं। बाये हाथ पर रुद्र और रुद्रदास देव स्थित हैं। इस प्रकार कुल पैंतालीस देवमय वास्तुपुरुष का शरीर है ॥१११॥

वास्तुमंडल के कोने की आठ देवियां—

ऐशान्ये चरकी बाह्ये पीलीपीछा च पूर्वदिक् ।
विदारिकाग्निकोणे च जम्भा याम्यदिशाश्रिता ॥११२॥
नैऋत्ये पूतना स्कन्दा पश्चिमे वायुकोणके ।
पापराक्षसिका सौम्येऽर्यमैवं सर्वतोऽर्चयेत् ॥११३॥

वास्तुमडल के बाहर ईशानकोने मे उत्तर दिशा मे चरकी और पूर्व मे पीलीपीच्छा, अग्निकोने मे पूर्व मे विदारिका और दक्षिण मे जम्भा देवी, नैऋत्यकोने मे दक्षिण मे पूतना और पश्चिम मे स्कन्दा, वायुकोने मे पश्चिम मे पापराक्षसिका और उत्तर मे अर्यमा देवी का न्यास करके पूजन करे ॥११२-१३॥

देवीः क्रूरान् यमादींश्च मापान्नैः सुरयामिपैः ।
अपरान् घृतपक्वान्नैः सर्वान् स्वर्णसुगन्धिभिः ॥११४॥

इति वास्तुपुरुषविन्यास ।

देवियो को और यम आदि क्रूर देवो को मापान्न, सुरा और आमिष से और बाकी के सब देवो को घृत, पक्वान, सुवर्ण और सुगंधित पदार्थों से पूजना चाहिये ॥११४॥

शास्त्रप्रशंसा—

एकेन शास्त्रेण गुणाधिकेन,
विना द्वितीयेन पदार्थसिद्धिः ।
तस्मात् प्रकारान्तरतो विलोक्य,
मणिर्गुणाढ्योऽपि सहायकाङ्क्षी ॥११५॥

इस ग्रन्थ के कर्त्ता श्रीमंडनसूत्रधार का कहना है कि—शिल्पशास्त्र अनेक है। उनमे यह एक ही शास्त्र अधिक गुणवाला होने पर भी दूसरे शिल्पशास्त्र देखे बिना पदार्थ की सिद्धि नही होती, इसलिये प्रकारान्तर से दूसरे शिल्पग्रन्थ भी देखने चाहिये। जैसे—अकेला मणि अधिक गुणवाला होने पर भी इतनी शोभा नही देता जितनी सुवर्णादि अन्य पदार्थों के साथ मिलाने से देता है। इसी प्रकार शिल्प के अनेक शास्त्र देखने मे शिल्पी शिल्पशास्त्र का विद्वान् होता है ॥११५॥

अन्तिममंगल—

श्रीविश्वकर्मगणनाथमहेशचण्डी–
श्रीविश्वरूपजगदीश्वरसुप्रसादात् ।
प्रासादमण्डनमिदं रुचिरं चकार,
श्रीमण्डनो गुणवतां भुवि सूत्रधारः ॥११६॥

इति श्रीसूत्रधारमण्डनविरचिते वास्तुशास्त्रे प्रासादमण्डने
अष्टमोऽध्यायः समाप्तः । सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः ।

श्री विश्वकर्मा, गणपति, महेश, चडीदेवी और निश्वस्वरूप श्री जगदीश्वर की कृपा से जगत के विद्वानो मे सुप्रसिद्ध मडन नाम का सूत्रधार है। उसने प्रासाद निर्माण विधि का यह प्रासादमडन नाम का शास्त्र आनद पूर्वक बनाया ॥११६॥

इति श्री पडित भगवानदास जैन ने इस प्रासादमडन के आठवे
अध्याय को सुबोधिनी नामकी भाषाटीका समाप्त की।

❀ श्रीरस्तु ❀

परिशिष्ट नं.—१

केसरी आदि २५ प्रासाद।

(अपराजितपृच्छा सूत्र १५६)

विश्वकर्मोवाच—

सान्धारांश्च ततो वक्ष्ये प्रासादान् पर्वतोपमान् ।
शिखरैर्विविधाकारै-र्नैकाण्डैश्च[1] विभूषितान् ॥१॥

पर्वत के जैसे शोभायमान, अनेक प्रकार के शिखरवाले और अनेक शृंगो से विभूषित, ऐसे सान्धार जातिके प्रासादो को कहता हू। ऐसा विश्वकर्मा कहता है ॥१॥

आद्यः पञ्चाण्डको ज्ञेयः केसरी नाम नामतः ।
[2]तावदन्त चतुर्वृद्धि-र्यावदेकोत्तरं शतम् ॥२॥

प्रथम केसरी नामका प्रासाद पाच शृंगो वाला है। पीछे प्रत्येक प्रासाद के ऊपर चार २ शृंग बढाने से पच्चीसवे अंतिम मेरु प्रासाद के ऊपर एक सो एक शृंग होजाता हैं ॥२॥

पच्चीस प्रासादो का नाम—

केशरी सर्वतोभद्रो नन्दनो नन्दशालिकः ।
नन्दीशो मन्दरश्चैव श्रीवत्सश्चामृतोद्भवः ॥३॥
हिमवान् हेमकूटश्च कैलासः पृथिवीजयः ।
इन्द्रनीलो महानीलो भूधरो रत्नकूटकः ॥४॥
वैडूर्यः पद्मरागश्च वज्रको मुकुटोज्ज्वलः ।
ऐरावतो राजहंसो गरुडो वृषभस्तथा ॥५॥
मेरुः प्रासादराजः स्याद् देवानामालयो हि सः ।
संयोगेन च सान्धारान् कथयामि यथार्थत. ॥६॥

---

१ 'रण्डकैर्नैकभूषितान्।' २ 'तावन्तश्चतुरो वृद्धि ।'

केसरी, सर्वतोभद्र, नन्दन, नन्दशालिक, नन्दीश, मदर, श्रीवत्स, अमृतोद्भव, हिमवान्, हेमकूट, कैलाश, पृथिवीजय, इन्द्रनील, महानील, भूधर, रत्नकूटक, वैडूर्य, पद्मराग, वज्रक, मुकुटोज्ज्वल, ऐरावत, राजहस, गरुड, वृपभ और मेरु ये पचीस प्रासाद साधारजाति के हैं। उसका अनुक्रमसे यथार्थ वर्णन किया जाता है ॥३ से ६॥

[1]दशहस्तादधस्तान्न प्रासादो भ्रमसंयुतः ।
षट्त्रिंशान्तं निरन्धारा धार्य्ये वेदादिहस्ततः ॥७॥

यदि प्रासाद का मान दस हाथ से न्यून न हो तो, वह प्रासाद भ्रम (परिक्रमा) वाला बना सकते है। एव चार हाथ से छत्तीस हाथ तक के मान का प्रासाद विना भ्रमका भी बना सकते है ॥७॥

पञ्चविंशतिः [2]सान्धाराः प्रयुक्ता वास्तुवेदिभिः ।
भ्रमहीनास्तु ये कार्याः शुद्धच्छन्देषु नागराः ॥८॥

वास्तुशास्त्र के विद्वानो ने ये सान्धार (परिक्रमा वाले) पचीस प्रासाद शुद्ध नागर जाति के कहे हैं, वे भ्रम रहित भी बना सकते हैं ॥८॥

१–केसरीप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे अष्टाष्टकविभाजिते ।
भागभागं भ्रमभित्ति-द्विभागो देवतालयः ॥९॥

सान्धार जाति के प्रासाद की समचोरस भूमि के आठ २ भाग करे, उनमे से एक भाग की भ्रमणी, एक २ भाग को दो दीवार और दो भागका गभारा बनाना चाहिये ॥९॥

निरन्धारे पदा भित्ति–रर्धं गर्भं प्रकल्पयेत् ।
मध्यच्छन्दश्च वेदास्रो बाह्ये कुम्भायतं शृणु ॥१०॥

यदि प्रासाद निरधार बनाना हो तो प्रासाद के मान के चौथे भागकी दीवार और आधे मानका गभारा बनाना चाहिये। जैसे–आठ हाथ के मानका प्रासाद है, तो उसका चौथा भाग दो २ हाथ की दीवार और चार हाथ का गभारा बनावे। मध्य में गभारा समचोरस रक्खे। अब गभारा के बाहर कु भा की लबाई के मानको कहता हू ॥ ०॥

---

१ 'दशहस्तावधौ नास्ति ।'

२ गभारेके चारो तरफ फेरी देने के लिये परिक्रमा बनी होवे ऐसे प्रासादों को साधार प्रासाद कहा जाता है और परिक्रमा बनी हुई न होवे तो निरधार प्रासाद कहा जाता है।

क्षेत्रार्धे च भवेद् भद्रं भद्रार्धं कर्णविस्तरः ।
कर्णस्यार्धप्रमाणेन कर्त्तव्यो भद्रनिर्गमः ॥११॥

प्रासाद की भूमिके नाप से आधा भद्रका विस्तार रक्खे। इससे आधे मानका कोणा का विस्तार रक्खे। कोणे के आधे मान का भद्रका निर्गम रक्खे ॥११॥

चतुष्कर्णेषु ख्यातानि श्रीवत्सशिखराणि च ।
रथिकोद्गमे च पञ्चैव केशरी गिरिजाप्रियः ॥१२॥

इति केसरीप्रासाद ॥१॥

प्रासाद के चारो कोणे के ऊपर एक २ श्रीवत्स शृंग चढावे, तथा भद्रके ऊपर रथिका और उद्गम बनावे। इस प्रकार का केसरी नामका प्रासाद पार्वती देवी को प्रिय है ॥१२॥

शृंग संख्या-चार कोणे ४ और एक शिखर एवं कुल ५ शृंग।

२–सर्वतोभद्रप्रासाद—

क्षेत्रे विभक्ते दशधा गर्भः षोडशकोष्ठकैः ।
भित्तिं भ्रमं च भित्तिं च भागभागं प्रकल्पयेत् ॥१३॥

प्रासाद की समचोर भूमिका दस २ भाग करे। उनमें से मध्य गभारा कुल सोलह भाग का रक्खे। बाकी एक भाग की दीवार, एक भाग की भ्रमणी और एक भागकी दूसरी बाहर की दीवार रक्खे ॥१३॥

द्विभागः कर्ण इत्युक्तो भद्रं षड्भागिकं तथा ।
निर्गमं चैकभागेन भागिका पार्श्वतोभणा ॥१४॥

दो २ भाग का कोणा और छभागका भद्र का विस्तार रक्खे। भद्र का निर्गम एक भाग रक्खे और भद्र के दोनो तरफ एक २ भाग की एक २ कोणी बनावे ॥१४॥

कर्णिका चार्धभागेन भागार्धं भद्रनिर्गमम् ।
भागत्रयं च विस्तारे मुखभद्रं विधीयते ॥१५॥

भद्र के दोनो तरफ आधे २ भाग की एक २ कर्णिका भी बनाना-इस का और कोणीया का निर्गम आधा भाग और भद्र का निर्गम आधा भाग, इस प्रकार कुल एक भाग भद्र का निर्गम जाने। भद्रका विस्तार छ भाग रखना ऊपर लिखा है, उनमें से दो कोणी और

दो कर्णिका का तीन भाग छोड करके बाकी तीन भाग रहे, उतना मुखभद्र का विस्तार रक्खे ॥१५॥
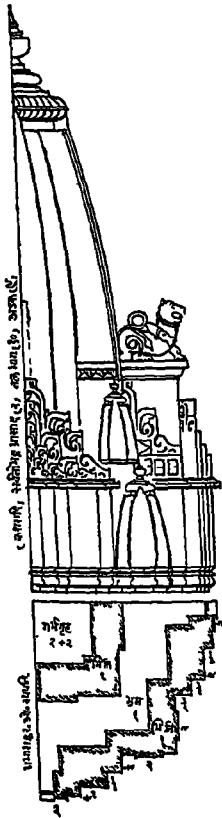
भद्रे वै तूद्गमाः पञ्च कर्णेऽष्टशृङ्गकानि च ।
श्रीवत्सशिखरं कार्यं घण्टाकलशसंयुतम् ॥१६॥

इति सर्वतोभद्रप्रासाद ॥२॥

भद्रके ऊपर पाच २ उद्गम करे। कोणे के ऊपर दो २ एव कुल आठ शृंग चढावे आमलसार और कलश वाला श्रीवत्स शिखर बनावे ॥१६॥

शृंगसख्या—प्रत्येक कोण पर २-२ और एक शिखर एव कुल ९ शृंग ।

३—नदनप्रासाद—

श्रीवत्सं भद्रमारूढ रथिकोद्गमभूषिते ।
नन्दने नन्दति स्वामी दुरित हरति ध्रुवम् ॥१७॥

इति नन्दनप्रासाद ॥३॥

यह नन्दन प्रासाद का मान और स्वरूप सर्वतोभद्र प्रासाद के अनुसार जाने। फर्क इतना कि—भद्र के गवाक्ष और उद्गम के ऊपर एक २ उरुशृंग चढ़ावे। इसको बनानेवाला स्वामी आनन्द मे रहता है और सब पापो का नाश करता है ॥१७॥

शृंगसख्या—चार कोणे ८, चार भद्रे ४ और एक शिखर, एव कुल १३ शृंग ।

४—नंदिशालप्रासाद—

तस्यैवं भद्रोर्ध्वे शृङ्गं भद्रं तस्यानुरूपतः ।
नन्दिशालो गुणैर्युक्तः स्वरूपो लक्षणान्वितः ॥१८॥

इति नन्दिशालप्रासाद ॥४॥

इस नन्दिशालप्रासाद का तलमान और स्वरूप नन्दन प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष इतना कि—भद्र के ऊपर एक २ उरुशृंग अधिक चढावे तो यह नन्दिशाल प्रासाद सब गुणो से युक्त अच्छे लक्षणवाला सुन्दर बनता है ॥१८॥

शृंगसख्या-कोणे ८, भद्रे ८ और एक शिखर, एव कुल १७ शृंग ।

५—नन्दीशप्रासाद—

त्रिभागं च भवेद् भद्रं भद्रार्धं प्ररथस्तथा ।
कर्णे शृङ्गद्वयं भद्रे एकैकं प्ररथे तथा ॥१९॥

इति नन्दीशप्रासाद ॥५॥

यह नन्दीशप्रासाद का मान और स्वरूप सर्वतोभद्र प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह है कि—छ भाग का भद्र है, उसके बदले तीन भाग का भद्र और डेढ २ भाग का प्रतिरथ बनावे। कोणे के ऊपर दो २, भद्र के ऊपर एक २ और प्रतिरथ के ऊपर एक २ शृंग चढावे ॥१९॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्ररथे ८, भद्रे ४ और एक शिखर, एवं कुल २१ शृंग।

६—मंदरप्रासाद—

द्वादशांशस्तु विस्तारो मूलगर्भस्तदर्धतः ।
भागभागं तु कर्त्तव्या द्वे भित्ती चान्धकारिका ॥२०॥
कर्णप्ररथभद्रार्धं कारयेद् द्विद्विभागतः ।
प्ररथः समनिष्कासो भद्रं भागेन निर्गमम् ॥२१॥
कर्णे द्वे भद्रके द्वे च चैकं प्रतिरथे तथा ।
सघण्टा कलशा रेखा रथिकोद्गमभूषिताः ॥२२॥

इति मन्दरप्रासाद ॥६॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका बारह भाग करे। उनमें से छ भाग का गभारा बनावे, तथा एक २ भाग की दोनों दीवार और एक २ भाग की भ्रमणी (परिक्रमा) बनावे। गभारे के बाहर के भाग में कोणा, प्ररथ और भद्रार्ध ये सब दो २ भाग का रक्खे। उसका निर्गम समदल रक्खें और भद्रका निर्गम एक भाग रक्खें। कोणे के ऊपर दो २ शृंग, भद्रके ऊपर दो २ उरुशृंग और प्रतिरथ के ऊपर एक २ शृंग चढावे। आमलसार, कलश, रेखा, गवाक्ष और उद्गम, ये सब शोभायमान बनावे ॥२० से २२॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्ररथे ८ भद्रे ८ और एक शिखर, एवं कुल २५ शृंग।

७-श्रीवृक्षप्रासाद—

चतुर्दशांशविस्तारे गर्भश्चाष्टांशविस्तरः ।
भागभागं भ्रमो भित्ति-र्बाह्यभित्तिस्तु भागिका ॥२३॥
कर्णे शृङ्गद्वयं कुर्या-च्छिखरं चाष्टविस्तरम् ।
प्ररथः कर्णमानेन तिलकं शृङ्गकोपरि ॥२४॥
नन्दिकायां च तिलकं भद्रे शृङ्गत्रयं भवेत् ।
श्रीवृक्षस्तु समाख्यातः कर्त्तव्यस्तु श्रियः पतेः ॥२५॥

इति श्रीवृक्षप्रासाद ॥७॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका चौदह भाग करे। उनमे से आठ भागका गभारा, एक भागकी दीवार, एक भागकी भ्रमणी और एक भागकी बाहर की दीवार, इस प्रकार भीतर का मान होता है। बाहर का मान मदर प्रासाद के अनुसार होता है। विशेष इतना कि—दो भाग का कोणा, दो भागका प्रतिरथ, एक भागकी नदी, और दो भाग का भद्रार्ध रक्खे। कोणेके ऊपर दो शृंग, प्रतिरथ के ऊपर एक शृंग और एक तिलक चढावें। शिखर का विस्तार आठ भाग का रक्खे। नदीके ऊपर एक २ तिलक रक्खे। भद्रके ऊपर तीन २ उरुशृंग चढावे। ऐसा श्रीवृक्षप्रासाद का स्वरूप है, वह विष्णु के लिये बनावे ॥२३ से २५॥

शृंगसख्या—कोणे ८, प्रतिरथे ८, भद्रे १२, एक शिखर, एवं कुल २९ शृंग। तिलक सख्या—प्रतिरथे ८ और नदीपर ८ एव कुल १६ तिलक।

८- तोद्भवप्रासाद—

कर्णे शृङ्गत्रयं कुर्यात् प्ररथः पूर्वकल्पितः ।
अमृतोद्भवनामोऽसौ प्रासादः सुरपूजितः ॥२६॥

इति अमृतोद्भवप्रासाद. ॥८॥

यह प्रासाद का तलमान और स्वरूप श्रीवृक्षप्रासाद के अनुसार जाने। विशेष इतना कि—कोण के ऊपर तीन शृङ्ग चढावे, बाकी प्रतिरथ आदि के ऊपर श्रीवृक्ष प्रासाद की तरह जाने। ऐसा अमृतोद्भवप्रासाद देवो से पूजित है ॥२६॥

शृ गसख्या—कोणे १२, प्रतिरथे ८, भद्रे १२, एक शिखर, एव कुल ३३ शृ ग, तिलक सख्या—प्रतिरथे ८ और नन्दी पर ८, कुल १६ तिलक।

९—हिमवान् प्रासाद—

द्वे द्वे शृङ्गे प्रतिरथे त्वमृतोद्भवसंस्थितौ।
हिमवान् द्वे उरुशृङ्गे पूज्यः सुरनरोरगैः ॥२७॥

इति हिमवान् प्रासाद ॥९॥

यह प्रासाद का तलमान और स्वरूप अमृतोद्भव प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह है कि—पढरे के ऊपर तिलक के बदले शृ ग अर्थात् दो शृ ग चढ़ावे और भद्रके ऊपर से एक उरुशृ ग कम करके दो उरुशृ ग रक्खे। ऐसा हिमवान् नामका प्रासाद देव, मनुष्य और नाग-कुमारो से पूजित है ॥२७॥

शृ गसंख्या—कोणे १२, प्रतिरथे १६, भद्रे ८, एक शिखर, एव कुल ३७ शृ ग और तिलक ८ नदी के ऊपर।

१०—हेमकूट प्रासाद—

उरुशृङ्गत्रयं भद्रे नन्दिका तिलकान्विता।
हेमकूटस्तदा नाम प्रकर्त्तव्यस्त्रिमूर्त्तिके ॥२८॥

इति हेमकूटप्रासाद ॥१०॥

यह प्रासादका तलमान और स्वरूप हिमवान् प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह है कि—भद्र के ऊपर तीसरा उरुशृ ग और नदी के ऊपर दूसरा तिलक चढ़ावे। यह हेमकूट नामका प्रासाद ब्रह्मा, विष्णु और महेश, यह त्रिमूर्त्ति के लिये बनावे ॥२८॥

शृंगसख्या—कोणे १२, प्रतिरथे १६, भद्रे १२, एक शिखर, एव कुल ४१ शृ ग और १६ तिलक नन्दी के ऊपर।

११—कैलास प्रासाद—

नन्दिकाग्रान्ततः शृङ्गं रेखाश्च तिलकोत्तमाः।
कैलासश्च तदा नाम ईश्वरस्य सदा प्रियः ॥२९॥

इति कैलासप्रासाद ॥११॥

यह प्रासाद का मान और स्वरूप हेमकूट प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—नन्दी के ऊपर दो तिलक हैं, उसके बदले एक शृ ग और उसके ऊपर एक तिलक चढ़ावें।

तथा कोणे के ऊपर तीन शृंग हैं, उसके बदले दो शृंग और उसके ऊपर तिलक चढाना चाहिये। ऐसा कैलास नामका प्रासाद ईश्वर को हमेशा प्रिय है ॥२९॥

शृंगसख्या—कोणे ८, पढरे १६, नदी पर ८, भद्रे १२, एक शिखर, एव कुल ४५ शृंग और तिलक ८ कोने और ८ नन्दी के ऊपर।

१२-पृथिवीजय प्रासाद—

रेखोर्ध्वे तिलकं त्यक्त्वा शृङ्गं तत्रैव कारयेत् ।
पृथ्वीजयस्तदा नाम कर्त्तव्यः सर्वदैवते ॥३०॥

इति पृथ्वीजयप्रासाद ॥१२॥

यह प्रासाद का तलमान और स्वरूप कैलासप्रासादकी तरह जाने। विशेष यह है कि—कोणेके ऊपर का तिलक हटाकर के उसके बदले शृंग चढावे। ऐसा पृथ्वीजय नामका प्रासाद सब देवो के लिये बनावे ॥३०॥

शृंगसख्या—कोणे १२, प्रतिरथे १६, नदी के ऊपर ८, भद्रे १२, एक शिखर, एव कुल ४९ शृंग और तिलक ८ नदी के ऊपर।

१३-इन्द्रनीलप्रासाद—

षोडशांशकविस्तारे द्विभागः कर्णविस्तरः ।
नन्दिका चैकभागेन द्व्यंशः प्रतिरथस्तथा ॥३१॥
पुनर्नन्दी भवेद् भागं भद्रं वेदांशविस्तरम् ।
समस्तं समनिष्कासं भद्रे भागो विनिर्गमः ॥३२॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का सोलह भाग करे। उनमे से दो भाग का कोण, एक भागकी नन्दी, दो भागका प्रतिरथ, एक भाग की दूसरी नन्दी और दो भागका भद्रार्ध बनावे। ये सब अगोका निर्गम समदल और भद्रका निर्गम एक भाग रक्खे ॥३१-३२॥

चतुष्यंशको गर्भो वेष्टितो भीत्तिभागतः ।
बाह्यभीत्तिर्भवेद् भागा द्विभागा च भ्रमन्तिका ॥३३॥

सोलह भाग मे गभारे का विस्तार आठ भाग (समचोरस ६४ भाग) करे गभारे को दीवार एक भाग, भ्रमणी दो भाग और बाहर की दीवार एक भाग रक्खें ॥३३॥
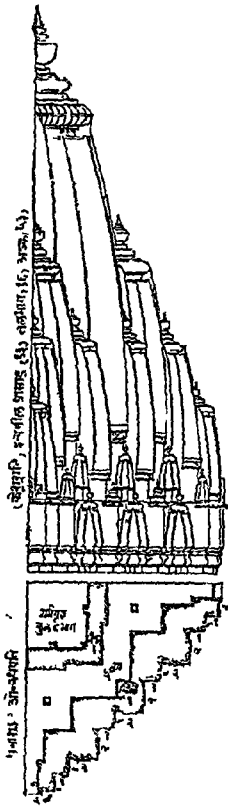
कर्णे शृङ्गद्वयं कार्यं शिखरं सूर्यविस्तरम् ।
नन्दिकायां तु तिलकं प्रत्यङ्गं च द्विभागिकम् ॥३४॥
शृङ्गद्वयं प्रतिरथे उरुशृङ्गं षडंशकम् ।
[1]शृङ्गद्वयं नन्दिकाया-मुरःशृङ्गं युगांशकम् ॥३५॥
द्विभागं भद्रशृङ्गं तु शृङ्गार्धे चैव निर्गमः ।
कर्णे प्रतिरथे चैव ह्युदकान्तरभूषितम् ॥३६॥
इन्द्रनीलस्तदा नाम इन्द्रादिसुरपूजितः ।
वल्लभः सर्वदेवानां शिवास्यापि विशेषतः ॥३७॥

इति इन्द्रनीलप्रासाद ॥१३॥

कोणे के ऊपर दो शृंग चढ़ावे। शिखर का विस्तार बारह भाग रक्खे। नन्दी के ऊपर एक तिलक चढ़ावे और दो भाग के विस्तार वाला प्रत्यंग चढावे। प्रतिरथ के ऊपर दो शृंग चढावे। पहला उरुशृंग छ भाग विस्तार में रक्खे। नन्दी के ऊपर एक शृंग चढावे। दूसरा उरुशृंग विस्तार में चार भाग का और तीसरा उरुशृंग विस्तार में दो भाग का रक्खे। इन उरुशृंगों का निर्गम विस्तार से आधा रक्खे। कोणा और प्रतिरथ उदकान्तर वाला बनावे। ऐसा इन्द्रनील प्रासाद इन्द्रादि देवों से पूजित है, यह सब देवों को और विशेष कर शिवजी को प्रिय है ॥३४ से ३७॥

शृंग संख्या—कोणे ८, प्रतिरथे १६, भद्र नन्दी के ऊपर ८, भद्रे १२, प्रत्यंग ८, एक शिखर, कुल ५३ शृंग और तिलक ८ कर्ण नन्दी पर।

१४—महानील प्रासाद—

कर्णे नन्दी (कर्णनन्द्यां ?) तथा शृङ्गं रेखोर्ध्वे तिलकं तथा ।
महानीलस्तदा नाम कर्त्तव्यः सुरदैवते ॥३८॥

इति महानीलप्रसाद ॥१४॥

---

१ 'शृंगद्वय' अशुद्ध पाठ मालुम होता है। उस स्थान पर 'शृंगमेकं' ऐसा पाठ चाहिये जिससे शृंगों की संख्या ठीक मिल जाय।

यह महानील प्रासाद का तलमान और स्वरूप इन्द्रनील प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह है कि—कर्णनन्दी के ऊपर से तिलक हटा करके उसके बदले शृंग रक्खे। ऐसा महानील प्रासाद सब देवो के लिये बनावे ॥३८॥

शृंग संख्या—कोणे ४, नदी पर ८, प्रत्यंग ८, प्रतिरथे १६, नन्दी पर ८ भद्रे १२ और एक शिखर, कुल ५७ शृंग और तिलक ४ कोणे।

१५–भूधरप्रासाद—

कार्यं शृङ्गं च तिलकं रेखामध्ये प्रशस्यते ।
भूधरस्य समाख्यातः प्रासादो देवतालयः ॥३९॥

इति भूधरप्रासाद. ॥१ ॥

यह प्रासाद का मान और स्वरूप महानील प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह कि—कोणे के ऊपर एक शृंग अधिक चढावे तो यह भूधर नाम का प्रासाद देवोका स्थानरूप होता है ॥३९॥

शृंग संख्या—कोणे ८, बाकी पूर्ववत् जाने। तिलक ४ कोणे।

१६–रत्नकूटप्रासाद—

भूधरस्य यथा प्रोक्तं द्विभागं वर्धयेत् पुनः ।
पूर्ववद्दलसंख्यायां भद्रपार्श्वे द्विनन्दिके ॥४०॥
द्विभाग बाह्यभित्तिश्च शेषं पूर्वप्रकल्पितम् ।
तलच्छन्दमिति ख्यात-मूर्ध्वमानमतः शृणु ॥४१॥

यह रत्नकूट प्रासाद का मान और स्वरूप भूधर प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह कि—तल मानमे दो भाग बढावे अर्थात् अठारह भाग करे। तथा भद्र के दोनो तरफ एक २ भाग की दूसरी नन्दी बनावे। और बाहर की दीवार दो भागकी रक्खे। बाकी सब पहले के अनुसार जाने। अब ऊर्ध्वमान सुनिये ॥४०–४१॥
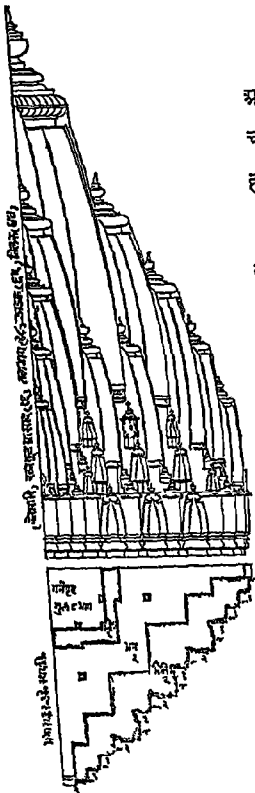
कर्णे द्विशृङ्गं तिलकं शिखरं सूर्यविस्तरम् ।
तिलके द्वे नन्दिकायां प्रत्यङ्गं तु द्विभागिकम् ॥४२॥

शृङ्गत्रयं प्रतिरथे षड्भागा चोरुमञ्जरी ।
तिलके द्वे पुनर्नन्द्यां-मुरुशृङ्गं युगांशकम् ॥४३॥

नन्द्यां च शृङ्गतिलके त्रिभागा चोरुमञ्जरी ।
द्विभागं भद्रशृङ्गं च अर्धे चार्धे च निर्गमः ॥४४॥

कोणे के ऊपर दो शृंग और एक तिलक चढावे । शिखर का विस्तार बारह भाग का रक्खे । कर्णनन्दी के ऊपर दो तिलक और दो भाग का प्रत्यग चढावे । प्रतिरथ के ऊपर तीन शृंग और नदी के ऊपर दो तिलक चढावे । भद्रनन्दी के ऊपर एक शृंग और एक तिलक चढावे । भद्र के ऊपर चार उरुशृंग चढावे, उनमें पहला उरुशृंग छ भाग, दूसरा चार भाग, तीसरा तीन भाग और चौथा दो भाग का रक्खे । ये उरुशृंगो का निर्गम विस्तार से आधा रक्खे ॥४२ से ४४॥

शृंग सख्या—कोणे ८, प्रत्यग ८, प्रतिरथे २४, भद्र नन्दी पर ८, भद्रे १६, एक शिखर, कुल ६५ शृंग और तिलक—कोणे ४, कोणी पर १६, प्ररथ नन्दी पर १६ और भद्र नन्दी पर ८, कुल ४४ तिलक ।

रत्नकूटस्तदा नाम शिवलिङ्गेषु कामदः ।
प्रशस्तः सर्वदेवेषु राज्ञां तु जयकारणम् ॥४५॥

इति रत्नकूटप्रासाद ॥१६॥

ऊपर कहे हुए स्वरूप वाला रत्नकूट प्रासाद शिवलिंग के लिये बनावे तो सब इच्छित फल को देने वाला है । सब देवो के लिये बनावे तो भी प्रशस्त है और राजाओ को विजय कराने वाला है ॥४५॥

१७–वैडूर्यप्रासाद—

शृङ्ग तृतीयं रेखोर्ध्वे कर्त्तव्य सर्वशोभनम् ।
वैडूर्यश्च तदा नाम कर्त्तव्य. सर्वदैवते ॥४६॥

इति वैडूर्यप्रासाद ॥१७॥

इस प्रासाद का तलमान और स्वरूप रत्नकूट प्रासाद के अनुसार है । विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर से तिलक निकाल करके उसके बदले एक तीसरा शृंग चढावे । इस

शोभायमान बनावे। यह वैडूर्य नाम का प्रासाद सब देवो के लिये बनाना चाहिये ॥४६॥

शृ गसख्या—कोने १२, प्रत्यग ८, प्रतिरथे २४, भद्रनदी पर ८, भद्रे १६ एक शिखर, एव कुल ६६ शृ ग। तिलक सख्या—कर्णनदी पर १६, प्रतिरथ नदी पर १६ और भद्रनन्दी पर ८, एव कुल ४० तिलक।

१८—पद्मरागप्रासाद—

तथैव तिलकं नन्द्यां शृङ्गयुग्मं तु संस्थितम् ।
पद्मरागस्तदा नाम सर्वदेवसुखावहः ॥४७॥

इति पद्मरागप्रासाद ॥१८॥

इस प्रासाद का मान और स्वरूप वैडूर्यप्रासाद की तरह समझे। विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर से तीसरा शृ ग हटा करके उसके बदले मे तिलक चढावे और भद्रनदी के ऊपर जो एक तिलक और एक शृ ग है, उसके बदले दो शृ ग रखे। ऐसा पद्मराग नाम का प्रासाद सब देवो के लिये सुख कारक है ॥४७॥

शृ गसख्या—कोणे ८, प्रत्यग ८, प्रतिरथे २४, भद्र नदी पर १६, भद्रे १६, एक शिखर, एव कुल ७३ शृ ग। तिलक सख्या—कोणे ४, कर्णनन्दी पर १६ प्रतिरथ नदी पर १६ एव कुल ३६ तिलक।

१६—वज्रकप्रासाद—

रेखोर्ध्वे च ततः शृंगं कर्त्तव्यं सर्वशोभनम् ।
वज्रकश्चेति नामासौ शक्रादिसुरवल्लभः ॥४८॥

इति वज्रकप्रासाद ॥१६॥

इस प्रासाद का मान और स्वरूप पद्मराग प्रासाद की तरह जाने। विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर से तिलक हटा करके उसके बदले मे शृ ग चढावे। यह वज्रक प्रासाद इन्द्र आदि देवो को प्रिय है ॥४८॥

शृ गसख्या—कोणे १२, प्रत्यग ८, प्रतिरथे २४, भद्रनदी पर १६, भद्रे १६, एक शिखर, कुल ७७ शृ ग। तिलक सख्या—कर्णनदी पर १६, प्रतिरथ नन्दी पर १६, कुल ३२ तिलक।

२०—मुकुटोज्ज्वलप्रासाद—

भक्ते त्रिंशतिधा क्षेत्रे द्विभागः कर्णविस्तरः ।
सार्धभागं भवेन्नन्दी कर्णवत्प्ररथस्तथा ॥४९॥

पुनर्नन्दी सार्धभागा भागा वै भद्रनन्दिका ।
वेदांशो भद्रविस्तार एकभागस्तु निर्गमः ॥५०॥
द्विभागा बाह्यभित्तिश्च द्विभागा च भ्रमन्तिका ।
तत्समा मध्यभित्तिश्च गर्भोऽष्टांशैः प्रकल्पितः ॥५१॥

इस प्रासाद की समचोरस भूमिका बीस भाग करे। उनमे से दो भाग का कोणा, डेढ भाग की नदी, दो भाग का प्ररथ, डेढ भाग की नदी, एक भाग की भद्रनन्दी और चार भाग का भद्र का विस्तार रक्खे। भद्र का निर्गम एक भाग का रक्खे। दो भाग बाहर की दीवार, दो भाग की भ्रमणी, दो भाग की गभारे की दीवार और आठ भाग का गभारा रक्खे ॥४६ से ५१॥

कर्णे द्विशृङ्गं तिलकं रेखा द्विसप्तविस्तरा ।
नन्द्या शृङ्गं च तिलकं प्रत्यङ्गं तदूर्ध्वतः ॥५२॥
शृङ्गत्रयं प्रतिकर्णे सप्तांशा चोरुमञ्जरी ।
नन्द्या शृङ्गं च तिलक-मुरुशृङ्गं षडंशकम् ॥५३॥
भद्रनन्द्या तथा शृङ्ग-मिषुभागोरुमञ्जरी ।
भद्रशृङ्गं द्विभागं स मुकुटोज्ज्वल उच्यते ॥५४॥

इति मुकुटोज्ज्वलप्रासाद ॥२०॥
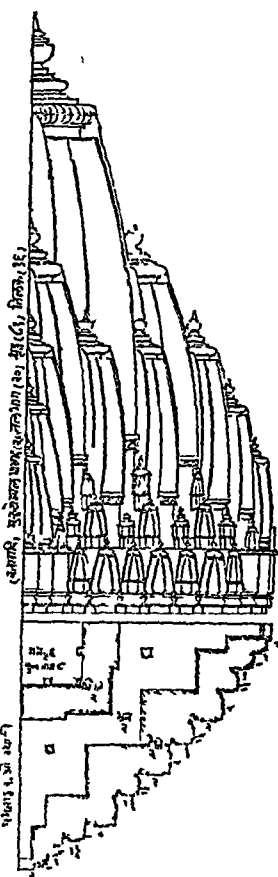
रेखा का विस्तार चौदह भाग का रक्खे। कोणे के ऊपर दो शृंग, और एक तिलक, कर्णनदी के ऊपर एक शृंग और एक तिलक, ऊपर प्रत्यंग, प्ररथ के ऊपर तीन शृंग, नदी के ऊपर एक शृंग और एक तिलक, भद्रनन्दी के ऊपर एक शृंग और भद्र के ऊपर चार शृंग चढावे। पहला उरुशृंग सात भाग का, दूसरा उरुशृंग छ भाग का, तीसरा उरुशृंग पांच भाग का और चौथा उरुशृंग दो भाग का रक्खें। ऐसा मुकुटोज्ज्वल प्रासाद है ॥५२ से ५४॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्रत्यंग ८, कर्णनन्दी पर ८, प्ररथे २४, नदी पर ८, भद्रनन्दी पर ८, भद्रे १६, एक शिखर, कुल ८१ शृंग। तिलक संख्या—कोणे ४, कर्णनन्दी पर ८, प्ररथनन्दी पर ८ कुल २० तिलक।

२१-ऐरावतप्रासाद—

रेखोर्ध्वे च ततः शृङ्गं कर्त्तव्यं सर्वकामदम् ।
ऐरावतस्तदा नाम शक्रादिसुरवल्लभः ॥५५॥

इत्यैरावतप्रासाद ॥२१॥

इसका तलमान और स्वरूप मुकुटोज्ज्वल प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर का तिलक हटाकर के उस जगह शृंग रक्खे। यह सब इच्छित फल देनेवाला है। ऐसा ऐरावतप्रासाद इन्द्रादि देवो के लिये प्रिय है ॥५५॥

शृंग सख्या—कोणे १२, नदी पर ८, प्रत्यग ८, प्ररथे २४, नदीपर ८, भद्रनन्दी पर ८, भद्रे १६, एक शिखर, कुल ८५ शृंग। तिलक सख्या—कर्णनन्दी पर ८, प्रति नन्दी पर ८, कुल १६ तिलक।

२२-राजहंसप्रासाद—

तथैव तिलक कुर्याद् भद्रकर्णे तु शृङ्गकम् ।
राजहंसः समाख्यातः कर्त्तव्यो ब्रह्ममन्दिरे ॥५६॥

इति राजहसप्रासाद ॥२२॥

इसका तलमान और स्वरूप ऐरावत प्रसाद के अनुसार जाने। विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर तीसरा शृंग के बदले मे एक तिलक चढावे, अर्थात् दो शृंग और एक तिलक चढावे। तथा भद्रनदो के ऊपर एक शृंग बढावे। ऐसा राजहस प्रासाद का स्वरूप है, वह ब्रह्मा के लिये बनावे ॥५३॥

शृंग सख्या—कोणे ८ प्रत्यग ८, कर्ण नन्दी पर ८, प्ररथे २४, प्ररथ नदी के ऊपर ८, भद्रनन्दी के ऊपर १६, भद्रे १६ और एक शिखर, कुल ८६ शृंग। तिलक सख्या—कोणे ४, कर्णनदो पर ८ प्ररथनदी पर ८, एव कुल २० तिलक।

२३-पक्षिराज (गरुड) प्रासाद—

रेखोर्ध्वे च ततः शृङ्गं कर्त्तव्यं सर्वकामदम् ।
पक्षिराजस्तदा नाम कर्त्तव्यः स श्रियः पतेः ॥५७॥

इति पक्षिराजप्रासाद ॥२३॥

इस प्रासाद का मान और स्वरूप राजहस प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह कि—कोणे के ऊपर का तिलक हटा कर के उसके बदले शृंग चढावे। ऐसा पक्षिराज प्रासाद विष्णु के लिये बनाना चाहिये ॥५७॥

शृंगसख्या—कोणे १२, प्रत्यग ८, कर्णनदी पर ८, प्ररथे २४, प्ररथनन्दी पर ८, भद्रनदी पर १६, भद्रे १६ और एक शिखर, एव कुल ९३ शृंग। तिलक सख्या कर्णनन्दी पर ८ और प्ररथ नन्दी पर ८, एव कुल १६ तिलक।

२४—वृषभप्रासाद—

द्वाविंशत्या विभक्ते च द्विभागा भित्तिका भवेत् ।
भ्रमणी तत्समा चैव पुनर्भित्तिश्च तत्समा ॥५८॥
शतमूलपदैर्गर्भः कर्त्तव्यो लक्षणान्वितः ।
कर्णप्रतिरथरथो-परथा द्विद्विविस्तराः ॥५९॥
भद्रनन्दी भवेद् भागं वेदांशो भद्रविस्तरः ।
भागो भद्रे निर्गमः स्या-च्छेषा वै पूर्वकल्पिताः ॥६०॥

यह वृषभ प्रासाद की समचोरस भूमिका बाईस भाग करे। उनमें से दो भाग की बाहर की दीवार, दो भाग की भ्रमणी, दो भाग की गर्भ की दीवार और दस भाग का गभारा रक्खे। बाहर के अंगों में—कोण, प्रतिरथ, रथ और उपरथ, ये प्रत्येक दो दो भाग के विस्तार वाले रक्खे। भद्रनन्दी एक भाग की रक्खे और पूरा भद्र चार भाग का रक्खे। भद्र का निर्गम एक भाग का रक्खे। बाकी के सब अंग समदल बनावे ॥५८ से ६०॥

कर्णे द्विशृङ्गं तिलकं शिखरं षोडशांशकम् ।
शृङ्गद्वयं प्रतिरथे प्रत्यङ्गं च त्रिभागिकम् ॥६१॥
रथे शृङ्गत्रयं कुर्या-च्छृङ्गोर्ध्वे चोरुमञ्जरी ।
द्वे द्वे शृङ्गे उपरथे उरुशृङ्गं षडंशकम् ॥६२॥
भद्रनन्द्यां भवेच्छृङ्गं वेदांशा चोरुमञ्जरी ।
द्विभागं भद्रशृङ्गं च कर्त्तव्यं च मनोरमम् ॥६३॥
सप्तनवत्यण्डकयुक् कर्त्तव्यो लक्षणान्वितः ।
वृषभो नाम विख्यात ईश्वरस्य सदा प्रियः ॥६४॥

इति वृषभप्रासादः ॥२४॥

शिखर का विस्तार सोलह भाग का करे। कोणों के ऊपर दो शृंग और एक तिलक, प्ररथ ऊपर दो शृंग, उसके ऊपर तीन तीन भाग का प्रत्यंग, रथ के ऊपर तीन शृंग, उपरथ के ऊपर दो दो शृंग, भद्रनन्दी के ऊपर एक शृंग और भद्र के ऊपर चार उरुशृंग रक्खे। पहला उरुशृंग आठ भाग का, दूसरा छह भाग का, तीसरा चार भाग का और चौथा दो भाग का रक्खे। सत्तानवे शृंग वाला और सब लक्षण वाला, ऐसा यह वृषभ नाम का प्रासाद ईश्वर को सर्वदा प्रिय है ॥६१ से ६४॥

शृंग संख्या—कोणे ८, प्रत्यंग ८, प्ररथे १६ रथे २४, उपरथे १६, भद्रनन्दी पर ८ भद्रे १६ और एक शिखर, सब कुल ९७ शृंग। तिलक संख्या—४ कोण पर।

२५-मेरुप्रासाद—

कर्णे शृङ्गत्रयं चैव एकोत्तरशताण्डकः ।
मेरुश्चापि समाख्यातः कर्त्तव्यश्च त्रिमूर्त्तिके ॥६५॥

यह मेरु प्रासाद का मान और स्वरूप वृषभ प्रासाद के अनुसार जाने। विशेप यह है कि—वृपभ प्रासाद के कोणो के ऊपर का तिलक हटा कर के उसके बदले शृग चढावे। यह एक सौ एक शृग वाला मेरु प्रासाद ब्रह्मा विष्णु और महेश के लिये बनावे ॥६५॥

शृग सख्या—कोणे १२, प्रत्यग ८, प्ररथे १६, रथे २४, उपरथे १६, भद्रनन्दी के ऊपर ८, भद्रे १६, और एक शिखर, एव कुल १०१ शृग।

मेरुप्रासाद की प्रदक्षिणा का फल—

सर्वस्य हेममेरोश्च यत्पुण्यं त्रिप्रदक्षिणैः ।
कृते शैलेष्टकाभिश्च तत्पुण्याल्लभतेऽधिकम् ॥६६॥

सम्पूर्ण सुवर्णमय मेरु की तीन प्रदक्षिणा करने से जो पुण्य होता है, उस पुण्य से भी अधिक पुण्य पाषाण अथवा ईट के बने हुवे मेरु प्रासाद की प्रदक्षिणा करने से होता है ॥६६॥

हरो हिरण्यगर्भश्च हरिर्दिनकरस्तथा ।
एते देवाः स्थिता मेरौ नान्येषा स कदाचन ॥६७॥

इति श्रीसूत्रसन्तानगुणकीर्त्तिप्रकाशप्रद्योतकारे श्रीभुवनदेवाचार्यो-
क्तापराजितपृच्छायां केसर्यादिसान्धारप्रासादनिर्णयाधिकारो
नामैकोनषष्ट्यु त्तरशततमं सूत्रम् ॥

महादेव, ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य, इन देवो को मेरु प्रासाद मे प्रतिष्ठित किये जाते हैं। अन्य दूसरे देवो को कभी भी उसमे प्रतिष्ठित नही करना चाहिये ॥६७॥

इति पडित भगवानदास जैन अनुवादित केसरी आदि
पचीस साधार प्राशद निर्णयाधिकार समाप्त।

परिशिष्ट नं. २

अथ जिनेन्द्रप्रासादाध्यायः ।

जय उवाच—

शृणु तात ! महादेव ! यन्मया परिपृच्छ्यते ।
प्रासादांश्च जिनेन्द्राणां कथयसि किं मां प्रभो ! ॥१॥

हे महादेव ! पिता मैंने आपको जिनेन्द्र के प्रासादो का वर्णन करने का कहा था, उसको हे भगवन् ! आप सविस्तार कहेंगे ? ॥१॥

किं तलं किञ्च शिखरं किं द्विपञ्चाशदुत्तमाः ।
समोसरणं किं तात ! किं स्यादष्टापद हि वद् ॥२॥
महीधरो मुनिवरो द्विधारिणी सुशोभिता ।

हे तात ! उत्तम बावन जिनालय किस प्रकार के है ? तथा उनके तथा शिखरो की रचना कैसी है ? समवसरण, अष्टापद, महीधर, मुनिवर और शोभायमान द्विधारिणी प्रासादों की रचना कैसी है ? उसका आप वर्णन करे ॥२॥

श्रीविश्वकर्मोवाच—

शृणु वत्स ! महाप्राज्ञ यत्त्वया परिपृच्छ्यते ।
प्रासादाश्च जिनेन्द्राणां कथयाम्यहं तच्छृणु ॥३॥

श्री विश्वकर्मा अपने जयनाम के पुत्र को सम्बोधन करके कहते है कि—हे महा बुद्धिमान् पुत्र ! तुमने जिनेन्द्रो के प्रासादो का वर्णन के लिये पूछा, उसका विस्तार पूर्वक कहता हूँ, सुनो ॥३॥

प्रासादमध्ये मेरो भद्रप्रासादनागराः ।
अन्तरा द्राविडाश्चैव महीधरा ललिनाम्तथा ॥४॥

उत्तम जाति के प्रासादों मे मेरुप्रासाद, नागर जाति के भद्रप्रासाद, अन्तरप्रासाद, द्राविड़ प्रासाद, महीधर प्रासाद और लतिन जाति का प्रासाद, ये उत्तम जाति के प्रासाद है ॥४॥

तलनिर्माण—

प्रासाददीर्घतो व्यासो भित्तिबाह्ये सुरालये ।
षोडशांशैर्हरेद् भागं शेषं च द्विगुणं भवेत् ॥५॥
प्रथमे नवमे चैव द्वितीये चतुरो भवेत् ।
अयं विधिः प्रकर्त्तव्यो भागं च द्वित्र्यंशं भवेत् ॥६॥
तत्र युक्तिः प्रकर्त्तव्यो प्रासादे सर्वनामतः ।
शिवमुखे मया श्रुतं भाषितं विश्वकर्मणा ॥७॥

मण्डोवर के बाहर के भाग तक प्रासाद की लम्बाई और चौडाई का गुणाकार करके उसको सोलह से भाग दे, जो शेष रहे उसको दुगुणा करना · · ·· ।

प्रथमा विभक्ति ।

१–कमलभूषण (ऋषभजिनवल्लभ) प्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वात्रिंशत्पदभाजिते ।
कर्णभागत्रयं कार्यं प्रतिकर्णस्तथैव च ॥८॥
उपरथस्त्रिभागश्च भद्रार्धं वेदभागिकम् ।
नन्दिका कर्णिका चैव चैकभागा व्यवस्थिता ॥९॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका बत्तीस भाग करे, उनमें से तीन भाग का कोण, तीन भाग का प्रतिरथ, तीन भाग का उपरथ और चार भाग का भद्रार्ध रक्खे। कोणिका और नन्दिका एक २ भाग की रक्खे ॥८-९॥

कर्णे च क्रमचत्वारि प्रतिकर्णे क्रमत्रयम् ।
उपरथे द्वयं ज्ञेयं कर्णिकायां क्रमद्वयम् ॥१०॥
विंशतिरुरुशृङ्गाणि प्रत्यङ्गानि च षोडश ।
कर्णे च केसरी दद्यान्नन्दनं नन्दशालिकम् ॥११॥
प्रथमक्रमो नन्दीश ऊर्ध्वे तिलकशोभनम् ।
कमलभूषणनामोऽयं ऋषभजिनवल्लभः ॥१२॥

इति ऋषभजिनवल्लभ कमलभूषणप्रासाद ॥१॥
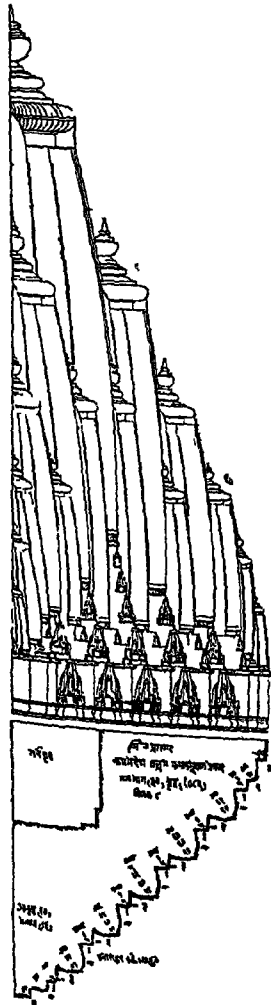
कोणे के ऊपर चार[1]क्रम, प्रतिकर्ण के ऊपर तीन क्रम, उपरथ और नन्दिओ के ऊपर दो २ क्रम चढावे चारो दिशा के भद्र के ऊपर कुल बीस उरुशृंग चढावे। तथा सोलह प्रत्यंग कोने पर चढावे। कोणा के ऊपर नीचे से पहला क्रम नन्दिश, दूसरा नन्दशालिक, तीसरा नदन और चौथा केसरी क्रम चढावे और उसके ऊपर एक शोभायमान तिलक चढावे। ऐसा ऋषभजिन को वल्लभ कमलभूषण नामका प्रासाद है ॥१० से १२॥
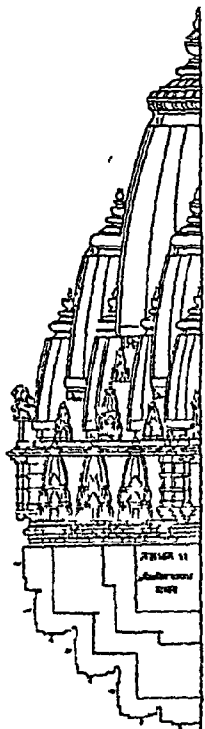
शृंगसंख्या—कोणे २२४, प्रतिकर्णे २८०, उपरथे १४४, नन्दिओ के ऊपर ४३२, भद्रे २०, प्रत्यंग १६, एक शिखर, कुल १११७ शृंग और चार तिलक कोणे के ऊपर।

विभक्ति दूसरी।

२–अजितजिनवल्लभ–कामदायकप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वादशपदभाजिते।
कर्णभागद्वयं कार्यं प्रतिकर्णस्तथैव च ॥१३॥
[2]भद्रार्धं च द्विभागेन चतुर्दिक्षु व्यवस्थितम्।
कर्णे क्रमत्रय कार्यं प्रतिकर्णे क्रमद्वयम् ॥१४॥
अष्टौ चैवोरुशृङ्गाणि ह्यष्टौ प्रत्यङ्गानि च।
कर्णे च केसरीं दद्यात् सर्वतोभद्रमेव च ॥१५॥
नन्दनमजिते देयं चतुष्कर्णेषु शोभितम्।
कामदायकप्रासादो ह्यजितजिनवल्लभः ॥१६॥

इति अजितजिनवल्लभ कामदायकप्रासाद ॥२॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका बारह भाग करे, उनमें से दो भाग का कोण, दो भाग का प्रतिकर्ण और दो भाग का भद्रार्ध रखे। कोणे के ऊपर तीन क्रम, प्रतिकर्ण के ऊपर दो क्रम,

---

१ इस प्रकरण में किसी श्लोक में 'क्रम' और किसी श्लोक में 'क्रम' ऐसे दो प्रकार के शब्दों का प्रयोग [illegible] प्राचीन प्रतियों में देखने में आता है। [illegible] क्रम के स्थान पर [illegible] शब्द का प्रयोग [illegible] किया है। बाकी दोनों शब्द ठीक हैं। [illegible] शृंगों का [illegible] और [illegible] (क्रम) [illegible] शृंगों का समूह [illegible] होता है। [illegible] एक काम [illegible] है।

२ 'भद्रार्धं [illegible]' पाठान्तर।

आठ उरुशृंग और आठ प्रत्यग कोने पर चढावे। कोणे के ऊपर केसरी, सर्वतोभद्र और नंदन ये तीन क्रम चढ़ावे। ऐसा अजितजिनको वल्लभ कामदायक नाम का प्रासाद है ॥१३ से १६॥

शृंगसख्या—कोणे १०८, प्रतिकर्णे ११२, भद्रे ८, प्रत्यग ८ और एक शिखर, कुल २३७ शृंग।
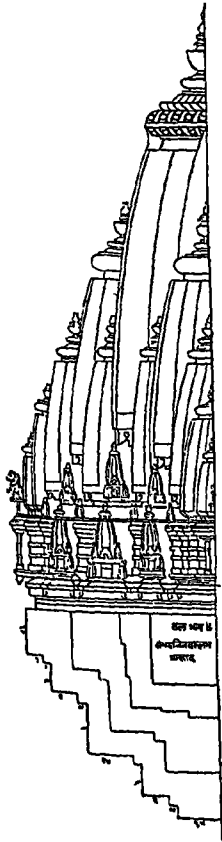
तीसरी विभक्ति।

३-संभवजिनवल्लभ-रत्नकोटिप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे नवभागविभाजिते।
भद्रार्धं सार्धभागेन चैकभागः प्रतिरथः ॥१७॥
कर्णिका नन्दिका पादा सार्धकर्णो विचक्षण!।
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं प्रतिकर्णे तथैव च ॥१८॥
[1]केसरीसर्वतोभद्र-क्रमद्वयं व्यवस्थितम्।
कर्णिकानन्दिकयोश्च [2]शृङ्गमेकैकं कारयेत् ॥१९॥
षोडश उरुशृङ्गाणि चाष्टौ प्रत्यङ्गानि च।
रत्नकोटिश्च नामायं प्रासादः संभवे जिने ॥२०॥

इति सभवजिनवल्लभो रत्नकोटिप्रासाद ॥३॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका नव भाग करे। उनमे से डेढ भाग का भद्रार्ध, एक भाग का प्रतिरथ, कर्णी और नन्दिका पाव पाव भाग की और कोण डेढ भाग का रक्खे। कोणे के ऊपर और प्रतिकर्ण के ऊपर दो दो क्रम केसरी और सर्वतोभद्र चढावे। कर्णी और नन्दिका के ऊपर एक एक शृग चढावे। चारो दिशा के भद्र के उपर सोलह उरुशृ ग और आठ प्रत्यग कोने पर चढावे। ऐसा सभवजिन को वल्लभ रत्नकोटि नाम का प्रासाद है। ॥१७ से २०॥

शृंगसंख्या-कोणे ५६, प्रतिकर्णे ११२, कर्णीपर ८, नदीपर ८, उरुशृंग १६, प्रत्यग ८, और एक शिखर, कुल २०९ शृग।

---

१. 'प्रथमक्रमकेसरी च द्वितीय च श्रीवत्सकम्'

२. शृङ्गद्वय च'

४-अमृतोद्भवप्रासाद —

तद्रूपे तत्प्रमाणे च रथे कर्णे तिलकं न्यसेत् ।
अमृतोद्भवनामोऽयं सर्वदेवेभ्यः कारयेत् ॥२१॥

इत्यमृतोद्भवप्रासाद ॥४॥

तल और स्वरूप रत्नकोटि प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह है कि-कोण और प्रतिरथ के ऊपर एक एक तिलक भी चढावे। जिससे अमृतोद्भव नाम का प्रासाद होता है। यह सब देवो के लिये बनावे। ॥२१॥

शृंगसख्या-पूर्ववत् २०६। तिलक सख्या-कोणे ४ प्रतिकर्णे ८ कुल १२।

विभक्ति चौथी।

५-अभिनन्दनजिनवल्लभ-क्षितिभूषणप्रासाद —

चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे षोडशपदभाजिते ।
कर्णभागद्वयं कार्यं प्रतिकर्णस्तथैव च ॥२२॥
उपरथो द्विभागश्च भद्रार्धं द्वयमेव च ।
कर्णे च क्रमचत्वारि प्रतिकर्णे क्रमत्रयम् ॥२३॥
उपरथे क्रमद्वौ च ऊर्ध्वे तिलकशोभितम् ।
द्वादश उरुशृङ्गाणि प्रत्यङ्गानि च षोडश ॥२४॥
क्षितिभूषणनामोऽयं प्रासादश्चाभिनन्दनः ।

इत्यभिनन्दनजिनवल्लभ क्षितिभूषणप्रासाद ॥५॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका सोलह भाग करें। उनमें से दो भाग का कोण, दो भाग का प्रतिरथ, दो भाग का उपरथ और दो भाग का भद्रार्ध बनावे। कोणे के ऊपर चार क्रम, प्रतिरथ के ऊपर तीन क्रम, उपरथ के ऊपर दो क्रम और एक तिलक चढावे। चारों तरफ के भद्र के ऊपर बारह उरुशृंग और सोलह प्रत्यंग चढावे। ऐसा अभिनंदन जिन वल्लभ क्षितिभूषण नाम का प्रासाद है ॥२२ से २४॥

शृंगसंख्या—कोणे १७६, प्रतिरथे २१०, उपरथ १२८, भद्रे १२, प्रत्यंग १६ एक शिखर, कुल ५४३ शृंग। तिलक ८ उपरथे।
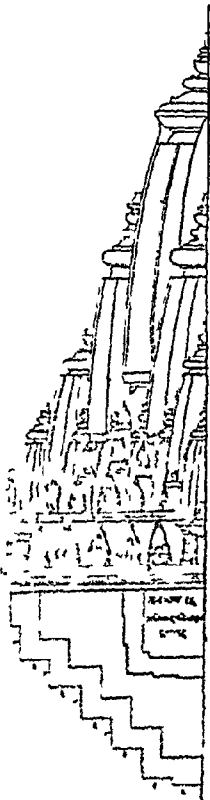
विभक्ति पांचवी।

६–सुमतिजिनवल्लभ प्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ॥२५॥
कर्णो द्विभागिको ज्ञेयः प्रतिकर्णस्तथैव च।
निर्गमस्तत्समो ज्ञेयो नन्दिका भागविश्रुता ॥२६॥
भद्रार्धं च द्विभागेन कर्त्तव्य च चतुर्दिशि।
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं प्रतिकर्णे तथैव च ॥२७॥
भद्रे चैवोरुचत्वारि तथाष्टौ प्रत्यङ्गानि च।
नन्दिकायां शृङ्गकूटं सुमतिजिननामतः ॥२८॥

इति सुमतिजिनवल्लभप्रासाद. ॥६॥

समचोरस भूमिका चौदह भाग करे, उनमे से दो भाग का कोना, दो भाग का प्रतिरथ, एक भाग की नन्दी और दो भाग का भद्रार्ध बनावे। कोना और प्रतिरथ का निर्गम समदल रक्खे। कोने के ऊपर दो क्रम, प्रतिरथ के ऊपर दो क्रम, प्रत्येक भद्र के ऊपर चार उरुशृ ग, आठ प्रत्यगशृ ग और नन्दी के ऊपर एक श्रीवत्सशृ ग तथा एक कूट चढावे। यह सुमतिजिन नाम का प्रासाद है ॥२५ से २८॥

शृ ग सख्या–कोने ५६, प्रतिरथे ११२, भद्रे १६, प्रत्यग, ८, नदी के ऊपर ८, एक शिखर कुल २०१ शृ ग। चार कूट नदी पर।

विभक्ति छठी।

७–पद्मप्रभजिन प्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे विंशधा प्रतिभाजिते।
कार्णो भागद्वयं कार्यः प्रतिकर्णस्तथैव च ॥२९॥
कर्णिका नन्दिका भागा भद्रार्धं चतुर्भागकम्।
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं प्रतिकर्णे तथैव च ॥३०॥
केसरी सर्वतोभद्रं क्रमद्वयं व्यवस्थितम्।
कर्णिकायां शृङ्गकूटं नन्दिकायां तथैव च ॥३१॥
भद्रे चैवोरुचत्वारि ह्यष्टौ प्रत्यङ्गानि च।
पद्मवल्लभनामोऽयं जिनेन्द्रे पद्मनायके ॥३२॥

इति पद्मप्रभजिनप्रासाद ॥७॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का बीस भाग करे। उनमें से दो भाग का कोना, दो भाग का प्रतिरथ, कर्णिका एक भाग, नदी एक भाग और भद्रार्ध चार भाग का रक्खे। कोना और प्रतिरथ के ऊपर केसरी और सर्वतोभद्र ये दो क्रम चढावे। कर्णिका और नदी के ऊपर एक एक शृंग और एक एक कूट चढावे, यह पद्मप्रभजिनदेव को वल्लभ ऐसा पद्मवल्लभ नाम का प्रासाद है ॥२६ से ३२॥

शृंगसंख्या—कोने ५६, प्रतिरथे ११२, कर्णिका पर ८, नदी पर ८, भद्रे १६ और प्रत्यग ८ एक शिखर कुल २०६ शृंग और आठ कूट–चार कर्णिका और चार नदी पर।

८–पद्मरागप्रासाद—

पद्मवल्लभसंस्थाने कर्त्तव्यः पद्मरागकः।
रथोर्ध्वे तिलकं दद्यात् स्वरूपो लक्षणान्वितः ॥३३॥

इति पद्मरागप्रासाद ॥८॥

इस प्रासाद का मान और स्वरूप ऊपर के पद्मवल्लभ प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि–प्ररथ के ऊपर एक एक तिलक भी चढावे, जिसे पद्मराग नाम का प्रासाद होता है ॥३३॥

९–पुष्टिवर्द्धनप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्त्तव्यः कर्णोर्ध्वे तिलकं न्यसेत्।
पुष्टिवर्द्धननामोऽयं तुष्टिं पुष्टिं विवर्धयेत् ॥३४॥

इति पुष्टिवर्द्धन प्रासाद ॥९॥

इस प्रासाद का मान और स्वरूप पद्मराग प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह है कि कोणे के ऊपर एक एक तिलक भी चढाने से तुष्टि पुष्टि को बढाने वाला पुष्टिवर्द्धन नाम का प्रासाद होता है ॥३४॥

विभक्ति सातवीं।

१०–सुपार्श्वजिनवल्लभप्रासाद—

दशभागीकृते क्षेत्रे कर्णोऽस्य च द्विभागिकः।
प्रतिकर्णः सार्धभागो निर्गमे तत्समं भवेत् ॥३५॥
भद्रार्धं च सार्धभागं कपिले भद्रमानयोः।
निर्गमं पदमानेन चतुर्दिक्षु च योजयेत् ॥३६॥
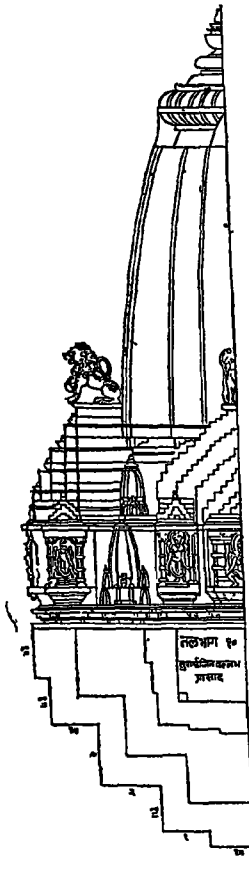
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं रथे भद्रे तथोद्गमः ।
सुपार्श्वनामो विज्ञेयः गृहराजः सुखावहः ॥३७॥

इति सुपार्श्वजिनवल्लभप्रासाद ॥१०॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का दस भाग करे। उन मे से दो भाग का कोण, डेढ भाग का प्रतिकर्ण बनावे । ये दोनो अंग समचोरस निकलता रक्खे। भद्रार्ध डेढ भाग का रक्खे, उसके दोनो बगल मे दो कपिला भद्र के मान की बनावे। भद्र का निकाला एक भाग का रक्खे । कोणो के ऊपर दो क्रम चढावे, तथा प्रतिकर्ण और भद्र के ऊपर डोढीया (उद्गम) बनावे। ऐसा प्रासादराज सुपार्श्वनाम का है, यह सुख देने वाला है ॥ ३५ से ३७ ॥

शृंगसख्या-कोणे ५६, एक शिखर कुल ५७ शृंग।

११-श्रीवल्लभप्रासाद—

रथोर्ध्वे शृङ्गमेकं तु भद्रे चैवं चतुर्दिशि ।
श्रीवल्लभस्तदा नाम प्रासादो जिनवल्लभः ॥३८॥

इति श्रीवल्लभप्रासाद ॥११॥

सुपार्श्वजिन वल्लभ प्रासाद के प्रतिकर्णो के ऊपर एक एक शृंग और भद्र के ऊपर एक एक उरुशृंग चढाने से श्री वल्लभनाम का प्रासाद होता है, यह जिन देव को प्रिय है। ॥३८॥

शृंग सख्या-कोणे ५६, प्रतिकोणे ८, भद्रे ४, एक शिखर, कुल ६९ शृंग।

विभक्ति आठवीं।

१२-चन्द्रप्रभवल्लभ शीतलप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वात्रिंशत्पदभाजिते ।
पञ्चभागो भवेत् कर्णः प्रतिकर्णस्तथैव च ॥३९॥
भद्रार्धं च चतुर्भागं नन्दिका कर्णिका पदा ।
समदलं च कर्त्तव्यं चतुर्दिक्षु व्यवस्थितम् ॥४०॥

श्रीवत्सं केसरीं चैव सर्वतोभद्रमेव च ।
कर्णे चैव प्रदातव्यं रथे चैवं तु तत्समम् ॥४१॥
नन्दिका कर्णिकाया च द्वे द्वे शृङ्गं च विन्यसेत् ।
भद्रे चैवोरश्चत्वारि प्रत्यङ्ग जिनमेव च ॥४२॥
शीतलो नाम विज्ञेयः सुश्रियं च विवर्धकः ।
चन्द्रप्रभस्य प्रासादो विज्ञेयश्च सुखावहः ॥४३॥

इति चन्द्रप्रभवल्लभ. शीतलप्रासाद ॥१२॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का बत्तीस भाग करे। उन मे से पाच भाग का कोण, पाच भाग का प्रतिकर्ण, चार भाग का भद्रार्ध, कोणी और नन्दिका एक एक भाग की रक्खें। ये सब अंग समचोरस बनावें। कोण और उपरथ के ऊपर श्रीवत्स, केसरी और सर्वतोभद्र शृंग चढावे। कोणी और नन्दिका के ऊपर दो दो श्रीवत्सशृंग, भद्र के ऊपर चार चार उरुशृंग चढावें और चोवीस प्रत्यग चढावे। ऐसा शीतल नाम का प्रासाद लक्ष्मी को बढाने वाला है और चन्द्रप्रभजिन को प्रिय है और सुख कारक है ॥३८ से ४३॥

शृंगसंख्या–कोणे ६० प्रतिकर्णे १२०, कोणीपर १६, नदी पर १६, भद्रे १६, प्रत्यग २४, एक शिखर, कुल २५३ शृंग।

१३–श्रीचन्द्र प्रासाद––

तद्रूपे च प्रकर्त्तव्यो रथोर्ध्वे तिलकं न्यसेत् ।
श्रीचन्द्रो नाम विज्ञेयः सुरराजसुखावहः ॥४४॥

इति श्रीचन्द्रप्रासाद ॥१३॥

शीतलप्रासाद के प्रतिकर्ण के ऊपर एक एक तिलक भी चढावे तो श्रीचन्द्र नाम का प्रासाद होता है, यह इन्द्र को सुखकारक है ॥४४॥

शृंग संख्या पूर्ववत् २५३ और तिलक ८ प्रतिरथ।

१४–हितुराजप्रासाद––

नन्दिका कर्णिकायां च ऊर्ध्वे तिलकं शोभनम् ।
हितुराजस्तदा नाम सुविधिजिनवल्लभः ॥४५॥

इति सुविधिजिनवल्लभ हितुराजप्रासाद ॥१४॥

ऊपर के श्रीचन्द्रप्रासाद की कोणी और नन्दी के ऊपर एक २ तिलक चढाने से सुविधि-जिनवल्लभ ऐसा हितुराज नाम का प्रासाद होता है ॥४५॥

शृगसख्या पूर्ववत् २५३। तिलक-कोणी पर ८, प्रतिकर्ण पर ८, नन्दी पर ८, कुल २४।

विभक्ति नववी ।

१५-पुष्पदंतप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।
भद्रार्धं त्रिपदं वत्स ! रथौ कर्णश्च तत्समः ॥४६॥
निर्गमस्तत्प्रमाणेन सर्वशोभासमन्वितम् ।
रथे कर्णे तथा भद्रे द्वे शृङ्गे तिलकं न्यसेत् ॥४७॥
पुष्पदन्तस्तदा नाम सुविधिजिनवल्लभः ।
कार्यः सुविधिनाथाय धर्मार्थकाममोक्षदः ॥४८॥

इति पुष्पदतप्रासाद ॥१५॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का चौबीस भाग करे, इन मे से कोण, प्रतिरथ, उपरथ और भद्रार्ध, ये सब तोन तीन भाग का रक्खे। और निर्गम मे ये सब समदल रक्खे। भद्र के ऊपर दो उरुशृग चढावे। कोना, प्रतिरथ और उपरथ ये तीनो के ऊपर दो दो शृग और एक एक तिलक चढाने से पुष्पदत नाम का प्रासाद होता है। यह सुविधि जिन को वल्लभ है। ऐसा प्रासाद बनाने से धर्म अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥४६ से ४८॥

शृग सख्या-कोणे ८, प्रतिकर्णे १६ उपरथे १६, भद्रे ८ एक शिखर कुल ४९ शृग। तिलक सख्या-कोणे ४ प्रतिकर्णे ८, उपरथे ८ कुल २० तिलक।

विभक्ति दसवी ।

१६-शीतलजिनप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।
कर्णश्चैव समाख्यात-श्चतुर्भागश्च विस्तृतः ॥४९॥
प्रतिरथस्त्रयभागो भद्रार्धं भूतभागिकम् ।
रथे कर्णे च शृङ्गैकं तदूर्ध्वे तिलकं द्वयम् ॥५०॥

द्वादश उरःश्रृङ्गाणि प्रत्यङ्गानि ततोऽष्टभिः ।
शीतलश्च तदा नाम प्रासादो जिनवल्लभः ॥५१॥

इति शीतलजिनप्रासाद ॥१६॥

प्रासाद की सम चोरस भूमिका चौवीस भाग करे। उनमे से चार भाग का कोण, तीन भाग का प्रतिरथ और पाच भाग का भद्रार्ध बनावे। कोण और प्रतिकर्ण के ऊपर एक एक श्रृंग और दो दो तिलक, चारो भद्र के उपर कुल बारह उरुश्रृंग, तथा आठ प्रत्यग चढावे। ऐसा शीतल नाम का प्रासाद शीतल जिनको प्रिय है ॥४६ से ५१॥

श्रृंगसख्या—कोणे ४, प्रतिकर्णे ८, भद्रे १२, प्रत्यग ८, एक शिखर, कुल ३३ श्रृंग। तिलक—कोणे ८, प्रतिकर्णे १६, कुल २४ तिलक।

१७ कीर्त्तिदायकप्रासाद—

तद्रूपे तत्प्रमाणे च कर्त्तव्यः पूर्वमानतः ।
कर्णोर्ध्वे च द्वयं श्रृङ्गे प्रासादः कीर्त्तिदायकः ॥५२॥

इति कीर्त्तिदायकप्रासादः ॥१७॥

ऊपर के शीतल जिन प्रासाद के कोणे के ऊपर का एक तिलक कम करके उसके बदले श्रृंग चढाने से कीर्त्तिदायक नाम का प्रासाद होता है ॥५२॥

श्रृंगसख्या—कोणे ८, प्रतिकर्णे ८, भद्रे १२, प्रत्यग ८, एक शिखर, कुल ३७ श्रृंग। तिलक—कोणे ४, प्रतिकर्णे १६।

१८—मनोहरप्रासाद—

[1]कर्णे सप्त प्रतिकर्णे पञ्च मनोहरदायकः ।
तन्मानं च प्रकर्तव्य. स्वरूपो लक्षणान्वितः ॥५३॥

इति मनोहरप्रासादः ॥१८॥

ऊपर के प्रासाद के अनुसार मान और स्वरूप जानें। विशेष यह है कि कोण के ऊपर एक केसरी क्रम और दो श्रीवत्सश्रृंग, तथा प्रतिकर्ण के ऊपर एक केसरी क्रम चढाने से मनोहर नाम का प्रासाद होता है ॥५३॥

श्रृंगसख्या—कोणे २८, प्रतिकर्णे ४०, भद्रे १२, प्रत्यग ८, एक शिखर, कुल [illegible] श्रृंग।

१ 'कर्णे नन्द प्रतिकर्णे [illegible] मनोहरः ।' [illegible]

विभक्ति ग्यारहवी ।

१६–श्रेयांसजिनवल्लभप्रासाद–

[1]षोडशांशः प्रकर्त्तव्यः कर्णस्त्रयं रथस्त्रयम् ।
भद्रार्धं [2]द्विपदं वत्स ! चतुर्दिक्षु नियोजयेत् ॥५४॥
निर्गमं पद्मानेन स्वहस्ताङ्गुलमानतः ।
शृङ्गं च तिलकं कर्णे रथे भद्रे चैवोद्गमः ॥५५॥
श्रेयांसवल्लभो नाम प्रासादश्च मनोहरः ।

इति श्रेयासजिनवल्लभप्रासाद ॥१६॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका सोलह भाग करे। उनमे तीन भाग का कोण, तीन भाग का प्रतिकर्ण और दो भाग का भद्रार्ध बनावे। इसके अगो का निकाला प्रासाद के पद के अनुसार हस्तागुल मान का रक्खे। अर्थात् जितने हाथ का प्रासाद हो, उतने अगुल निकलता रक्खें। कोण और प्रतिकोण के ऊपर एक एक शृ ग और एक एक तिलक चढावे। तथा भद्र के ऊपर उद्गम बनावे। ऐसा श्रेयास जिनवल्लभ नाम का सुदर प्रासाद है ॥५४ से ५५॥

शृगसख्या–कोणे ४, प्रतिकोणे ८, एक शिखर, कुल १३ शृग। तिलक सख्या–कोणे ४ प्रतिकर्णे ८।

२०–सुकुलप्रासाद–

तद्रूपे तत्प्रमाणे च शृङ्गचत्वारि भद्रके ॥५६॥
सुकुलो नाम विज्ञेयो प्रासादो जिनवल्लभः ।

इति सुकुलप्रासाद ॥२०॥

मान और प्रमाण ऊपर के प्रासाद के अनुसार जाने। विशेष यह है कि–भद्र के ऊपर एक एक शृ ग चढाने से सुकुल नाम का प्रासाद होता है। वह जिन देव को प्रिय है ॥५६॥

शृ ग सख्या–कर्णे ४, प्रतिकर्णे ८ भद्रे ४, एक शिखर, कुल १७। तिलक १२।

२१–कुलनंदनप्रासाद–

उरःशृङ्गाष्टकं कुर्यात् प्रासादः कुलनन्दनः ॥५७॥

श्रेयासजिनवल्लभ प्रासाद के भद्र के ऊपर आठ उरुशृ ग चढाने से कुलनन्दन नाम का प्रासाद होता है ॥५७॥

शृ ग सख्या–कोणे ४, रथे ८, भद्रे ८, एक शिखर, कुल २१ शृ ग। तिलक १२

१ 'अष्टादशाश।' २ 'त्रिपद।'

विभक्ति बारहवीं।

२२–वासुपूज्यजिनप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वाविंशपदभाजिते ।
पदानां तु चतुर्भागाः कर्णो चैवं तु कारयेत् ॥५८॥
कोणिका पदमानेन प्रतिरथस्त्रिभागकः ।
नन्दिका भागमानेन भद्रार्धं च द्विभागिकम् ॥५९॥
कर्णे क्रमत्रयं कार्यं प्रतिकर्णे क्रमद्वयम् ।
त्रिकूटं नन्दीकर्णे च ऊर्ध्वे तिलकशोभनम् ॥६०॥
भद्रे भृङ्गत्रयं कार्य–मष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।
वासुपूज्यस्तदा नाम वासुपूज्यस्य वल्लभः ॥६१॥

इति वासुपूज्यजिनप्रासादः ॥२२॥

समचोरस भूमि के बाईस भाग करे। उन मे चार भाग का कोण, कर्णनदी एक भाग, तीन भाग का प्रतिरथ, भद्रनन्दी एक भाग और दो भाग का भद्रार्ध रखे। कोणे के ऊपर तीन क्रम, प्रतिकर्ण के ऊपर दो क्रम, कोणी और नदी के ऊपर त्रिकूट शृंग और उनके ऊपर तिलक, भद्र के ऊपर तीन तीन उरुशृंग और आठ प्रत्यंग चढावे। ऐसा वासुपूज्य नामका प्रासाद वासुपूज्य जिन को प्रिय है ॥५८ से ६१॥

शृंग संख्या—कोणे १०८, प्रतिरथे ११२, कर्णनदी पर ८, भद्रनदी पर ८, भद्रे १२ प्रत्यंग ८, एक शिखर कुल २५७ शृंग। तिलक–१६ दोनों नदी के ऊपर।

२३–रत्नसंजयप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्त्तव्यः कर्णोर्ध्वे तिलकं न्यसेत् ।
रत्नसंजयनामोऽयं गृहराजसुखावहः ॥६२॥

इति रत्नसंजयप्रासादः ॥२३॥

वासुपूज्यप्रासाद के कोणे के क्रम के ऊपर एक तिलक चढाने से रत्नसंजय नाम का प्रासाद होता है। यह प्रासाद राजसुख कारक है ॥६२॥

शृंग संख्या पूर्ववत् २५७ और तिलक २०–कोणे ४, दोनों नदी पर १६।

२४–धर्मदप्रासाद—

तद्रूपे तत्प्रनाले च चतुर्थे मुख्यशृङ्गकम् ।
धर्मदस्तस्य नामाय पुरे वै धर्मवर्धनः ॥६३॥

इति धर्मदप्रासादः ॥२४॥

रत्नसजयप्रासाद के भद्र के ऊपर चौथा एक उरुशृंग अधिक चढाने से धर्मद नामका प्रासाद होता है, वह नगर मे धर्म को बढाने वाला है ।।६३।।

शृंगसख्या-कोणे १०८ प्रतिरथे ११२, कोणी पर ८, नदी पर ८, भद्रे १६ प्रत्यग ८, एक शिखर कुल २६१ शृंग । तिलक पूर्ववत् २० ।

विभक्ति तेरहवी ।

२५-विमलवल्लभप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।
पदेन त्रयभागेन कर्णस्तत्र विधीयते ।।६४।।
तद्वद्ज्ञेयः प्रतिकर्णः कोणिका नन्दिका पदा ।
भद्रार्धं तु चतुर्भागं निर्गमं भागमेव च ।।६५।।
समनिर्गमं रथ ज्ञेयं कर्त्तव्यं चतुरो दिशि ।
कर्णे शृङ्गत्रयं कार्यं प्रतिकर्णे [1]द्वयमेव च ।।६६।।
नन्दिका कोणिकायां च शृङ्गकूटं सुशोभितम् ।
भद्रे चैवोरुचत्वारि चाष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।।६७।।
विमलवल्लभनामोऽयं प्रासादो विमलप्रियः ।

इति विमलजिनवल्लभप्रासाद ।।२१।।

समचोरस भूमि का चौवीस भाग करे । उन मे तीन भाग का कोण, तीन भाग का प्रतिकर्ण, कोणिका और नदिका एक एक भाग, और चार भाग का भद्रार्ध बनावे । भद्र का निर्गम एक भाग रखे । रथ और कर्ण का निर्गम समदल रखे । कोणे के ऊपर तीन शृंग, प्रतिकर्ण के ऊपर दो शृंग, नदिका और कोणिका के ऊपर एक एक शृंग और एक एक कूट, भद्र के ऊपर चार उरुशृंग और आठ प्रत्यग चढावे । यह विमलजिनवल्लभ नामका प्रासाद विमलजिन को प्रिय है ।।६४ से ६७।।

शृंगसख्या-कोणे १२, प्रतिरथे १६, कोणी पर ८, नदी पर ८, भद्रे १६, प्रत्यंग ८, एक शिखर कुल ६९ शृंग । कूट १६ ।

२६-मुक्तिदप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्त्तव्यो रथे तिलकं दापयेत् ।।६८।।

1. 'तथैव च ।'

कर्णिकायां च द्वे शृङ्गे प्रासादो जिनवल्लभः ।
मुक्तिदो नाम विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥६९॥

इति मुक्तिदप्रासाद. ॥२६॥

विमलजिनवल्लभ नाम के प्रतिरथ ऊपर एक एक तिलक और दोनो नदीयों के ऊपर कूट के बदले शृंग चढावे। जिससे मुक्तिद नामका प्रासाद होता है, यह जिनदेव को प्रिय है और वैभवादि भोगसामग्री और मुक्ति को देने वाला है ॥६९॥

शृंग संख्या—कोणे १२, प्रतिरथे १६, कोणी पर १६, नदी पर १६, भद्रे १६, प्रत्यंग ८, एक शिखर, कुल ८५, शृंग और तिलक ८ प्रतिरथ पर।

विभक्ति चौदहवीं।

२७-अनन्तजिनप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे विंशतिपदभाजिते ।
त्रीणि त्रीणि ततस्त्रीणि नन्दी पदेति भद्रके ॥७०॥

निर्गमं पदमानेन त्रिषु स्थानेषु भद्रके ।
कर्णे क्रमत्रय कार्यं रथोर्ध्वे तत्समं भवेत् ॥७१॥

भद्रे चैवोरुचत्वारि नन्दिकायां क्रमद्वयम् ।
अनन्तजिनप्रासादो धनपुण्यश्रियं लभेत् ॥७२॥

इत्यनन्तजिनप्रासाद ॥२७॥

प्रासाद को समचोरस भूमिका बीस भाग करे। उनमें तीन भाग का कोना, तीन भाग का उपरथ, तीन भाग का भद्रार्ध और भद्रनन्दी एक भाग जाने। इन अंगों का निर्गम [illegible] भाग का रक्खे। कोण और रथ ऊपर तीन तीन क्रम, भद्र के ऊपर चार उरुशृंग और नन्दी के ऊपर दो क्रम चढावे। ऐसा अनन्तजिनप्रासाद धन, पुण्य और लक्ष्मी को देने वाला है ॥७० से ७२॥

शृंग संख्या—कोणे १०८, प्ररथे २१६, नदी पर ११२, भद्रे १६, एक शिखर, कुल ४५३ शृंग।

२८-सुरेन्द्रप्रासाद—

अनन्तस्य भद्रस्थाने रथोर्ध्वे तिलकं न्यसेत् ।
सुरेन्द्रो नाम विज्ञेयः सर्वदेवेषु वल्लभः ॥७३॥

इति सुरेन्द्रप्रासादः ॥२८॥

अनन्तजिन प्रासाद के प्ररथ के ऊपर एक २ तिलक चढाने से सुरेन्द्र नाम का प्रासाद होता है, यह सर्व देवो के लिए प्रिय है ।।७३।।

शृंग सख्या—पूर्ववत् ४५३ और तिलक ८ प्ररथे ।

विभक्ति पन्द्रहवी ।

२९–धर्मनाथजिनप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चाष्टाविंशतिभाजिते ।
कर्णं रथं च भद्रार्धं युगभागं विधीयते ।।७४।।
निर्गमं तत्प्रमाणेन द्विभागा नन्दीकोणिका ।
केसरीं सर्वतोभद्रं रथे कर्णे च दापयेत् ।।७५।।
तदूर्ध्वे तिलकं देयं सर्वशोभान्वितं कृतम् ।
नन्दिका कर्णिकायां च शृङ्गोर्ध्वे शृङ्गमुत्तमम् ।।७६।।
भद्रे चैवोरुचत्वारि चाष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।
धर्मदो नाम विख्यातः पूरे धर्मविवर्धनः ।।७७।।

इति धर्मनाथजिनप्रासाद ।।२९।।

प्रासाद की समचोरस भूमि का अट्ठावीस भाग करे । उनमे चार भाग का कोण, चार भाग का प्ररथ, चार भाग का भद्रार्ध, एक भाग की कोणी, और एक भाग की भद्रनदी बनावे । ये सब अग समदल रक्खे । कोण और प्ररथ के ऊपर केसरी और सर्वतोभद्र ये दो क्रम चढावें और उसके ऊार शोभायमान एक एक तिलक चढावे । कोणी और नन्दी-के ऊपर दो दो शृ ग चढावे । भद्र के ऊपर चार उरुशृ ग और आठ प्रत्यग चढावे । ऐसा धर्म को देने वाला धर्मद नाम का प्रासाद नगर मे धर्म को बढाने वाला है ।।७४ से ७७।।

शृ ग सख्या—कोणे ५६, प्ररथे ११२, कोणी पर १६, नदी पर १६, भद्रे १६, प्रत्यंग, ८ एक शिखर, कुल २२५ शृ ग और तिलक ४ कोणे और ८ प्ररथे कुल १२ ।

३०–धर्मवृक्षप्रासाद—

तद्रूपे तत्प्रमाणे च कर्त्तव्यः सर्वकामदः ।
रथोर्ध्वे च कृते शृङ्गे धर्मवृक्षोऽयं नामतः ।।७८।।

इति धर्मवृक्षप्रासाद ।।३०।।

धर्मनाथ प्रासाद के प्ररथ के ऊपर तिलक के बदले मे एक एक शृंग चढाने से धर्मवृक्ष नाम का प्रासाद होता है ॥६८॥

शृंग संख्या—कोणे ५६ प्ररथे १२०, कोणी पर १६, नदी पर १६ भद्रे १६, प्रत्यंग ८, एक शिखर, कुल २३३ और तिलक ४ कोणे।

विभक्ति सोलहवी।

३१-शान्तिजिन वा श्रीलिंग प्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ।
कर्णो भागद्वयं कार्यः प्रतिकर्णस्तथैव च ॥७९॥

भद्रार्धं सार्धभागेन नन्दिका चार्धभागिका ।
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं प्रतिकर्णे तथैव च ॥८०॥

नन्दिकायां शृङ्गकूट-मुरुशृङ्गाणि द्वादश ।
शान्तिनामश्च विज्ञेयः सर्वदेवेभ्यः कारयेत् ॥८१॥

श्रीलिङ्गं च तदा नाम श्रीपतिषु सुखावहः ।

इति शान्तिवल्लभ श्रीलिङ्गप्रासाद ॥३१॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका बारह भाग करे। उनमे दो भाग का कोण, दो भाग का प्रतिकर्ण, डेढ भाग का भद्रार्ध और आधे भाग की भद्रनदी करे। कोण और प्रतिकर्ण के ऊपर दो दो क्रम, भद्रनदी के ऊपर एक शृंग और एक कूट, चारो भद्रो के ऊपर बारह उरुशृंग चढावे। ऐसा शान्ति नामका प्रासाद जाने, यह सब देवो के लिये बनावे। इसका दूसरा नाम श्रीलिङ्ग प्रासाद है, वह विष्णु के लिये सुखदायक है ॥७९ से ८१॥

शृंगसंख्या—कोणे ५६, प्ररथे ११२ भद्रनदी पर ८, भद्रे १२, एक शिखर, कुल १८९ शृंग और ८ कूट नदी पर।

३२-कामदायक प्रासाद—

उरुशृङ्गं पुनर्दद्यात् प्रासादः कामदायकः ॥८२॥

इति कामदायक ॥३२॥

शांतिनाथ प्रासाद के भद्र के ऊपर एक उरुशृंग अधिक चढाने से कामदायक प्रासाद होता है ॥८२॥

शृंग संख्या—भद्रे १६ बाकी पूर्ववत् कुल—१९३ शृंग।

विभक्ति सत्रहवी ।

३३-कुंथुजिनवल्लभ कुमुदप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चाष्टभागविभाजिते ।
कर्णः स्यादेकभागश्च प्रतिकर्णस्तथैव च ॥८३॥
नन्दिका चैव भागार्धा त्रिपदं भद्रविस्तरम् ।
निर्गमं पदमानेन स्थापयेच्च चतुर्दिशि ॥८४॥
कर्णे च केसरीं दद्यात् तदूर्ध्वे तिलकं न्यसेत् ।
तत्सदृशं प्रतिकर्णे नन्द्यां तु तिलकं न्यसेत् ॥८५॥
भद्रे च शृंगमेकं तु कुमुदो नाम नामतः ।
वल्लभः सर्वदेवानां जिनेन्द्रकुंथुवल्लभः ॥८६॥

इति कुंथुनाथवल्लभ कुमुदप्रासाद ॥३३॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका आठ भाग करे। उनमे कोण और प्रतिकर्ण एक एक भाग का, भद्रार्ध डेढ भाग और भद्रनन्दी आधा भाग बनावे। भद्र का निर्गम एक भाग रक्खे, इस प्रकार चारो दिशा मे व्यवस्था करे। कोण और प्रतिकर्ण के ऊपर एक एक केसरी शृंग और उसके ऊपर एक एक तिलक चढावे। भद्रनदी के ऊपर तिलक और भद्र के ऊपर एक उरुशृंग चढावे। यह कुमुदनामका प्रासाद सर्वदेवो को और कुंथुजिनदेव को वल्लभ है ॥८३ से ८६॥

शृंगसख्या—कोणे २०, प्ररथे ४०, भद्रे ४, एक शिखर, कुल ६५ शृंग। तिलक सख्या—कोणे ४, प्ररथे ८, और नन्दी पर ८, कुल २० तिलक।

३४-शक्तिदप्रासाद—

तद्रूपं च प्रकर्त्तव्यं रथे तिलकं दापयेत् ।
शक्तिदो नाम विज्ञेयः श्रीदेवीषु सुखावहः ॥८७॥

इति शक्तिदप्रासाद. ॥३४॥

कुमुदप्रासाद के प्ररथ के ऊपर एक २ तिलक अधिक चढाने से शक्तिद नाम का प्रासाद होता है। वह लक्ष्मीदेवी को सुखकारक है ॥८७॥

शृंगसख्या—पूर्ववत् ६५ और तिलक—कोणे ४, प्ररथे १६, नदी पर ८ कुल २८।

३५–हर्षणप्रासाद—

कर्णोर्ध्वे श्रृङ्गं दातव्यं प्रासादो हर्षणस्तथा ।

इति हर्षणप्रासाद ॥३५॥

शक्तिद प्रासाद के कोणे के ऊपर एक २ श्रृंग अधिक चढाने से हर्षण नामका प्रासाद होता है।

श्रृंगसंख्या—कोणे २४, प्ररथे ४०, भद्रे ४, एक शिखर, कुल ६९ श्रृंग। तिलक पूर्ववत् २८।

३६–भूषणप्रासाद—

कर्णोर्ध्वे तिलकं दद्यात् प्रासादो भूषणस्तथा ॥८८॥

इति भूषणप्रासाद ॥३६॥

हर्षणप्रासाद के कोणे के ऊपर एक तिलक अधिक चढावे तो भूषण नामका प्रासाद होता है ॥८८॥

श्रृंगसंख्या—पूर्ववत् ६९ और तिलक ३२।

विभक्ति रहवीं।

३७–अरनाथजिनवल्लभ–कमलकन्दप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चाष्टभागविभाजिते ।
कर्णो द्विभागिको ज्ञेयो भद्रार्धं च द्विभागिकम् ॥८९॥
कर्णे च श्रृङ्गमेकं तु केसरी च विधीयते ।
भद्रे चैवोद्गमः कार्यो जिनेन्द्रे चारनाथके ॥९०॥
इति त्वं विद्धि भो वत्स ! प्रासादो जिनवल्लभः ।
कमलकन्दनामोऽयं जिनशासनमार्गतः ॥९१॥

इति अरनाथजिनवल्लभ कमलकन्दप्रासाद ॥३७॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका आठ भाग करे। उनमें दो भाग का कोण और दो भाग का भद्रार्ध बनावे। कोणे के ऊपर एक २ केसरी श्रृंग चढावे और भद्र के ऊपर उद्गम बनावे। ऐसा अरनाथ जिन के लिये कमलकन्द नाम का प्रासाद हे वत्स ! तू जान ॥८९ से ९१॥

श्रृङ्गसंख्या—कोणे २०, एक शिखर, कुल २१ श्रृंग।

३८-श्रीशैलप्रासाद—

कर्णो च तिलकं ज्ञेयं श्रीशैल ईश्वरप्रियः ।

इति श्रीशैलप्रासाद ॥३८॥

कमलकन्द प्रासाद के कोणे के ऊपर एक २ तिलक भी चढाने से श्रीशैल नाम का प्रासाद होता है, वह ईश्वर को प्रिय है।

शृंगसंख्या—पूर्ववत् २१ और तिलक ४ कोणे।

३९-अरिनाशन प्रासाद—

भद्रे चैवोरुचत्वारि प्रासादस्त्वरिनाशनः ॥९२॥

इत्यरिनाशनप्रासाद ॥३९॥

श्रीशैलप्रासाद के भद्र के ऊपर एक २ उरुशृंग चढाने से अरिनाशन नामका प्रासाद होता है ॥९२॥

शृंगसंख्या—कोणे २०, भद्रे ४, एक शिखर, कुल २५ शृंग और तिलक ४ कोणे।

विभक्ति उन्नीसवी।

४०-श्रीमल्लिजिनवल्लभ-महेन्द्रप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वादशपदभाजिते ।
कर्णो भागद्वय कार्यः प्रतिरथश्च सार्धकः ॥९३॥
सार्धभागकं भद्रार्धं चार्धा नन्दीद्वयं भवेत् ।
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं प्रतिरथे तथैव च ॥९४॥
द्वादश उरुशृङ्गाणि स्थापयेच्च चतुर्दिशि ।
महेन्द्रनामः प्रासादो जिनेन्द्रमल्लिवल्लभः ॥९५॥

इति मल्लिजिनवल्लभो महेन्द्रप्रासाद ॥४०॥

४१–मानवेन्द्रप्रासाद—

रथोर्ध्वे तिलकं दद्यान्मानवेन्द्रोऽथ नामतः ।

इति मानवेन्द्रप्रासाद ॥४१॥

महेन्द्रप्रासाद के प्रतिरथ के ऊपर एक २ तिलक भी चढावे तो मानवेन्द्र नामका प्रासाद होता है। श्रृंगसंख्या पूर्ववत् १८१ और तिलक ८ प्ररथे।

४२–पापनाशनप्रासाद—

कर्णोर्ध्वे तिलकं दद्यात् प्रासादः पापनाशनः ॥६६॥

इति पापनाशनप्रासाद ॥४२॥

मानवेन्द्रप्रासाद के कोणे के ऊपर एक २ तिलक भी चढावे तो पापनाशन नामका प्रासाद होता है ॥६६॥

श्रृंगसंख्या पूर्ववत् १८१। तिलक–कोणे ४, और प्ररथे ८ कुल १२ तिलक।

विभक्ति बीसवीं।

४३–मानसतुष्टि नामका मुनिसुव्रतप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ।
बाहुद्वयं रथं कर्णं भद्रार्धं त्रयभागिकम् ॥६७॥
श्रीवत्सं केसरी देयं कर्णे रथे क्रमद्वयम् ।
द्वादशैवोरुश्रृङ्गाणि स्थापयेच्च चतुर्दिशि ॥६८॥
मानसतुष्टिनामोऽयं प्रासादो मुनिसुव्रतः ।

इति मानसतुष्टि नाम मुनिसुव्रतप्रासाद ॥४३॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका चौदह भाग करे। उनमें दो भागका कोण, दो भागका प्ररथ और तीन भागका भद्रार्ध करे। कोण और प्ररथ के ऊपर केसरी और श्रीवत्स ये दो क्रम चढावे। तथा भद्र के ऊपर कुल बारह उरुश्रृंग चढावे। ऐसा मानसतुष्टि नामका मुनिसुव्रत प्रासाद है ॥६७-६८॥

श्रृंगसंख्या—कोणे २४, प्ररथे ४८, भद्रे १२, एक शिखर, कुल ८५ श्रृंग।

४४–मनोल्याचन्द्रप्रासाद—

तद्रूपे रथे तिलकं मनोल्याचन्द्रो नामतः ॥६९॥

इति मनोल्याचन्द्रप्रासाद ॥४४॥

विभक्ति इक्कीसवीं B ।

४७–सुमतिकीर्त्तिप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे षड्विंशपदभाजिते ।
कर्णो भागाश्च चत्वारः प्रतिकर्णस्तथैव च ॥१०४॥
भद्रं दिग्भागिकं ज्ञेयं चतुर्दिक्षु व्यवस्थितम् ।
कर्णे क्रमत्रयं कार्यं प्रतिकर्णे क्रमद्वयम् ॥१०५॥
द्वादशैवोरुश्रृङ्गाणि प्रत्यङ्गानि द्वात्रिंशकम् ।
मन्दिरं प्रथमं कर्म सर्वतोभद्रमेव च ॥१०६॥
केसरी तृतीयं कर्म ऊर्ध्वे मञ्जरी शोभिता ।
सुमतिकीर्त्तिनामोऽयं नमिनाथस्य वल्लभः ॥१०७॥

इति नमिजिनवल्लभ सुमतिकीर्त्तिप्रासाद ॥४७॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका छब्बीस भाग करे। उनमे चार भाग का कोण, चार भाग का प्ररथ और दस भाग का पूरा भद्र करे। कोणे के ऊपर तीन क्रम, प्ररथ के ऊपर दो क्रम, भद्र के ऊपर कुल बारह उरुश्रृंग और बत्तीस प्रत्यंग चढावे। उसके ऊपर शिखर शोभायमान करे, ऐसा सुमतिकीर्त्ति नामका प्रासाद श्रीनमिनाथ जिनको प्रिय है ॥१०४ से १०७॥

श्रृंगसंख्या—कोणे १५६, प्ररथे ११२, भद्रे १२, प्रत्यंग ३२, एक शिखर, कुल ३१३ श्रृंग। यदि प्ररथ के ऊपर मंदिर और सर्वतोभद्र ये दो क्रम रखा जाय तो श्रृंगसंख्या— कोणे १५६, प्ररथे २७२, भद्रे १२, प्रत्यंग ३२, एक शिखर, कुल ४७३ श्रृंग।

४८–सुरेन्द्रप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्त्तव्यो रथे श्रृङ्गं च दापयेत् ।
सुरेन्द्र इति नामायं प्रासादः सुरवल्लभः ॥१०८॥

इति सुरेन्द्रनामप्रासाद ॥४८॥

सुमतिकीर्त्ति प्रासाद के प्ररथके ऊपर एक श्रृंग अधिक चढावे तो सुरेन्द्र नामका प्रासाद होता है, वह देवों को प्रिय है ॥१०८॥

श्रृंगसंख्या—कोणे १५६, प्ररथे २८०, भद्रे १२, प्रत्यंग ३२, एक शिखर कुल ४८१ श्रृंग।

४९–राजेन्द्रप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्त्तव्य उरुश्रृङ्गाणि[1] षोडश ।
पूजनाल्लभते राज्यं स्वर्गे चैवं महीतले ॥१०९॥

इति राजेन्द्रप्रासाद ॥४९॥

सुरेन्द्रप्रासाद के भद्रके ऊपर बारह के बदले सोलह उरुश्रृग चढाने से राजेन्द्र नामका प्रासाद होता है। उसका पूजन करने से पृथ्वी के ऊपर और स्वर्ग मे राज्य प्राप्त होता है ॥१०९॥

श्रृ गसख्या—भद्रे १६ बाकी पूर्ववत्, कुल ४८५ श्रृ ग ।

विभक्ति बाईसवीं ।

५०–नेमेन्द्रेश्वर प्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वाविंशपदभाजिते ।
बाहुरिन्दुयुग्मरूप–द्वीन्दुभागाः क्रमेण च ॥११०॥
भद्रार्धं च द्वयं भागं स्थापयेत्तु चतुर्दिशि ।
केसरीं सर्वतोभद्रं कर्णे चैवं क्रमद्वयम् ॥१११॥
केसरीं तिलकं चैव रथोर्ध्वे तु प्रकीर्त्तितम् ।
कर्णिकानन्दिकाया च श्रृङ्गं च तिलकं न्यसेत् ॥११२॥
भद्रे चैवोरुचत्वारि प्रत्यङ्गानि च षोडश ।
नेमेन्द्रेश्वरनामोऽयं प्रासादो नेमिवल्लभः ॥११३॥

इति नेमेन्द्रेश्वरप्रासाद ॥५०॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका बाईस भाग करे । उनमे दो भाग का कोण, एक भागकी कोणी, दो भागका प्रतिकर्ण, एक भाग कोणी, दो भाग का उपरथ, एक भागकी नन्दी और दो भाग का भद्रार्ध रक्खे। कोणे के ऊपर केसरी और सर्वतोभद्र, ये दो क्रम, प्रतिकर्ण और उपरथ के ऊपर केसरी क्रम और एक तिलक, कोणी और नदियो के ऊपर एक श्रृग और एक तिलक, भद्र के ऊपर चार २ उरुश्रृ ग, और सोलह प्रत्यग चढावे । ऐसा नेमेन्द्रेश्वर नाम का प्रासाद श्री नेमिनाथजिनदेव को प्रिय है ॥११० से ११३॥

१. 'उरुश्रृङ्ग च पञ्चमम्' । पाठान्तरे ।

शृंग संख्या—कोणे ५६, कोणीपर ८, प्ररथे ४०, कोणीपर ८, उपरथे ४०, नदी पर ८, भद्रे १६ प्रत्यंग १६, एक शिखर कुल १९३ शृंग। तिलक संख्या—प्ररथे ८, उपरथे ८, कर्णनदी पर ८, प्ररथनदी पर ८, भद्रनदी पर ८, कुल ४० तिलक।

५१–यतिभूषणप्रासाद—

तत्तुल्यं तत्प्रमाणं च रथे शृङ्गं च दापयेत्।
वल्लभः सर्वदेवानां प्रासादो यतिभूषणः ॥११४॥

इति यतिभूषणप्रासाद ॥५१॥

नेमेन्द्रेश्वर प्रासाद के प्ररथ और उपरथ ऊपर के तिलक के बदले एक एक शृङ्ग चढाने से यतिभूषण नाम का प्रासाद होता है, वह सब देवो को प्रिय है ॥११४॥

शृंगसंख्या—प्ररथे ४८, उपरथे ४८ बाकी पूर्ववत् कुल २०९ शृंग। तिलक कुल २४ तीनो नन्दी पर।

५२–सुपुष्पप्रासाद—

तद्रूपं तत्प्रमाणं च रथे दद्याच्च केसरीम्।
सुपुष्पो नाम विज्ञेयः प्रासादः सुरवल्लभः ॥११५॥

इति सुपुष्पनामप्रासाद ॥५२॥

यतिभूषण प्रासाद के प्ररथ और उपरथ ऊपर के शृंग के बदले में एक एक केसरी क्रम चढाने से सुपुष्प नामका प्रासाद होता है। वह देवो को प्रिय है ॥१०५॥

शृंग संख्या—परथे ८०, ऊपरथे ८० बाकी पूर्ववत कुल २७३ शृंग। तिलक २४ पूर्ववत्

विभक्ति तेईसवी।

५३–पार्श्ववल्लभप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे [1]षड्विंशपदभाजिते।
कर्णात्तु गर्भपर्यन्तं विभागाना तु लक्षणम् ॥११६॥
वेदरूपगुणेन्दवो[2] भद्रार्धं तु चतुष्पदम्।
श्रीवत्स केसरी चैव रथे कर्णे च दापयेत् ॥११७॥

१ 'अष्टविंशति भाजिते'। पाठान्तरे। २ 'द्रव'।

कर्णिकायां ततः शृङ्ग-मष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।
भद्रे चैवोरुचत्वारि प्रासादः पार्श्ववल्लभः ॥११८॥

इति श्री पाश्र्ववल्लभप्रासाद ॥५३॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका छब्बीस भाग करे। उन मे चार भाग का कोण, एक भाग की कोणी, तीन भाग का प्रतिरथ, एक भाग की नन्दी और भद्रार्ध चार भाग का रक्खे। कोण और प्ररथ के ऊपर एक एक केसरीक्रम और एक एक श्रीवत्सशृंग चढावे। कोणी और नन्दी के ऊपर एक एक शृंग चढावे। आठ प्रत्यङ्ग और भद्र के ऊपर चार चार उरुशृंग चढावें। ऐसा पार्श्वनाथवल्लभ नाम का प्रासाद है ॥११६ से ११८॥

शृङ्ग सख्या—कोणे २४, प्ररथे ४८, भद्रे १६ कोणी पर ८, नदी पर ८, प्रत्यग ८, एक शिखर कुल ११३ शृंग।

५४—पद्मावतीप्रासाद—

कर्णे च तिलकं दद्यात् प्रासादस्तत्स्वरूपकः ।
पद्मावती च नामेति प्रासादो देवीवल्लभः ॥११९॥

इति पद्मावतीप्रासाद ॥५४॥

पार्श्ववल्लभ प्रासाद के कोणे के ऊपर एक एक तिलक भी चढावे तो पद्मावती नामका प्रासाद होता है। यह देवी को प्रिय है ॥११९॥

शृंग सख्या पूर्ववत् ११३। तिलक ४ कोणे के पर।

५५—रूपवल्लभप्रासाद—

तद्रूपं च प्रकर्त्तव्यं प्रतिकर्णे कर्णसादृशम् ।
जिनेन्द्रायतनं चैव प्रासादो रूपवल्लभः ॥१२०॥

इति रूपवल्लभप्रासाद ॥५५॥

पद्मावती प्रासाद के प्ररथ के ऊपर भी एक एक तिलक चढावे तो रूपवल्लभनामका जिनेन्द्रप्रासाद होता है ॥१२०॥

शृंग सख्या—पूर्ववत् ११३। तिलक १२। चार कोणे और आठ प्ररथे।
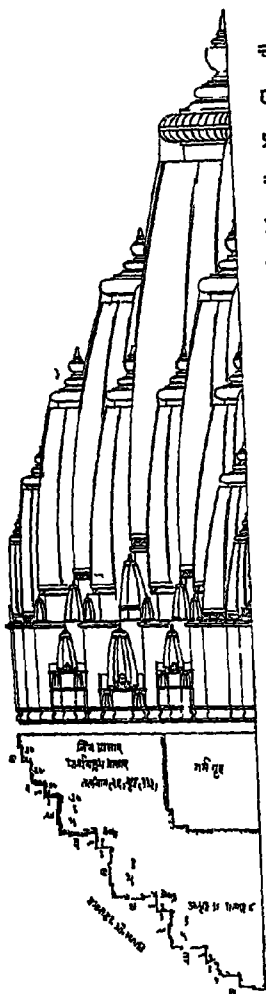
विभक्ति चौबीसवी ।

५६—वीरविक्रम-महीधरप्रासाद—
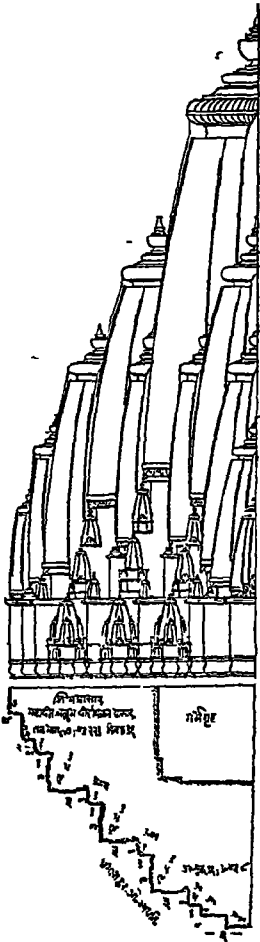
चतुस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।
कर्णस्त्रिभागिको ज्ञेयः प्रतिकर्णश्च तत्समम् ॥१२१॥
कर्णिका नन्दिका भागा भद्रार्धं च चतुष्पदम् ।
श्रीवत्सं केसरीं चैव सर्वतोभद्रमेव च ॥१२२॥
रथे वर्णे च दातव्य-मष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।
भद्रे चैवोरुचत्वारि कर्णिकायां शृङ्गोत्तमम् ॥१२३॥
वीरविक्रमनामोऽयं प्रासादो जिनवल्लभः ।
महीधरश्च नामायं पूजिते फलदायकः ॥१२४॥

इति श्री महावीरजिनवल्लभो वीरविक्रमप्रासाद ॥५३॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका चौवीस भाग करे। उनमें कोण और प्रतिकर्ण तीन तीन भाग, कोणी और नन्दी एक एक भाग और भद्रार्ध चार भाग रक्खे। कोण और प्ररथ के ऊपर केसरी और सर्वतोभद्र ये दो क्रम और एक श्रीवत्सशृंग चढावे, भद्र के ऊपर चार उरुशृंग, तथा कोणी और नदी के ऊपर एक श्रीवत्सशृंग और आठ प्रत्यंग चढावे। ऐसा वीरविक्रम नाम का प्रासाद जिनदेव को प्रिय है ॥१२१ से १२४॥

शृंगसंख्या—कोणे ६०, प्ररथे १२०, प्रत्यंग ८, भद्रे १६, कोणी पर ८ नदी पर ८, एक शिखर, कुल २२१ शृंग।

५७—अष्टापदप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्त्तव्ये कर्णोर्ध्वे तिलकं न्यसेत् ।
अष्टापदश्च नामायं प्रासादो जिनवल्लभः ॥१२५॥

इत्यष्टापदप्रासाद ॥५४॥

वीर विक्रम प्रासाद के कोणे के ऊपर एक एक तिलक भी चढावे तो अष्टापद नामका प्रासाद होता है। वह जिनदेव को प्रिय है ॥१२५॥

शृंग संख्या—पूर्ववत् २२१। तिलक—४ कोणे के ऊपर।

५८–तुष्टिपुष्टिदप्रासाद—

तद्रूपं च प्रकर्त्तव्य—मुरुशृङ्गं च पञ्चमम् ।
तुष्टिपुष्टिदनामोऽयं प्रासादो जिनवल्लभः ॥१२६॥

इति तुष्टिपुष्टिदप्रासाद ॥५५॥

अष्टापदप्रासाद के भद्र के ऊपर चार के बदले पाच उरुशृ ग चढावे तो तुष्टिपुष्टिद नामका प्रासाद होता है। वह जिनदेव को प्रिय है ॥१२६॥

शृ ग सख्या—भद्रे २० बाकी पूर्ववत् कुल २२५ शृ ग और तिलक ४ कोणे

जिनप्रासाद प्रशंसा—

प्रासादाः पूजिता लोके विश्वकर्मणा भाषिताः ।
चतुर्विंशविभक्तीना जिनेन्द्राणां विशेषतः ॥१२७॥

उपरोक्त विश्वकर्मा ने कहे हुए चौबीस विभक्ति के जिनेन्द्रदेवो के प्रासाद विशेष प्रकार से पूजनीय है ॥१२७॥

चतुर्दिशि चतुर्द्वाराः पुरमध्ये सुखावहाः ।
भ्रमाश्च विभ्रमाश्चैव प्रशस्ताः सर्वकामदाः ॥१२८॥

चारो दिशाओ मे द्वारवाले अर्थात् चार द्वारवाले, भ्रमवाले अथवा विना भ्रम के जिनेन्द्र प्रासाद नगर मे हो तो प्रजा को सुख देने वाले है। तथा प्रशस्त है और सब इच्छित फल को देने वाले है ॥१२८॥

शान्तिदाः पुष्टिदाश्चैव प्रजाराज्यसुखावहाः ।
अश्वैर्गजैर्बलियानै–र्महिषीनन्दीभिस्तथा ॥१२९॥
सर्वश्रियमाप्नुवन्ति स्थापिताश्च महीतले ।

जिनेन्द्रदेवो के प्रासाद शान्ति देने वाले है। पुष्टि देनेवाले और राजा प्रजा को सुख देनेवाले है। एव इस पृथ्वी के ऊपर जिनेन्द्र देवो के प्रासाद स्थापित करने से घोडे, हाथी भैंस और गाय आदि की सब सम्पत्तियो को देनेवाले है ॥१२९॥

नगरे ग्रामे पुरे च प्रासादा ऋषभादयः ॥१३०॥
जगत्या मण्डपैर्युक्ताः क्रीयन्ते वसुधातले ।
सुलभ दीप ए स्वर्गे चैवं महीतले ॥१३१

नगर, ग्राम और पुरके मध्य मे जगती और मडप वाले ऋषभ आदि जिनप्रासाद पृथ्वी-तल मे किया जाता है। जिसे स्वर्ग और पृथ्वी मे राज्य प्राप्ति सुलभ होती है ॥१२० से १३१॥

दक्षिणोत्तरमुखाश्च प्राचीपश्चिमदिङ्मुखाः।
वीतरागस्य प्रासादाः पुरमध्ये सुखावहाः ॥१३२॥

इति श्री विश्वकर्मकृतज्ञानप्रकाशदीपार्णवे वास्तुविद्यायां
जयपृच्छता जिनप्रासादाधिकारः समाप्तः ॥

दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम, इन चारो दिशा के मुख वाले वीतराग देव के प्रासाद नगर मे हो तो सुख कारक है ॥१३२॥

इति प० भगवानदास जैन कृत ज्ञानप्रकाशदीपार्णव के वास्तु-
विद्या के जिनप्रासादाधिकार की सुबोधिनी नाम्नी
भाषाटीका समाप्त।

इस ग्रंथ में आये हुये शब्दों का सार्थ अकारादि क्रम।

अ

अंश पु विभाग, खंड।
अग्रेतन न. ऊपर का भाग।
अघोर पु उपरथ नाम के थर का देव
अङ्क न. नवकी संख्या, चिह्न।
अङ्कित वि० चिह्न किया हुआ।
अङ्गुल न इंच, आगल।
अङ्घ्रि पु पैर, चरण, चतुर्थांश।
अजिता स्त्री नीवकी पाचवी शिला का नाम।
अञ्चिता स्त्री गर्भगृह के आगे ½ भाग के मान की कोली का नाम।
अण्डक न शृंग, शिखर, आमलसार, कलश का पेट, इंडा।
अदिति पु वास्तु देवता का नाम।
अद्रि पु पर्वत, सात की संख्या
अधिष्ठान न आधार, जगती
अनन्त पु व्यासार्द्ध के ½ भाग के उदयवाला गुंबज।
अनिल पु वायु, वास्तुदेव।
अनुग पु पढरा, कोने के समीप का दूसरा कोना।
अन्तरपत्र न कलश और केवाल ये दोनो थरो के बीच अन्तर।
अन्तराल न देखो अन्तरपत्र, अन्तर।
अन्धकारिका स्त्री परिक्रमा, प्रदक्षिणा।
अन्धारिका स्त्री देखो ऊपर का शब्द।
अपराजित न सूत्रसंतान गुणकीर्त्ति का रचा हुआ वास्तुशिल्प का बडा ग्रंथ।
अपराजिता स्त्री नीव की छट्ठी शिला का नाम।
अमृतोद्भव पु केसरी जाति का आठवा प्रासाद।
अभिषेक पु देवो का मन्त्र पूर्वक स्नान।
अम्बर पु शिखरकी ग्रीवाका देव।
अयुत न दस हजार की संख्या।
अर्क पु सूर्य, बारह की संख्या।
अर्कतनया स्त्री यमुना देवी।
अर्चन न पूजा।
अर्चा स्त्री देवमूर्त्ति।
अर्धचन्द्र पु प्रासाद की देहली के आगे की अर्द्धगोल आकृति, शखावटी, मडल विशेष
अर्यमन् पु वास्तुदेव, सूर्य, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र।
अलिन्द पु बरामदा, दालान।
अवलम्ब पु ओलभा, रस्सी के बधा हुआ लोहे का छोटा सा लट्टू, जिसको शिल्पिवर्ग बाध काम करते समय अपने पास रखता है।
अव्यक्त वि अप्रकाशित, अन्धकार मय, अघटित शिवलिंग।
अश्वमेध पु यज्ञविशेष का नाम।
अश्वत्थ पु ब्रह्मपीपला, पीपल।
अश्विन् पु अश्विनीकुमारदेव, अर्द्धचन्द्र के देव
अष्टादश वि अठारह की संख्या।
अष्टापद पु चारो दिशामे आठ आठ सीढीवाला पर्वत।
अष्टास्रक पु आठ कोना वाला स्तभ
असुर पु वास्तु देव।
अस्र पु कोना, हद।

आ

आकाश न वास्तुदेव, गुंबज का देव।
आगार न देवालय, घर, स्थान।
आदित्य पु वास्तुदेव, सूर्य।
आद्यसूत्रधार पु विश्वकर्मा।
आप पु वास्तुदेव, पानी।
आपवत्स पु वास्तुदेव।
आमलसार पु शिखर के स्कध के ऊपर कुंभार के चाक जैसा गोल कलश।
आमलसारिका स्त्री आमलसार के ऊपर की चद्रिका के ऊपर की गोल आकृति।

आय पु संज्ञा विशेष जिसे गृहादि शुभाशुभ देखा जाता जाता है, आठ की संख्या, लाभ।

आयत वि लंबाई।

आयतन न देवालय, देवों की पंचायतन।

आरात्रिक न. आरती।

आर्द्रा स्त्री छट्ठा नक्षत्र।

आलय पु वासस्थान, घर, देवालय।

आसनपट्ट पु बैठने का आसन, तकीया।

इ ई

इन्दु पु चंद्रमा, एक की संख्या।

इन्द्र पु पूर्वदिशा का स्वामी, दिक्पाल, वास्तुदेव, उद्गम थर का देव।

इन्द्रकील न स्तंभिका जो ध्वजा दंड को मजबूत रखने के लिये साथ रखा जाता है।

इन्द्रजय पु वास्तुदेव

इन्द्रनील पु केसरी जाति का तेरहवा प्रासाद, रत्न विशेष।

इन्द्रवारुणी स्त्री बडी इन्द्रफला औषधि।

इन्द्राश पु संज्ञाविशेष जो इमारती काम में देखा जाता है।

इषु पु पांच की संख्या, बाण

इष्टका } स्त्री ईंट
इष्टिका }

ईश पु नदी थर का देव वास्तुदेव, ईशान कोना का दिक्पाल, महादेव।

ईश्वर पु शिखर का देव, महादेव।

ईश्वरी स्त्री औषधि विशेष, शिवलिङ्गी।

उ ऊ

उच्छ्राय पु ऊंचाई

उत्क्षिप्त न गुंबज का ऊंचा उठा हुआ चंदोवा, छत।

उत्तरंग न द्वारशाखा के ऊपर का मथाला।

उत्तरा स्त्री उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद ये तीनों नक्षत्र।

उत्तानपट्ट पु बडा पाट।

उत्सेध पु ऊंचाई।

उदक न पानी, जल।

उदच् अ उत्तरदिशा।

उदुम्बर न द्वारशाखा का नीचला भाग देहली।

उद्गम पु प्रासाद के दीवार का आठवा थर जो सीढ़ी के आकार वाला है।

उद्भिन्न पु चार प्रकार के जातिकी आकृति वाली छत, छत का एक भेद।

उद्भिन्ना स्त्री सातवी संवरणा।

उपग्रह पु नक्षत्रों की एक संज्ञा।

उपरथ पु कोने के पास का तीसरा कोना।

उरुमञ्जरी स्त्री उरुशृंग

उरुशृङ्ग } न शिखर के भद्र ऊपर चढाये
उरःशृङ्ग } हुए शृंग

ऊर्ध्व त्रि. ऊंचाई, ऊपर,

ऊर्ध्वार्चा स्त्री खडी मूर्ति।

ऋ

ऋक्ष न नक्षत्र, २७ की संख्या।

ऋत्विज पु यज्ञ करने वाले, यज्ञ दीक्षित।

ए ऐ

एकादश त्रि ग्यारह की संख्या।

ऐरावत पु केसरी जाति का २१ वा प्रासाद।

क

कङ्कु न धान्य विशेष, कांग।

कटि स्त्री कमर, शरीर का मध्य भाग।

कणक न कणी, जाड्यकुंभ के ऊपर का थर।

कणपीठ न जाड्यकुंभ और कणी ये दो थरवाली प्रासाद की पीठ

कणाली स्त्री कणी नामका थर

कदाचन अ कभी।

कनीयस् त्रि छोटा, लघु।

कन्या स्त्री छट्ठी राशिका नाम।

कपिली स्त्री करोटी, कोली, गुढमंडप के दोनों तरफ शिखर के आकार वाला मंडप।

कपोताली } स्त्री प्रासाद के दीवार का पाचवा थर,
कपोतिका } केवाल थर ।

कर पु हस्तनक्षत्र, हाथ ।

करोटक पु गुंबज ।

कर्ण न कोना, पट्टी, सिंहकर्ण ।

कर्णक न कणी, जो थरो के ऊपर नीचे पट्टी रखी जाती है ।

कर्णगूढ पु छीपा हुआ कोना, बद कोना ।

कर्णदर्दरिका स्त्री गुबज के उदय मे नीचला थर ।

कर्णसिंह पु प्रासाद के कोने पर रखा हुआ सिंह ।

कर्णाली स्त्री कणी, जाड्यकुभा के ऊपर का थर ।

कर्णिका स्त्री थरो के ऊपर नीचे की पट्टी, छोटा कोना, कोणा और प्ररथ के बीच में कोणी की फालना ।

कर्म न समुह वाचक, श्रृगो का समुह ।

कलश पु मडोवर का तीसरा थर, शिखर के ऊपर रखा हुआ कलश ।

कलशाण्डक न कलश का पेट ।

कला स्त्री रेखा विशेष, सोलह की सख्या ।

कलास्र पु सोलह कोना ।

कषाय पु औषधि विशेष ।

कास्य न कासा, धातु विशेष ।

कामदपीठ न गज आदि रूपथरो से रहित पीठ ।

कारा स्त्री जेल

काल पु वास्तुदेव, समय ।

कालन्दी स्त्री यमुना देवी ।

काष्ठ न लकडी ।

किंसुर पु किन्नरदेव, पुष्पकठ के देव ।

कीर्तिवक्त्र न ग्रासमुख ।

कीर्त्तिस्तभ पु विजयस्तभ, तोरणवाले स्तभ ।

कीलक न कील, खूटा

कुज पु मगलग्रह ।

कुञ्चिता स्त्री प्रासाद के $\frac{3}{10}$ भाग के मान की कोली

कुण्ड न यज्ञकुड, जलकुड ।

कुबेर पु उतर दिशा का दिक्पाल ।

कुभ पु मडोवर का दूसरा थर, कलश ।

कुम्भिका स्त्री स्तभ के नीचे की कुभी ।

कुलतिलका स्त्री पाचवी सवरणा ।

कूटच्छाद्य न छज्जा ।

कूर्म पु सोना चादी का कछुआ, जो नीव में रखा जाता है ।

कूर्मशिला स्त्री कच्छुए के चिह्नवाली धारणी शिला ।

केसरिन् पु पाच श्रृगवाला प्रासाद ।

कैलास पु केसरी जाति का ग्यारहवा और वैराज्य जाति का ठारहवा प्रासाद ।

कोटर पु-न पोलाण ।

कोटि स्त्री करोड सख्या, रेखा की एक भुजा

कोट्ट पु किला, दुर्ग ।

कोल न गुबज के उदय मे गजतालु थर के ऊपर का थर ।

कोविद पु पडित, ज्ञानी ।

कोष्ठागार न कोठार ।

क्षण न खड, विभाग ।

क्षिति स्त्री पाटका देवता, पृथ्वी ।

क्षितिवल्लभ पु वैराज्य जातिका सोलहवा प्रासाद ।

क्षिप्त न लटकती हुई छत ।

क्षीर न दूध ।

क्षीरार्णव पु समुद्र, वास्तुग्रन्थ विशेष

क्षेत्र न प्रासादतल ।

क्षेत्रपाल पु अमुक मर्यादित भूमिका देव ।

क्षोभणा स्त्री कोनी

ख

खण्ड पु विभाग, मजिल, खाड ।

खर पु छट्ठा आय

खरशिला स्त्री जगती के दासा के ऊपर और भीट के नीचे बनी हुई प्रासाद को धारण करनेवाली शिला ।

खल्वशाखा स्त्री द्वार की नव शाखाओ मे चोथी और आठवी शाखा ।

खात न मकान की नीव ।

खुर } पु प्रासाद की दीवार का प्रथम थर
खुरक } खुरा.

ग

गगारक न. देहली के आगे अर्द्धचन्द्राकृति के दोनो तरफ की फूलपत्ति वाली आकृति ।

गज पु सातवा आय, गजथर ।

गजतालु न गुंबज के उदय में रूपकंठ के ऊपर का थर।

गजदन्त न. हाथी दात की आकृतिवाला मडल ।

गजधर पु देवालय और मकान आदि बनाने वाला शिल्पी ।

गणेश पु. गणपति ।

गण्डान्त पु तिथि नक्षत्र आदि की संधि का समय

गन्धमादन पु वैराज्यजातिका वीसवा प्रासाद ।

गन्धमादिनी स्त्री वीसवी संवरणा ।

गन्धर्व पु वास्तुदेव ।

गन्धर्वा स्त्री नवशाखाओ मे दूसरी और पाचवी शाखा ।

गरुड पु केसरी जाति का तेइसवा प्रासाद ।

गर्भ पु गर्भगृह ।

गह्वर न गुफा ।

गान्धर्व पु केवाल थर का देव ।

गान्धारी स्त्री. चार शाखावाला द्वार ।

गिरि पु वास्तुदेव, पर्वत ।

गुण पु तीन की संख्या, रस्सी, डोरी ।

गुरु पु बृहस्पति, पाचवा ग्रह ।

गुह पु कार्तिक स्वामी ।

गूढ पु गूढमंडप, दीवार वाला मंडप ।

गृह न घर, मकान ।

गृहक्षत पु वास्तुदेव

गृहिन् पु घरका मालिक ।

गेह न घर, गर्भगृह ।

गोधूम पु गेहू धान्य विशेष ।

गोपुर न किला के द्वार ऊपर का मकान ।

गोमेद न गोमूत्र के रंग का रत्न विशेष ।

गौरितिलक न मंडप विशेष ।

ग्रन्थि स्त्री गाठ ।

ग्रह पु नवकी संख्या ।

ग्रास पु जलचर प्राणी विशेष ।

ग्रासपट्टी स्त्री ग्रास के मुखवाला दासा ।

ग्रीवा स्त्री. शिखर का स्कंध और आमलसार के नीचे का भाग ।

ग्रीवापीठ न कलश के नीचे का गला ।

घ

घट पु कलश, आमलसार ।

घण्टा स्त्री कलश, आमलसार ।

घण्टिका स्त्री. छोटी आमलसारिका, संवरणा के कलश।

घृत न घी ।

च

चण्ड पु. महादेव का गणदेव, यह शिवलिंग की जलाधारी के नीचे स्थापित किया जाता है, जिसे स्नात्र जल उसके मुख मे जाकर बाहर गिरता है, यह स्नात्रजल पीछे दोष कर्त्ता नही रहता ।

चण्डिका स्त्री देवी विशेष ।

चतुरस्र वि समचोरस ।

चतुर्दश सं चौदह की संख्या ।

चतुष्किका स्त्री. चोकी मंडप ।

चत्वर न, चौक, चाररस्ता, यज्ञ स्थान ।

चन्द्र पु द्वारशाखा का देव, चंद्रमा ।

चन्द्रशाला स्त्री खुल्ली छत ।

चन्द्रावलोकन न खुल्ला भाग ।

चन्द्रिका स्त्री आमलसार के ऊपर औंधे कमल की आकृतिवाला भाग ।

चम्पका स्त्री दशवीं संवरणा

चरकी स्त्री वास्तुचक्र के ईशान कोण की देवी ।

चरभ न चरलग्न ।

चापाकार न धनुष के आकार वाला मंडप ।

चार पु जिसमे चार चार भाग सोलह बार बढ़ाया जाता है, ऐसी संख्या ।

चित्रकूटा स्त्री बारहवी संवरणा ।

चित्रा स्त्री चौदहवा नक्षत्र ।

चिन्नात्मन् पु आत्मा ब्रह्म ।

चूडामणि पु सोलहवी सवरणा।
चूर्ण न चूना।

छ

छन्दस् न. तल विभाग ।
छाद्य न छज्जा।
छिद्र न छेद।

ज

जगती स्त्री प्रासाद की मर्यादित भूमि, पीठिका,
जङ्घा स्त्री प्रासाद की दीवार का सातवा थर
जम्भा स्त्री वास्तुचक्र के अग्निकोण की देवी
जय पु वास्तुदेव।
जया स्त्री तीसरी शिला का नाम
जलदेव पु कुंभा के थर का देव, वरुण।
जलाधिप पु वास्तुचक्र का देव।
जाड्यकुम्भ पु पीठ के नीचे का बाहर नीकलता हुआ गलताकार थर।
जानु न घूटना।
जाल न जालीदार खिडकी
जालक न मकडी का जाला, जालीदार खिडकी
जाह्नवी स्त्री गगा, नाली का देव
जिन पु जैनधम के देव, चोवीस की सख्या।
जीर्ण न पूराणा।
जीवन्यास न देवों की प्राणप्रतिष्ठा।
जूर्णा स्त्री. धान्यविशेष, जुआर।
ज्योतिष्मती स्त्री, मालकागनी ओपधि विशेष।

ट

टङ्काभ न यज्ञमडल विशेष।

त

तडाग न तालाव, सरोवर।
तत्पुरुष पु प्रासाद की दीवार के रथ का देव।
तल न नीचे का तल भाग।
तल्प न शय्या, आसन।
तवङ्ग न प्रासाद के थर आदि में छोटी साईझ के तोरण वाले स्तभ युक्त रूप।

प्रा० २८

ताम्र न धातु विशेष, तांबा।
तिथि स्त्री पद्रह की सख्या।
तोरण न दोनो स्तभो के बीच में वलयाकार आकृति, तोरण।
त्रिक पु, चोकी मडप।
त्रिदश पु देव.
त्रिदशा स्त्री तेरहवी सवरणा।
त्रिधा अ तीन प्रकार
त्रिपुरुष पु ब्रह्मा, विष्णु और शिव।
त्रिमूर्त्ति स्त्री देखो त्रिपुरुष, उत्तरग के देव।
त्रिंशत् स. तीसकी सख्या।
त्रैलोक्यभूषण पु वैराज्यादि नववा प्रासाद।
त्रैलोक्यविजय पु वैराज्यादि पद्रहवा प्रासाद।
त्र्यंश न तृतीयांश, तीजा भाग।

द

दग्धा स्त्री तिथि विशेष।
दण्ड पु ध्वजा लटकाने का दड।
दन्त पु बत्तीस की सख्या, दात, शिखर।
दर्पण न आयना, रूप देखने का काच।
दल न फालना,
दशाक्षा स्त्री तीसरी सवरणा।
दारु न काष्ट, लकडी, कारीगर।
दारुण वि भयकर।
दिक् स्त्री दिशा, दश की सख्या।
दिक्पाल पु दिशा के अधिपति देव।
दिक्साधन पु दिशा का ज्ञान करने की क्रिया
दिङ्मुख / दिङ्मूढ } वि प्रासाद, गृह आदिका टेढापन।
दिति पु वास्तुदेव।
दिवाकर पु बारह की सख्या, सूर्य।
दिश् स्त्री दश की सख्या, दिशा।
दिशिपाल पु जघा थर के देव।
दीर्घ वि लबाई।
दृढ वि मजबूत।
दृष्टि स्त्री आख, निगाह।
देवगांधारी स्त्री चोदहवी सवारणा।

देवतायतन पु देवो की पचायत ।
देवनक्षत्र न देवगणवाले नक्षत्र ।
देवपुर देवनगर।
देवसुन्दरी स्त्री चौथी सवरणा ।
दैर्घ्य वि लबाई ।
दोला स्त्री झूला । हिंडोला ।
दौवारिक पु वास्तुदेव ।
द्राविड पु प्रासाद की एक जाति ।
द्राविडी पु. अधिक शृंगोवाली प्रासाद की दीवार, जघा ।
द्वादश स बारह की सख्या ।
द्वार न. दरवाजा ।
द्वारपाल पु द्वारका रक्षक, चौकीदार ।
द्विरष्ट स सोलह की सख्या ।

ध

धनद पु उत्तर दिशा का अधिपति कुबेर देव ।
धनु न नववी राशि, धनुष्य ।
धरणी स्त्री गभगृह के मध्य नीव मे स्थापित नववी शिला ।
धराधर पु कपिली मडप के देव ।
धिष्ण्य न २७ की सख्या । नक्षत्र
धूम पु दूसरा आय ।
ध्रुव पु उत्तर दिशा का एक तारा, ध्रुव तारा ।
ध्वज पु पहला आय, ध्वजा ।
ध्वजा स्त्री. पताका, झडा, धजा ।
ध्वजादड पु ध्वजा रखने का दड, जिसमे ध्वजा लटकाई जाती है ।
ध्वजाधार पु ध्वजादड रखने का कलावा
ध्वाक्ष पु आठवा आय, काक ।

न

नकुलीश पु ऊर्ध्वरेता महादेव ।
नगर न गाव, शहर ।
नन्द पु नव की सख्या ।
नन्दन पु केसरी जाति का तीसरा और वैराज्यादिका दूसरा प्रासाद ।
नन्दशालिक पु केसरी जाति का चौथा प्रासाद ।
नन्दा स्त्री प्रथम शिला, जो ईशान अथवा अग्नि कोण मे प्रथम स्थापित किया जाता है ।
नन्दिन् पु महादेव का वाहन, बैल, साढ ।
नन्दिनी स्त्री पचशाखा वाला द्वार, जाड्यकुम्भका देव, दूसरी सवरणा ।
नन्दी स्त्री काणी, भद्र के पास की छोटी कोनी ।
नन्दीश पु केसरी जाती का पाचवा प्रासाद ।
नर पु नरथर पुरुष की आकृति वाली पट्टी ।
नर्त्तकी स्त्री नाच करती हुई पुतली ।
नलिका स्त्री नववी सवरणा ।
नवनाभि पु यज्ञमडल विशेष ।
नवमङ्गल पु वैराज्यादि १६ वा प्रासाद ।
नष्टच्छन्द पु जिसकी तलविभक्ति बराबर न हो।
नाग पु वास्तुदेव हाथी ।
नागकुल पु भीट्ट थर के देव ।
नागर पु प्रासाद की एक जाति ।
नागरा स्त्री ऊपर का अथ देखो ।
नागरी स्त्री रूपविनाकी सादी जघा ।
नागवास्तु पु न शेषनाग चक्र, राहुमुख ।
नाट्येश पु नटराज ।
नाभि स्त्री मध्यभाग ।
नाभिच्छन्द पु दो जाति की मिश्र आकृति वाली छत ।
नाभिवेध पु गभरव ।
नारायणी स्त्री आठवी सवरणा ।
नाल न नाली, पानी नीकलने का पग्नाला ।
नाली स्त्री देखो ऊपर का अथ ।
नासक न कोना ।
निरन्धार पु बिना परिक्रमावाला [illegible] प्रासाद ।
निर्गम पु बाहर नीकलता हुआ भाग ।
निशाकार पु [illegible], [illegible] ।
नि स्वन पु शब्द ।
नृत्य पु नृत्यमडप, रगमडप ।
नैर्ऋत पु नैर्ऋत्य [illegible] ।

प

पक्षिराज पु केसरी जाति का २३ वां प्रासाद,
पञ्च न. पाच [illegible] ।

पञ्चगव्य न गाय का दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर।
पञ्चत्रिंशत् स० पैंतीस की सख्या।
पञ्चदेव पु. ब्रह्मा, विष्णु, सूय ईश्वर और सदाशिव ये पाच देवो का समुह, उरुशृ ग के देव।
पञ्चाशत् स पचास की सख्या।
पट्ट पु पाषाण का पाट।
पट्टभूमिका स्त्री ऊपर की मुख्य खुली छत।
पट्टशाला स्त्री दलान, बरामदा।
पताका स्त्री ध्वजा।
पत्रशाखा स्त्री द्वार की प्रथम शाखा का नाम।
पद न. भाग. हिस्सा।
पद्मक पु समतल छत।
पद्मकोश पु कमल की कली के जैसा आकार।
पद्मपत्र न पत्तियो के आकार वाला थर, दासा।
पद्मराग पु, केसरी जाति का १८ वा प्रासाद।
पद्मशिला स्त्री गुम्वज के ऊार की मध्यशिला, यह नीचे लटकती दिखती है।
पद्मा स्त्री पद्मशिला, ग्यारहवी सवरणा।
पद्माक्ष पु पद्मपत्र (दासा) के देव।
पद्मिनी स्त्री नवशाखा वाला द्वार।
पद्मासन न देव के बेठने का स्थान, पीठिका।
पर्जन्य पु वास्तुदेव, ध्वजा का देव।
पर्यङ्क पु पलग, खाट।
पर्वन् न ध्वजादड की दो चूडी का मध्य भाग।
पर्वत पु स्तभ का देव।
पल्यङ्क पु पलग, खाट।
पाद पु चरण, चौथा भाग।
पापराक्षसी स्त्री वास्तुचक्र के वायु कोनाकी देवी।
पार्वती स्त्री कलश के देव।
पार्श्व पु न एक तरफ, समीप।
पालव न छज्जा के ऊार छाद्य का एक थर।
पिण्ड वि जाडाई, मोटाई।
पितामह पु ब्रह्मा।
पितृ पु, वास्तुदेव, पूवज, पितर देव।
पितृपति पु यम, दक्षिण दिशा का दिक्पाल।
पिप्पल पु पत्ता, पाकर, पिजमन।

पिशाच पु क्षेत्रगणित के आय और व्यय दोनो बराबर जानने की सज्ञा।
पीठ न प्रासाद की खुरसी, आसन।
पीलीपीछा स्त्री वास्तुचक्र के ईशान कोण की देवी।
पुनर्वसु पु सातवा नक्षत्र।
पुर न गाव, शहर।
पुराण न अठारह की सज्ञा।
पुरुष पु प्रासाद का जीव, जो सुवर्ण का पुरुष बनाकर आमलसार मे पलग पर रखा जाता है।
पुषज् पु, वास्तुदेव।
पुष्पकठ पु, दासा, अतराल।
पुष्कर न जलाश्रय का मडप, वलाणक।
पुष्पगेह न पूजनगृह।
पुष्पदन्त पु वास्तुदेव।
पुष्पराग न पुखराज, रत्न विशेष।
पुष्पिका स्त्री गुम्बद के पर बनी हुई प्रथम सवरणा।
पुष्य न आठवा नक्षत्र।
पूतना स्त्री वास्तुचक्र के नैर्ऋत्य कोण की देवी।
पृथिवीजय पु. केसरी जाति का बारहवा प्रासाद।
पृथिवीधर पु वास्तुदेव।
पृथु वि विस्तार, चौडाई।
पेट, पेटक } न पाट आदि के नीचे का तल।
पौर पु दूसरा व्यय का काम।
पौरुष पु प्रासाद पुरुष सवध की विधि।
पौली स्त्री प्रासाद की पीठ के नीचे भीट्ट का थर।
पौष्ण्य न २७ वा रेवती नक्षत्र।
प्रणाल न पानी निकलने की नाली, परनाला।
प्रतिकर्ण न कोनेके समीप का दूसरा कोना।
प्रतिभद्र न मुखभद्र के दोनो तरफ के खाचे।
प्रतिरथ पु कोनेके समीप का चौथा कोना।
प्रतिष्ठा स्त्री देवस्थापन विधि।
प्रतोली स्त्री पोल, प्रासाद आदि के आगे तोरण वाला दो स्तभ।
प्रत्यङ्ग न शिखर के कोनेके दोनो तरफ के लंबा चतुर्थांश मानका शृ ग।

प्रदक्षिणा स्त्री परिक्रमा, फेरी ।

प्रद्योत पु. तीसरा व्ययका नाम ।

प्रभा स्त्री तेज, प्रकाश ।

प्रवाल न. मूगा, रत्नविशेष ।

प्रवाह पु पानीका बहाव ।

प्रवेश पु. घरो के भीतर का भाग ।

प्रहार पु शृगो के नीचे का थर ।

प्राक् स्त्री पूर्वदिशा ।

प्राकार पु किला, कोट, दीवार ।

प्राग्ग्रीव पु प्रासाद के गर्भगृह के आगे का मडप ।

प्राची स्त्री. पूवदिशा ।

प्रासाद पु. देवमदिर राजमहल ।

प्लक्ष पु वृक्ष विशेष, पाकर, पिलखन ।

प्लव पु पानीका बहाव ।

फ

फणिमुख न शेषनागका मुख, यह नीव खोदने के प्रारभ मे देखा जाता है ।

फालना स्त्री. प्रासाद की दीवार के खाचे ।

फासना स्त्री प्रासाद की एक जाति विशेप ।

ब

बङ्ग न कलई नामकी धातु

बलाण / बलाणक न. कक्षासन वाला मडप, गर्भगृह के आगे का मडप, मुखमडप ।

बाण पु पाच की सख्या, शिवलिंग ।

बीजपुर न कलश के ऊपरका बीजोरा ।

ब्रह्मन् पु ब्रह्मा ।

ब्राह्मय न रोहिणी नक्षत्र ।

भ

भक्ति स्त्री १२ की सख्या ।

भग्न त्रि खडित ।

भद्र न मडल विशेप, प्रासाद का मध्य भाग ।

भद्रक पु भद्रवाला स्तभ

भद्रा स्त्री नोव की दूसरी शिलाका नाम, तिथि विशेप ।

भरण / भरणी न प्रासाद की दीवार का और स्तभ के ऊपर का थर ।

भल्लाट पु वास्तुदेव ।

भवन न प्रासाद, मदिर, मकान, गृह ।

भाराधार पु. शिरावटी थर के पूजनीय देव ।

भिट्ट पु प्रासाद की पीठ के नीचे का थर ।

भित्ति स्त्री दीवार ।

भिन्न न सूर्यकिरण आदि से भेदित गभगृह, दोष विशेप, वितान (छत) की एक जाति ।

भुवनमण्डन पु वैराज्यादि चौदहवा प्रासाद ।

भूत न. पाच की सख्या, पृथिव्यादि पाच तत्त्व ।

भूधर पु केसरी जाति का पद्रहवां और वैराज्यादि जाति का तेरहवा प्रासाद ।

भूमि स्त्री माल, मजिल ।

भूमिज / भूमिजा पु. प्रासाद की जाति विशेप ।

भृङ्गराज पु वास्तुदेव ।

भृश पु वास्तुदेव ।

भ्रम पु. परिक्रमा, फेरी ।

भ्रमणी स्त्री. परिक्रमा, फेरी ।

भ्रमन्तिका स्त्री. देखो ऊपर का शब्द ।

भ्रमा स्त्री प्रासाद के ½ भाग के मान का कोली मडप

म

मकर पु मगर के मुखवाली नाली ।

मञ्ची स्त्री प्रासाद के दीवार की जघा के नीचे का और वेवाल के ऊपर का थर विशेप ।

मञ्जरी स्त्री प्रासाद का शिखर अथवा शृग ।

मठ पु ऋषि आश्रम, धर्मगुरु का स्थान ।

मण्डन पु एक विद्वान सूत्रधार का नाम, जो १५ वा शताब्दि मे चित्तोड के महाराणा कुम्भाजी के आश्रित था । ग्रन्थकार ।

मण्डप पु गर्भगृह के आगे का गृह ।

मण्डल न गोल आदि आकार वाली पूजन की आकृति ।

मण्डुकी स्त्री ध्वजादड के ऊपर की पटली जिसमे ध्वजा लगाई जाती है ।

मण्डोवर पु प्रासाद की दीवार ।

मत्तवारण न कठहरा ।

मत्तालम्ब पु गवाक्ष, झरोखा, आला, ताक।
मन्त्र न. जाप विशेष।
मध्यस्था स्त्री. प्रासाद के ½ भाग के मान का कोली मडप का नाम।
मनु पु चौदह की सख्या।
मनोहर पु पाचवा व्यय का नाम।
मन्दर पु केसरी जाति का छट्ठा प्रासाद।
मन्दरा स्त्री. इक्कसवी सवरणा।
मन्दारक पु प्रासाद की देहली के मध्यका गोल भाग, एक जात की छत।
मन्दिर पु. वैराज्यादि पाचवा प्रासाद देवालय।
मरुत् पु वायुदिशा का अधिपति, दिक्पाल।
मर्कटी स्त्री ध्वजादड के ऊपर की पाटली, जिसमे ध्वजा लटकाई जाती है।
मलय पु. वैराज्यादि छट्ठा प्रासाद।
महानस न रसोई घर, रसोडा।
महानील पु. केसरी जाति का १४वा प्रासाद।
महाभोग पु वैराज्यादि २४वा प्रासाद।
महीधर पु, वैराज्यादि १७वा प्रासाद।
महेन्द्र पु वास्तुदेव।
माड पु मडप, मडवा।
मातृ स्त्री. सप्त मातृ देवता।
मार्कटिका स्त्री ध्रुवतारे के समीप का दो तारा, जो ध्रुव के चारो तरफ घूमते हैं।
मालिनी स्त्री छह शाखावाले द्वार का नाम, २२ वी सवरणा।
माहेन्द्र पु वैराज्यादि दसवा प्रासाद।
माहेन्द्री स्त्री पूर्वदिशा।
मित्र पु वास्तुदेव।
मिश्रका स्त्री प्रासाद की एक जाति।
मिश्रसघाट न ऊचा नीचा खाचा वाला गूम्बद का चदोवा, छत।
मीन पु सूर्य की १२वी सक्रांति, १२वी राशि, मछली।
मीनार्क पु मीनराशि का सूर्य, मीन सक्रान्ति
मुकुटोज्ज्वल पु केसरी जाति का २०वा प्रासाद।
मुकुली स्त्री आठ शाखावाले द्वार का नाम।
मुक्ता स्त्री मोती।
मुखभद्र न. प्रासाद का मध्य भाग।
मुखमण्डप पु गर्भगृह के आगे का मडप, बलाणक।
मुख्य पु वास्तुचक्र के देव।
मुण्डलीक न छज्जा के ऊपर का एक थर।
मुद्ग पु. मूग, धान्य विशेष।
मूढ न. टेढा, तीर्च्छा।
मूल न क्षेत्रफल, क्षेत्र की लबाई और चौडाई का गुणाकार को २७ से भाग देने से जो शेष बचे वह मूलराशि माना जाता है। नीचे का भाग, एक नक्षत्र।
मूलकर्ण न. पु. शिखर के नीचे का कोना।
मूलरेखा स्त्री. शिखर की नीचे के दोनो कोणे के बीच का नाप, कोना।
मूपा स्त्री लबा अलिंद।
मृग न मृगशीर्ष नक्षत्र, मकर राशि, वास्तु देव।
मृगार्क पु मकर राशि का सूर्य, मकर सक्रान्ति।
मृत् स्त्री मट्टी।
मेखला स्त्री दीवार का खाचा।
मेढ्र पु. पुरुष चिन्ह, लिंग।
मेरु पु प्रासाद विशेष, एक पर्वत।
मेरुकुटोद्भवा स्त्री पचीसवी सवरणा।
मैत्र्य न अनुराधा नक्षत्र।

य

यक्ष पु. आय से कम व्यय जानने की सज्ञा, देहली का देव।
यक्ष्मन् पु वास्तुदेव।
यज्ञाङ्ग पु वृक्ष विशेष, गूलर।
यम पु. दक्षिण दिशा का दिक्पाल, वास्तुदेव, भरणी नक्षत्र।
यमांश पु क्षेत्रफल का नाम विशेष।
यमचुल्ली स्त्री सम्मुख लबा गर्भगृह।
यव पु. जव, धान्य विशेष।
यान न. आसन, सवारी,
याम्या स्त्री दक्षिण दिशा।
युग्म न दो की सख्या।

योगिनी स्त्री चौसठ देवी,
योनि स्त्री. मंडल विशेष ।

र

रंगभूमि स्त्री गर्भगृह के सामने पाचवा नीचा मंडप, नृत्य मंडप ।
रजत न. चांदी, धातु विशेष ।
रत्नकूट पु. केसरी जाति का सोलहवां प्रासाद ।
रत्नगर्भा स्त्री. पंद्रहवी संवरणा ।
रत्नशीर्ष पु वैराज्यादि ११वां प्रासाद ।
रत्नसम्भवा स्त्री २४वी संवरणा ।
रथ पु. विशेष प्रकार की गाडी, कोने के समीप का दूसरा कोना, फालना विशेष ।
रथा स्त्री प्रासाद की जाती विशेष ।
रथिका स्त्री भद्र का गवाक्ष, आला ।
रन्ध्र न. प्रवेश द्वार ।
रम्या स्त्री छट्ठी संवरणा ।
रवि पु. बारह की संख्या, सूर्य ।
रश्मि पु किरण ।
रस पु छह की संख्या ।
राक्षस पु आय से व्यय अधिक जानने की संज्ञा ।
राजगृह न राजमहल ।
राजपुर न राजधानी का शहर, राजनगर ।
राजमन्दिर न राजमहल ।
राजमार्ग पु सार्वजनिक आम रास्ता ।
राजसेन न. मण्डप की पीठ के ऊपर का थर ।
राजहंस पु. केसरी जाति का २२ वा प्रासाद ।
राजांश पु क्षेत्रफल का नाप विशेष ।
राम पु तीन की संख्या (राम, परशुराम और बलराम)
रासभ पु खर आय का नाम ।
राहुमुख न शेषनागचक्र का मुख ।
रिक्ता स्त्री नींव की चौथी शिला, ४, ९ और १४ तिथि ।
रीति स्त्री पित्तल, धातु विशेष ।
रुचक पु समचोरस स्तंभ ।
रुद्र पु ग्यारह की संख्या, वास्तुदेव ।
रुद्रदास पु वास्तुदेव,
रूपकण्ठ पु. गुम्बद के उदय में कर्णदर्दरिका के ऊपर का थर.
रूपस्तंभ पु द्वारशाखा के मध्य का स्तंभ.
रेखा स्त्री खांचा, कोना ।
रोग पु वास्तुदेव ।
रोहिणी स्त्री. चौथा नक्षत्र ।
रौप्यज न चांदी का बना हुआ ।

ल

लक्ष्मीनारायण पु विष्णुदेव ।
लक्ष्य न. उद्देश्य, चिह्न ।
लतालिंगोद्भव न मंडल विशेष ।
लतिन पु प्रासाद की एक जाति ।
लतिना स्त्री. प्रासाद की एक जाति ।
लय न मकान, गृह ।
लाटी स्त्री स्त्रीयुगलवाली प्रासाद की जंघा ।
लिङ्गोद्भव न वास्तु मंडल विशेष ।
लोह पु धातु विशेष, लोहा ।

व

वक्त्र न मुख ।
वज्र न हीरा ।
वज्रक पु केसरी जाति का १९ वा प्रासाद ।
वज्री स्त्री औषधि विशेष, गडूची ।
वट पु वृक्ष विशेष, बरगद, बड,
वत्स पु आकाशीय कल्पित एक संज्ञा ।
वपुस् न. शरीर ।
वराटका स्त्री प्रासाद की एक जाति ।
वराल पु ग्रास, जलचर जीव विशेष, मगर ।
वरुण पु पश्चिम दिशा का दिक्पाल, वास्तुदेव ।
वर्द्धमान पु प्रतिकर्णवाला स्तंभ ।
वलभी स्त्री प्रासाद की एक जाति ।
वल्कल पु औषधि विशेष ।
वसु पु. आठ की संख्या, आठ का विशेष ।
वह्नि पु अग्निकोण का दिक्पाल अग्नि, वास्तुदेव, चित्रक औषधि ।
वह्नि न कृत्तिका नक्षत्र ।

वाजिन् पुं अश्वथर, घोडा का थर ।
वानरेश्वर पु हनुमान देव ।
वापी स्त्री वावडी ।
वामन न मडप के व्यास के आधे मान के उदयवाला गूम्बद, अरथ का देव, जगती के आगे का बलाणक मडप ।
वायव्य पु वायुकोना ।
वायस पु ध्वाक्ष आय, कौआ ।
वाराह पु मडप के व्यासाध के $\frac{3}{4}$ मान के उदयवाला गुम्बद । खरशिला का देव ।
वारि न पानी, जल ।
वारिमार्ग न दीवार से बारह नीकला हुआ खाचा ।
वारुण न शतभिषा नक्षत्र
वासव न धनिष्ठा नक्षत्र ।
वास्तु पु. न निवास स्थान, गृहारभादि में विशेष प्रकार की देवपूजन विधि ।
वाहन न सवारी, गाडी ।
विघ्नेश पु गणपति, गणेश ।
विजयानन्द पु वैराज्यादि २२वा प्रासाद ।
वितथ पु वास्तु मडल के देव ।
विदारिका स्त्री वास्तुमण्डल के अग्नि कोने की देवी ।
विद्याधर पु गूम्बद में नृत्य करने वाले देवरूप । केवाल थर का देव ।
विधि पु वास्तुमण्डल के देव, ब्रह्मा ।
विधु पु चन्द्रमा, एक सख्या ।
विद्ध वि वेध, रुकावट ।
विपर्यास पु विपरीत, उलटा ।
विभव पु सातवा व्यय ।
विमान पु वैराज्यादि सातवा प्रासाद, राजद्वार के आगे का बलाणक मण्डप ।
विमानजा स्त्री प्रासाद की एक जाति ।
विमाननागरच्छन्दा स्त्री प्रासाद की एक जाति ।
विमानपुष्पका स्त्री प्रासाद की एक जाति ।
विलोक्य पु खुला भाग ।
विवस्वन् पु वास्तुमण्डल का देव, सूर्य ।
विंशति स. वीस की सख्या ।
विशाल पु वैराज्यादि आठवा प्रासाद ।
विश्व न जगत्, तेरह की सख्या ।
विश्वकर्मन् पु. जगत की रचना करने वाला देवशिल्पी ।
विष्णुक्राता स्त्री औषधि विशेष अपराजिता
विस्तीर्ण वि विस्तार
वीतराग पु रागरहित जिनदेव ।
वृत्त वि गोलाई ।
वृद्धि वि बढाना ।
वृष पु. पाचवी आय, नदीगण, वृषभ ।
वृषभध्वज पु केसरी जाति का २४वा प्रासाद ।
वेद पु चार की सख्या ।
वेदिका स्त्री पीठ, प्रासाद आदिका आसन ।
वेदी स्त्री राजसेन के ऊपर का थर, पीठ ।
वेश्मन् न मदिर, घर ।
वैडूर्य पु केसरीजाति का १७ वा प्रासाद, रत्न विशेष ।
वैधृति पु सत्यावीस योग मे से एक योग ।
वैराज्य पु प्रासाद की एक जाति ।
वैराटी स्त्री प्रासाद की कमलपत्र वाली दीवार ।
वैष्णव पु श्रवण नक्षत्र ।
व्यक्त वि प्रकाशवाला ।
व्यङ्ग वि टेढा ।
व्यजन न पखा ।
व्यतिक्रम वि मर्यादा से अधिक ।
व्यतिपात पु सत्तावीस योग मे से एक योग ।
व्यय पु आठ की सख्या, खर्च ।
व्यास पु विस्तार, गोल का समान्तर दो भाग करने वाली रेखा ।
व्योमन् न शून्य, आकाश ।
व्रीही स्त्री जव, धान्य विशेष ।

श

शक्र पु चौदह की सख्या, इन्द्र ।
शङ्कर पु ईशानकोन, महादेव ।
शङ्कु पु. छाया मापक यत्र ।
शङ्खावर्त्त पु प्रासाद की देहली के आगे की अर्द्धचद्र के आकारवाली शख और लताओ वाली आकृति ।

शङ्खिनी स्त्री शखावली, औषधि विशेष।
शतमूल न. दश की सख्या।
शतार्द्ध स पचास की सख्या।
शम्भुदिशा स्त्री ईशान कोन।
शयनासन पु. शेषनाग की शय्या ऊपर शयन करने वाला विष्णुदेव।
शय्या स्त्री प्रासाद के ३/४ भाग के मान का कोलीमडप।
शाखोदर न. शाखा का पेटा भाग।
शान्त पु. प्रथम व्यय।
शालभञ्जिका स्त्री नाच करती हुई पाषाण की पुत्तलीया।
शाला स्त्री प्रासाद, गभारा. छोटा कमरा, भद्र, परशाल वरामदा।
शाली स्त्री चावल, धान्य विशेष
शिखर न शिवलिंग के आकार वाला गुम्वद।
शिर न शिखर शिरावटी, ग्रासमुख, एक सख्या वाचक।
शिर पत्रिका स्त्री ग्रास के मुखवाली पट्टी, दासा।
शिरावटी स्त्री भरणी के ऊपर का थर।
शिला स्त्री नीव में प्रथमवार रखी जाती पाषाण शिला।
शिव पु ईशान कोन महादेव।
शिर्ष न भरणी के ऊपर का थर, शिरावटी।
शुकनास न प्रासाद की नासिका।
शुक्र पु छठ्ठा ग्रह, यवनाचार्य।
शुक्ला स्त्री नीव मे प्रथम रखी जाती सातवी शिला।
शुण्डिकाकृति स्त्री हाथी।
शुद्धसङ्घाट न गुम्वद का समतल चदोवा, छत
शृङ्ग न शिखर, छोटे छोटे शिखर के आकार वाले अडक
शेष पु वास्तुमडल का देव।
शैलज पु पाषाण का बना हुआ।
शैलराज पु मेरु पर्वत।
श्रवण न २२वा नक्षत्र
श्रियानन्द पु चौथा व्यय।
श्रीनन्दन पु वैराज्यादि चौथा प्रासाद।
श्रीवत्स पु. छट्ठा व्यय, प्रासाद विशेष, एक ही सादा शृग।
श्रीवृक्ष पु केसरी जाति का सातवा प्रासाद
श्वान पु चौथा आय।

ष

षट् स छह की सख्या।
षड्दारु न दो दो स्तभ और उसके ऊपर एक एक पाट।
षष्टि स साठ की सख्या।
षोडश स सोलह की सख्या।

स

सवरणा स्त्री अनेक छोटे छोटे कलशो वाला गुम्वद
सकलीकरण न देव प्रतिष्ठा की विधि विशेष।
सङ्घाट पु तल विभाग।
सत्य पु वास्तुमडल का देव।
सत्रागार न यज्ञशाला।
सदाशिव पु कलशका देव, महादेव।
सद्य पु कोना का देव।
सन्धि स्त्री साध, जोड।
सन्ध्या स्त्री भद्रथर का देव।
सप्त स सात की सख्या।
सप्तविंशति स सत्तावीस की सख्या।
सभामार्ग पु तीन प्रकार की आकृति वाली छत।
सभ्रमा स्त्री प्रासाद के ३/४ भाग के मान का कोलीमण्डप.
समुद्भवा स्त्री बारहवी सवरणा।
समोसरण न तीन प्राकारवाली वदी।
सरस्वती स्त्री मचिका थर का देवता।
सर्वतोभद्र पु केसरी जाति का दूसरा प्रासाद।
सर्वाङ्गतिलक पु वैराज्यादि २३वा प्रासाद।
सर्वाङ्गसुन्दर पु वैराज्यादि २१ वा प्रासाद।
सवितृ पु. वास्तुमडल का देव, सूर्य।
सहदेवी स्त्री औषधि विशेष।
सान्धार पु परिक्रमावाले नागर जाति के प्रासाद।
सान्धारा स्त्री प्रासाद की जाति।
सारदारु पु श्रेष्ठ काष्ठ,
सावित्र पु वास्तुमडल का देव।
सावित्री स्त्री भरणी थर का देवता।
सिंह पु तीसरी आय, वैराज्यादि प्रासाद।

सिंहशाखा स्त्री द्वार की नववीं शाखा
सिंहस्थान न शुकनास ।
सिंहार्क पु सिंह राशिका सूर्य ।
सिंहावलोकना स्त्री प्रासाद की एक जाति ।
सितश्रृंग पु वैराज्यादि १२वा प्रासाद ।
सिद्धाश्रम पु सिद्ध पुरुषो का निर्वाणस्थान ।
सीसक न सीसा, धातुविशेष ।
सुग्रीव पु वास्तुमडल का देव ।
सुनील न अच्छा नीलम रत्न ।
सुप्रभा स्त्री दो शाखावाला द्वार का नाम ।
सुभगा स्त्री तीन शाखावाला द्वार ।
सुर पु अन्तराल घर का देव ।
सुरवेश्मन् न देवालय, देव मदिर ।
सुवर्ण न सोना, धातु विशेष ।
सुषिर न छेद, पोलापन ।
सूत्रधार पु शिल्पी मदिर और मकान आदि बनाने वाला कारिगर ।
सूत्रारम्भ पु नीव खोदने के प्रारभ में प्रथम वास्तुभूमि मे कीले ठोककर उसमें सून बाधने का आरभ ।
सूर्य पु बारह की सख्या, वास्तुदेव, द्वारशाखा के देव ।
सृष्टि स्त्री दाहिनी ओर से गिनना, उत्पत्ति पृथ्वी ।
सोपान न सीढी ।
सोम पु वास्तुमडल का देव ।
सौध पु राजमहल, हवेली ।
सौभागिनी स्त्री आठवी शिला का नाम ।
सौम्य पु शुभग्रह, बुध ।
सौम्या स्त्री उत्तर दिशा ।
स्कन्दा स्त्री वास्तुमडल के नैऋत्य कोन की देवी ।
स्कन्ध पु शिखर के ऊपर का भाग
स्तम्भ पु थभा, खभा, ध्वजादड
स्तम्भवेध पु ध्वजाधार, कलावा ।
स्तोत्र न स्तुति ।
स्थण्डिल न प्रतिष्ठामडप में बालु (रेती) की वेदी। जिसके ऊपर देव को स्नान कराया जाता है ।
स्थावर न प्रासाद के थर, शनिवार ।
स्थूल वि मोटा ।
स्नानोदक न स्नात्र जल, चरणामृत ।
स्मरकीर्ति स्त्री एक शाखा वाला द्वार ।
स्वयम्भू पु बिना घडित शिवलिंग ।
स्वर्ण न सोना ।
स्वस्तिक न वास्तुमडल विशेष ।
स्वाति स्त्री पद्रहवा नक्षत्र ।

ह

हरि पु कर्णिका का देव, विष्णु
हर्म्य न घर मकान ।
हर्म्यशाल पु घर के द्वार ऊपर का बलाणक
हस्त पु तेरहवा नक्षत्र, हाथ ।
हस्ताङ्गुल न एक हाथ की एक अगुल, दो हाथ की दो अगुल, इस प्रकार हस्त सख्या बराबर अगुल सख्या ।
हस्तिनी स्त्री सात शाखावाला द्वार ।
हिमवान् पु केसरी जातिका नववा प्रासाद ।
हिमा स्त्री १६वी सवरणा ।
हेमकूट पु केसरी जाति का १०वां प्रासाद ।
हेमकूटा स्त्री १७वी सवरणा ।
ह्रस्व वि छोटा, कम होना, न्यून ।

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
८	१३	प्राचादिपु	प्राच्यादिपु
११	१७-१३, १९-२३, २०-१९ २१-२३,	इन चारो क्षेत्र के नाप में देवगण नक्षत्र नही मिलता	
१२	२२	दिडमुखे	दिड् मुखे
२३	१५	कुभा	कु भा
२६	१९	पच	पच
,,	२३	सार्घंत	साघत॰
२७	४	भूमणीना	भ्रमणीना
२८	१७	दो । की	दो भाग की
४१	१३	तदूष्वत	तदूध्वत
४२	१०	दिगविशति	दिग् विशति
४३	४	पादाश	पादाश
४५	१४	प्रतिष्ठाशार	प्रतिष्ठासार
४६	१०	मूर्ध्वाव	मूर्ध्वाव
,,	१९	कर्णिका	कर्णिका
४७	१२	बवावें	बनावें
४९	८	चतुविशति	चतुर्विशति
,,	१९	उदयक ने	उदय करन
५४	१७	छायसस्याने	छायसस्याने
५६	१५	द्विभाग	द्विभाग
,,	,,	गभ	गर्भ
५७	२२	गर्भ	गभ
६७	७	हस्व	ह्रस्व
६८	९	मान	नाम
७७	८	उच्छ्येण	उच्छ्र येण
७९	८	त्रिनणडत	त्रिनण्डान्
८९	२९	हस्तान्न	हस्तान्त ,ल
९१	७	प्रकीत्तित.	प्रकीत्तिन
९३	१२	वज्रादइ	वज्रादइ
९३	१३	हगुणी	षड्गुणी
९५	९	विश्वकम	विश्वकर्म
,,	१२	पामाद	प्रासाद
१०२	१४	श्रोर	ग्रोर
११०	१६	ऽत्स्ताद	ऽस्ताद्
११५	५	वैदाघ	वेदार्घ
,,	२२	राज्ञ;	राज्ञ
१२६	१६	करतो	करें तो
१३३	४	क्रमत्	क्रमात्
१३६	२४	एक सौ घ.ी	एक सौ एक घटी
१३७	७	भद्राघ	भद्रार्घ
१३९	२७	सामर्धो	सामर्यार्धा
,,	२८	विस्तरा	विस्तरा
१४५	२९	अपराजितपृच्छा	अपराजितपृच्छा
१४६	८	समुद्धरन	समुद्धरेत्
,,	२४	गत्रा हो	गया हो
,,	२६	गुरू	गुरु
१४७	२३	शम्भो	शम्भो.
१५०	८	कर्त्तव्या	कर्त्तव्या
,,	[illegible]	दाहिनी ओर	दाहिनी ओर
,,	२१	स्तम्भं	स्तम्भं
१५२	९	ओपग्रह	[illegible]
१५४	४	कु डलिन्यि	कुण्डलिन्यि
१६१	१०	मार्गे	मार्ग
१६६	२६	यन्त्रि	[illegible]
१७०	२४	कर्णिका	कर्णिका
	२३	कानीना	कानीना
,,	६	उल्लत	उल्लत
१७८	६	[illegible]	[illegible]
१७४	१८	मान	[illegible]

पृष्ठ	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
१७५	२३	चतुष्टय शको	चतुपटय शको
१७६	४	उरुशृङ्ग	उरुशृङ्ग
,,	८	इन्दनील	इन्द्रनील
१७७	३	'रक्खें' के बाद छूटा हुआ मेटर—	और कोने के ऊपर से एक शृग हटा करके उसके बदले तिलक रक्खें
१८०	१३	प्रत्यङ्ग	प्रत्यङ्ग तु
१९२	२५	तिलक	तिलक
१९५	४	दिपद	द्विपद

पृष्ठ	लाईन	शुद्ध	शुद्ध
२०८	६	तत्प्रभाण	तत्प्रमाण
,,	२२	पड्‌विंशपद	पड्विंशपद
,,	२४	वेदरूष	वेदरूप
२११	३	पञ्चमम्	पञ्चम्
,,	१४	पुरमध्यें	पुरमध्ये
,,	२५	पुरे	पुरे
२१४	२४	कङ्ग	कङ्ग
२१५	२५	खाड	खड
२१६	१३	शिवगिंकी	शिवलिंग की
२१७	३५	सचारणा	सवरणा
२१९	२९	देघ	देव
,,	२३	व्यवका काम	व्यय का नाम

अनुवाद के सहायक ग्रंथ

	ग्रथ	कर्त्ता
१	अपराजितपृच्छा	भुवनदेवाचार्य
२	क्षीरार्णव	विश्वकर्मा
३	ज्ञानप्रकाश दीपार्णव	"
४	राजवल्लभ मडन	मडन सूत्रधार
५	देवता मूर्ति प्रकरण	"
६	रूपमडन	"
७	समरागण सूत्रधार	महाराजा भोजदेव
८	वास्तुसार	ठक्कुर फेरु
९	मयमतम्	मय सूत्रधार
१०	शिल्प रत्नम् भाग १-२	कुमार मुनि
११	विश्वकर्म प्रकाश	विश्वकर्मा
१२	काश्यप शिल्पम्	महर्षि काश्यप
१३	शिल्प दीपक	गगाधर
१४	परिमाण मजरी	मल्ल सूत्रधार
१५	जिन सहिता	एक सधि भट्टारक
१६	बृहत्सहिता	वराह मिहिर
१७	विवेक विलास	जिन दत्त सूरि
१८	बृहच्छिल्पशास्त्र	जगन्नाथ अंबाराम सोमपुरा
१९	प्रासाद मडन भाग १	अंबाराम विश्वनाथ सोमपुरा
२०	शिल्प रत्नाकर	नर्मदाशकर सोमपुरा
२१	मानसार शिल्पशास्त्र	मान सार ऋषि
२२	विश्वकर्म वास्तु शास्त्र	विश्वकर्मा
२३	मुहूर्त्त चिन्तामणि	श्री रामदैवज्ञ
२४	आरभसिद्धि वार्तिक	उदयप्रभ देवसूरि
२५	प्रतिष्ठासार	नमुनशी